घट रामायण

(हिन्दी)

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

⁂ ⁂ ⁂ ⁂

तुलसी साहब तथा घट रामायण

हाथरस के तुलसी साहब निर्गुण संत मत के एक सिद्ध साधक तथा हिन्दी साहित्य के बहुचर्चित व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनकी चर्चा प्राय: सभी इतिहास ग्रन्थों में हुई है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० राम कुमार वर्मा, डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त आदि ने अपने इतिहास ग्रन्थों में इनके वैदुष्य तथा स्पष्टवादिता की अनेकश: चर्चा की है फिर भी इन इतिहास ग्रन्थों को देखने से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है–इसके कृतित्व एवं गम्भीर साधना का वैसा सम्यक् विश्लेषण नहीं हुआ है, जो अपेक्षित था–शायद यह इसलिए कि ये सन्त साहित्य के समापन काल के कवि तथा चिन्तक रहे हैं और हमारी दृष्टि कबीरदास, नानक देव, दादूदास आदि प्रारम्भिक आचार्यों तक ही सीमित रही है। हिन्दी आलोचकों एवं सन्त साहित्य के विवेचकों में डॉ० माता प्रसाद गुप्त एवं श्री परशुराम चतुर्वेदी आदि ने इनकी चर्चा बराबर की है।[१]

जन्म तथा मृत्यु तिथि

डॉ० रामकुमार वर्मा ने सं० १८४५ को इनकी जन्मतिथि मानी है, लेकिन कोई आधार नहीं दिया है। डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने इनका जन्म सं० १८२० तथा मृत्यु तिथि सं० १९०० स्वीकार की है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने पुन: पंथ सूची में बीसवें स्थान पर शाखा पंथ की चर्चा की है, जिसका संस्थापन समय भी संवत् १८४५ बताया है, अत: उनकी जन्म तथा मृत्यु दोनों तिथियाँ एक नहीं हो सकतीं। इस दृष्टि से डॉ० रामकुमार वर्मा द्वारा दिया गया, इनका जन्म काल सं० १८४५ प्रामाणिक नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में घट रामायण प्रकाशित बेलबेडियर प्रेस की भूमिका में लिखा गया है–

''तुलसी साहब के उत्पन्न होने का संवत् 'सुरति विलास' में नहीं दिया है पर यह लिखा गया है कि उन्होंने अनुमानत: अस्सी वर्ष की अवस्था में जेठ सुदी २, विक्रमी संवत् १८९९ या १९०० में चोला छोड़ा। इससे उनके देह धारण करने का समय संवत् १८२० के लगभग ठहरता है।''[२]

इन साक्ष्यों से स्पष्ट है कि तुलसी साहब की जन्म तिथि के सम्बन्ध में डॉ० माता प्रसाद गुप्त का ही मत अधिक प्रामाणिक है। इस प्रकार, उनका जन्म संवत् १८०० एवं मृत्यु संवत् १९०० में हुई थी।

जीवन परिचय

बेलबिडियर प्रेस से प्रकाशित उनके घट रामायण की भूमिका में उनका प्रामाणिक जीवन परिचय दिया हुआ है। उनका यह जीवन परिचय ''तुलसी साहब का जीवन चरित्र'' के शीर्षक से दिया गया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य में इतिहास ग्रन्थों में केवल डॉ० रामकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में एक सूचनात्मक तथा अधूरा परिचय दिया है, जिससे इनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में स्पष्ट अवधारणा नहीं बनती। बेलबेडियर प्रेस से प्रकाशित घट रामायण की भूमिका के अनुसार इनका जीवन परिचय इस प्रकार हैं–

''सत्गुरु तुलसी साहब जिनको लोग साहिब जी भी कहते थे, जाति के दक्षिणी ब्राह्मण राजा पूना के युवराज यानी बड़े बेटे थे, जिनका नाम उनके पिता ने श्याम राव रखा था। बारह वर्ष की उनकी

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २७८ (राजकमल संस्करण)

२. तुलसीदास : डॉ० माता प्रसाद गुप्त, पृ० 74 (घट रामायण : भाग 1. भूमिका, जीवन चरित्र).

मर्जी के खिलाफ पिता ने उनका विवाह कर दिया पर वह जवान होने पर भी ब्रह्मचर्य के पक्के और अपनी स्त्री से अलग रहे। इनकी स्त्री जिसका नाम लक्ष्मीबाई था, पूरी पतिव्रता की और पति की सेवा दिलजान से बराबर करती थी।

आखि॰ को एक दिन जब कि उनके पति किसी भारी सेवा पर प्रसन्न हुए और उनसे वर मांगने को कहा तो उन्होंने अपनी सास की सीख के अनुसार यह वर मांगा कि मुझे एक पुत्र हो। साहब जी ने कहा, बहुत अच्छा और दस महीने पीछे बेटा हुआ।

साहिब जी के पिताजी भी बड़े भक्त थे और उनकी इच्छा हुई कि उनको राजगद्दी देकर आप एकान्त में रहकर मालिक की बंदगी करें, परन्तु उनको हजार समझाया, वह किसी तरह राजी न हुए और अपने पिता से वैराग्य और मुक्ति की ऐसी चर्चा की, उनको जबाब न आया, फिर भी, वह उनके राजगद्दी पर बैठने की तैयारी करते रहे। जब गद्दी पर बैठने को एक दिन बाकी रहा तो साहिब जी अपने पिता से मिलने बाग को थोड़े से सवारों के साथ जो उनकी निगरानी के लिए तैनात थे, गये और वहाँ से आगे हवा खाने के बहाने एक तेज तुर्की घोड़े पर सवार होकर निकल गये। जब शहर-पनाह के पास पहुँचे तो मौज से ऐसी आँधी उठाई कि घोर अंधकार छा गया जिसकी ओट में वह घोड़ा भगाकर अपने साथियों से अलग हो गए। राजा ने खबर सुनकर उनकी खोज के लिए चारों ओर देश विदेश आदमी व सवार दौड़ाये पर अब कहीं पता न लगा तो अति उदास व निराश होकर राज्य को त्याग दिया और अपने छोटे कुँवर बाजीराव पेशवा को गद्दी पर बैठाया।

तुलसी साहब कितने ही बरस तक जंगलों, पहाड़ों और दूर-दूर शहरों में घूमे और हजारों आदमियों को उपदेश देकर सत्य मार्ग में और कई बरस पीछे जिला अलीगढ़ के हाथरस शहर में आकर पक्के तौर पर ठहरे और वहाँ अपना सत्संग जारी किया।

घर के निकलने से बयालीस बरस पीछे वह अपने छोटे भाई राजा बाजीराव पेशवा से बिठूर (जिला-कानपुर) में मिले थे, जहाँ कि बाजीराव गद्दी से उतारे जाने पर संवत् 1876 में भेज दिये गये थे। इसका हाल सुरति विलास ग्रन्थ में इस तरह लिखा है कि साहब जी गंगा के तट पर रम रहे थे कि एक शूद्र और ब्राह्मण में झगड़ा होते देखा। ब्राह्मण गंगाजी के तट पर संध्या करता था और शूद्र नहा रहा था। शूद्र की देंह से जल का छींटा ब्राह्मण पर पड़ा जिससे वह क्रोध में भर आया और उठकर शूद्र को गाली देने और मारने लगा। साहब जी के पूछने पर उसने सब हाल कहा और बोला कि इस शूद्र के जल की छींटें अपने बदन से उड़ाकर मुझे अपवित्र कर दिया और अब मेरे पास कोई दूसरी धोती भी नहीं है कि फिर नहा कर पहनूँ और पूजा खत्म करूं। साहब जी ने समझाया कि तुम्हारे ही शास्त्र के अनुसार गंगा और शूद्र दोनों एक ही पद से याने विष्णु के चरण से निकले हैं फिर क्यों एक को पवित्र और दूसरे को अपवित्र मानते हो। यह सुनकर ब्राह्मण लज्जित हुआ।

घाट पर जो लोग जमा थे, उनमें राजा बाजीराव के एक पंडित ने साहब जी को पहचान लिया क्योंकि उनका अति सुन्दर और मोहिनी रूप का जिस किसी ने भी इक बार दर्शन किया, उसकी आँखों में समा जाता था। उसने तुरन्त राजा को खबर भेजी कि आपके भाई आये हैं। राजा नंगे पाँव दौड़े और साहब जी के चरणों पर विलाप करते हुए गिरे और बड़े आदरभाव से सुख पाल पर बैठाकर घर लाए और चाहा कि उनको वहीं रखें किन्तु वह एक दिन वहाँ से भी चुपचाप चलते हुए।

सुखविलास में तुलसी साहब के देशाटन समय के कितने चमत्कार लिखे हैं, जैसे, रोगियों को आरोग्य कर देना, मुर्दों को जिला देना, अंधों को आँख, निर्धन को धन और बाझ को सन्तान देना इत्यादि।

एक साहूकार ने आपका बड़ा सत्कार किया और भोग लगाते समय, यह बरदान मांगा कि मुझे दया से एक पुत्र बख्शा जाए। तुलसी साहब ने अपना सोंटा उठाया और यह कहकर चलते हुए कि लड़का अपने सर्गुन इष्ट से माँग-संतों की दया तो यह है कि उनके दास के औलाद मौजूद भी हों तो उठा लें और अपने दास को निर्बन्ध कर दें।

हाथरस में उनकी समाधि मौजूद है और बहुत से लोग वहाँ दर्शन को जाते हैं और साल में एक बार भारी मेला लगता है।

यद्यपि उनको इस संसार में गुप्त हुए ६० बरस[१] से कम हुए हैं पर उनके अनुयायियों ने न जाने किस मसलहत से उनके समय को भूल भुलैया में डाल रखा है कि लोग सैंकड़ों बरस समझते हैं। मुंशी देवी प्रसाद साहिब ने भी, जो अब इस मत के आचार्य कहे जाते हैं, घट रामायण की भूमिका में इस भ्रम को दूर करने की कोशिश नहीं की है। हमने इस मत के कई साधुओं तथा और गृहस्थों से तुलसी साइब का जीवन समय पूछा तो उन्होंने एक ओर अब से साढ़े तीन सौ बरस पहले बताया जो कि गोसाईं तुलसीदास जी जगत प्रचलित सगुण रामायण के कर्ता का समय है।

तुलसी साहब ने निःसन्देह घट रामायण में फरमाया है कि पूर्व जन्म में आप ही गुसाईं तुलसीदास जी के चोले में थे और तभी घट रामायण को रचा परन्तु चारों ओर से पंडितों, भेषों और सर्वमतवालों का भारी विरोध देखकर उस ग्रन्थ को गुप्त कर दिया और दूसरी सगुन रामायण उसकी जगह समयानुसार बना दी।

इससे यह निष्कर्ष साफ तौर से निकलता है कि घट रामायण को तुलसी साहब ने जब दूसरा चोला अनुमान एक सौ चालीस बरस पीछे धारण किया तब प्रगट किया न कि पहले चोले से। सवाल यह है कि कोई सन्त तुलसी साहब के नाम के पिछले सत्तर पचहत्तर बरस के अन्दर हाथरस में उपस्थित थे या नहीं, जो वहाँ सत्संग कराते थे और उपदेश देते थे और जहाँ उनकी समाधि अब तक मौजूद है। हमको इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसे महापुरुष अवश्य थे क्योंकि हम आप उनकी समाधि का दर्शन कर आए हैं और दो प्रामाणिक सत्संगी अब तक मौजूद हैं, जिन्होंने अपने लड़कपन में तुलसी साहब के दर्शन किये थे और उनमें से एक को तुलसी साहब ने अपनी घट रामायण आप दिखाई थी।

तुलसी साहब के मतवाले उनकी महिमा समझकर इस बात पर बड़ा जोर देते हैं कि महाराज ने कोई गुरु धारण नहीं किया था और उसके प्रमाण में यह कड़ी पेश करते हैं–

एक विधी चित रहूँ सम्हारे। मिलै कोइ संत फिरौ तिस लारे।

यह कड़ी तुलसी साहब के 'पूर्व जन्म के चरित्र' में पहली चौपाई की बीसवीं कड़ी है और उसी के दो पन्ने आगे। बरनन भेद संत मत पहला सोरठा लोगों की इस बात का खंडन करता है–

तुलसी संत दयाल निज निहाल को कौ कियौ।
लियो सरन के माँहि जाइ जन्म फिरि करि जियौ॥

इसमें सन्देह नहीं कि तुलसी साहब स्वयं सन्त थे–जिनको गुरु धारण करने की जरूरत न थी लेकिन मरजादा के लिए किसी को नाम मात्र को अवश्य गुरू बना लिया होगा और इसके लिए संत सद्गुरु कबीर साहब और समस्त सन्तों की नजीर मौजूद है।[२]

तुलसी साहब अक्सर हाथरस के बाहर एक कंबल ओढ़े और हाथ में डंडा लिये दूर-दूर शहरों में चले जाया करते थे। जोगिया नाम के गाँव में जो हाथरस से एक मील पर है अपना सत्संग जारी किया और बहुतों को सत्य मार्ग पर लगाया।

इनकी हालत अक्सर गहरे खिंचाव की रहा करती थी और ऐसे आवेश की दशा में धारा की तरह ऊँचे घाट की बानी उनके मुख से निकलती–जो कोई निकटवर्ती सेवक उस समय पास रहा, उसने जो

---

१. वर्ष का यह संदर्भ सन् १९३७ का है, क्योंकि घट रामायण का प्रथम संस्करण बेलविडियर प्रेस से इसी सन् में छपा था।

२. घट रामायण की समाप्ति पर त्रोटक सं० 2 में वे 'गुरु के धाम' और उसके महत्त्व की चर्चा करते हैं— गुरु धाम कंजा मनी मैल मंजा। धनू तोड़ भंजा सो लीलं अपीलं॥

सुना समझा दि ा लिया नहीं तो वह बानी हाथ से निकल जाती। इस प्रकार के अनेक शब्द उनकी शब्दावली में हैं।[१]

घट रामायण की उनके विषय में लिखी गई इस जीवन चर्चा से अधिक प्रामाणिक तथा विस्तृत सामग्री नहीं मिलती, अत: सम्प्रति उनके विषय में यही एक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने इन्हें 'आवापंथी' स्वीकार किया है किन्तु भेष एवं पंथ का सबसे अधिक विरोध इन्होंने ही किया है।

कृतियों का परिचय

उनकी तीन कृतियाँ अब तक सर्वथा प्रसिद्ध एवं उनके सृजन के साक्ष्य के रूप में उपलब्ध हैं। ये हैं, क्रमश– घट रामायण, शब्दावली एवं रत्न सागर। इन कृतियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

(क) घट रामायण–'घट रामायण' का अर्थ है, घट में न केवल सम्पूर्ण सृष्टि का अन्तरण अपितु सम्पूर्ण सिद्धान्तों तथा आध्यात्मिक चिन्तन की अर्न्तसाधना का समाहार। वे अपने इस मन्तव्य को अनेक स्थलों पर कहते ही नहीं अपितु साधना के व्यावहारिक स्तर पर भी उतारते हैं।

लखि अलष अंडन खलक खंडा पलक पर घट घट कही।

यहाँ सम्पूर्ण सृष्टि इस अंड (पिंड) शरीर में निहित है और इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि की गाथा वे अपनी अन्तश्चेतना में स्वीकार करके आगे चलते हैं। वे इसे स्पष्ट करते हुए पुन: कहते हैं कि –

तन मन ब्रह्मंड पसार अंड खंड नौखंड लगै।
सो घट लखन मझार करत सैल ब्रह्मंड की॥

×× ×× ×× ××

पिंड माँहि ब्रह्मंड देखा निज घर जोइ कै।
गुरु पद पदम प्रकास निज अकास अम्बर चखी॥

इसी शरीर पिण्ड में पचासी पवन हैं, इसी में षट् चक्र, द्वादश नाल, हैं। दसवीं नाल में 'राम तथा लक्ष्मण' निवास करते हैं।[२] इस घट में त्रिवेणी है, यही प्रयाग है, गंगा, यमुना तथा सरस्वती है। इसी में शून्य महल है, शब्द शिखर है, त्रिकुटी है, इसमें नौ कमल तक तीन गम्य लोक और चौथा अगम्य लोक है–इसी में नव द्वार हैं। इस तत्त्व में प्रवेश योगी नहीं सन्त एवं साधु रहते हैं। पिण्ड के इस लोक का 'सत्यलोक' है। सत्य लोक में उस पर अनाम तत्त्व है, जिसे विरले जानते हैं।

इस घट के 34 भेद और 34 विविध तत्त्वों के केन्द्र स्थल हैं। तुलसी साहब अन्त में के सन्दर्भ में सम्पूर्ण लोक, अध्यात्म, पुराण, धर्मकथा एवं उनके विविध संदर्भों का समाहार करके कहते हैं–

घट में स्वर्ग एवं नरक हैं दोई। घट में जनम मरन पुनि होई॥
घट में कथा पुरान सुनावै। घट में काया करम करावै।।
घट में बैठे पाँचों नादा। घट में लागी सहज समाधा।।
घट में राजा हैं बलि बावन। घट में सीता रघुपति रावन॥
घट में सुकदेव व्यास अरु नारद। घट में ऋषी मुनी आरु सारद॥
जो सब घट कहि बरनि सुनाई। तौ जग कागज मिलै न स्याही॥

---

१. बेलविडियर प्रेस, से प्रकाशित घट रामायण की भूमिका से साभार।

२. देखें, घट रामायण, पृष्ठ 20, 10वीं

इस घट के भीतर बहत्तर कोठे हैं जिसमें ब्रह्मा, विष्णुशंकर, वरुण, सुमेर आदि बैठे हैं। यही नहीं, चौरासी सिद्ध, पच्चीस प्रकृति, नौ नाड़ियाँ, पाँच इन्द्रिय निवास एवं बाईस शून्य, वैराग की चार गतियाँ आदि सब कुछ हैं।

इस घट में अन्तरण में स्थित विधि तत्त्वों को न योगी देखता है और न कर्मकांडी। लोक के धर्मपंथी और भेष रचना द्वारा आध्यमिकता का प्रदर्शन करने वाले तो इसे जानते ही नहीं।

कवि इस अन्तश्चेतना के आध्यात्मिक ब ोध के साक्ष्य के लिए अपने युग के पूर्व एवं सामायिक सन्दर्भों तथा धर्मगुरूओं को सामने रखकर न केवल उनके आध्यात्मिक विचारों का खंडन करता है अपितु उन्हें घट साधना के भीतर की आध्यात्मिक अन्तराकृत्ति से जोड़कर उन्हें प्रामाणिक बनाता है। काशी के पंडितों में नैनू-सैनू, फकीर तकी शेख, कर्मा तथा धर्मा नामक जैन धर्मावलम्बी, कर्मचन्द्र पालीवाल शावक जैनधर्मी, करिया और सैनी नारियाँ, श्यामा पंडित, रेवतीदास, हिरदे अहीर का पुत्र गुनवाँ, फूलदास कबीर पंथी, प्रिमेलाल आदि-आदि विविध मतो एवं सम्प्रदायों के ज्ञानियो को जिस अगम्य तत्त्व का मार्ग दिखाकर सन्तुष्ट किया वह घट रामायण में ही सम्बद्ध है। इस अद्‌भुत घट रामायण के महत्त्व का निरूपण करते हुए वे कहते हैं कि–

> ये री घट माँहिं तो रामायन गाई, ग्रंथन बनाइ के।
> पिंड-पिंड ब्रह्मांड दिखाया तुलसी लै लाइ के।
> हम देखा पिंड ब्रह्मंडा, निरखा सत द्वीप नौखंडा।
> अंडा तत पाँच बनाया काया धसिजाई के॥
>
> ×× ×× ××
>
> तुलसी तत तोल बताई पुनि कहि-कहि भाखि सुनाई।
> घट रामायण बूझै सूकै तिहूँ लोक में॥

सन्त मत के अन्तर्गत अगम्य तत्त्व का उद्‌बोधन एवं उसकी प्राप्ति तथा साधनाओं द्वारा अन्तर्वृत्ति के अन्तर्गत अन्वेषण और वाह्य आडम्बरों, पंथ, भेष, मूर्ति, धर्मग्रंथ, मन्दिर, तीर्थ आदि के स्थान पर इस घट की अन्त:वृत्ति में ब्रह्म तत्त्व (अगम तत्त्व) की प्राप्ति ही घट रामायण का मूल मन्तव्य है।

यहाँ 'रामायण' शब्द का अर्थ 'राम का अयन' नहीं उस अगम्य का अयन–जिसे लोग राम के रूप में जानते हैं–वह अगम्य तत्त्व हैं–वह दशरथ पुत्र नहीं है, उसका मर्म कुछ और है। उस अगम तत्त्व की वार्ता ही घट रामायण का मूल मन्तव्य है।

गोस्वामी तुलसीदास और तुलसी साहब का ऐक्य

घट रामायण के रचनाकार तुलसी साहब अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त देते हुए स्वयं को 'तुलसीदास' बताते हैं और कहते हैं कि संवत् 1618 में मैंने सर्वप्रथम घट रामायण की रचना की थी किन्तु काशी में पंडितों तथा जनसमुदाय के विरोध के कारण इसे छिपा दिया और लोगों को भ्रमित करने के लिए संवत् १६३१ में मैंने रामचरित्र किया–

> संवत् सोला सै इकतीसा। रामचरित कीन्ह पद ईसा॥
> ईस कर्म औतारी भावा। कर्मभाव सब जगहिं सुनावा॥
> जग में कगरा जाना भाई। रावन रामचरित्र बनाई॥
> पंडित भेष जगत सब मझारी। रामायन सुनि भये सुखारी॥
> अंधा अंधे विधि समझावा। घट रामायन गुप्त करावा॥

'घट रामायग' की रचना, जैसा कि उन्होंने बताया है–संवत् १६१८ में की थी और पुनर्जन्म के बाद उन्होंने उसे भी प्रगट किया। प्रगट भी नही किया, यह सन्तों के हाथ लग गई थी और उन्होंने इसे लोक के सामने रखा–

घट रामायन सार जग विरोध गुप्तै करी।
लगी संत के हाथ बूझि भेद सारा लिया॥

इस कथा का सार इतना ही है कि 'घट रामायण' और 'तुलसी रामायण' की यदि तुलना की जाए तो दोनों में 'घट रामायण' श्रीरामचरित मानस से अधिक श्रेष्ठ है। वह तो लोकांध जन समुदाय को अंधी विधि से समझाने की एक कथा मात्र है किन्तु यह घट रामायण उससे भिन्न इस प्रकार है–

घट रामायन अगम पसारा। पिंड ब्रह्मंड लखा विधि सारा॥
नाम अनेक अनेकन कहिया। सो सब घट भीतर दरसइया॥
अगम निगम औ अकथ कहानी। तुलसी भाखी अगम निसानी॥
घट रामायन ग्रंथ बनाई। साखी सब्द अगम विधि गाई॥

(2) तुलसी शब्दावली[१]–'तुलसी साहब के इस ग्रंथ का नाम तुलसी 'शब्दावली' है–'सब्द' या सबद निर्गुण पंथ का एक पारिभाषिक शब्द है। परम्परा में सन्तों एवं सत्गुरुओं द्वारा आध्यात्मिक अनुभव एवं साधना के सन्दर्भ में जिन सत्यों का साक्षात्कार हुआ उनका कथन ही 'सबद' है। ज्ञानदेव, नामदेव, नानकदेव, कबीरदास, दादूदयाल आदि के 'सबद' इसी संदर्भ के है। ये उनके आध्यात्मिक अनुभव के 'शब्द' हैं और सबद के रूप में उनके साहित्य के अन्तर्गत संकलित है। तुलसी साहब की 'शब्दावली' का भी यही अर्थ है। ये उनके आध्यात्मिक अनुभव से सम्बन्ध विविध अनुभवों के संकलन या उनके अपने निजी अनुभव के प्रमाण है। ये सबद अनेक छन्दों तथा अनेक रागों में सन्तों की साधना से जुड़े उनके विविध आध्यात्मिक पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं। विविध साहित्यिक छन्दों यथा-दोहा, सवैया, कुण्डलिया आदि, विविध काव्यकथा रूढ़ियों यथा ककहरा, बारहमासा, संवाद, मंगल एवं विविध राग रागनियों यथा–टप्पा, कलंग, धमार, तिल्लाना, ठुमरी, प्रभाती आदि-आदि रागों में गाई गई है।

'शब्दावली' के मुख्य विषय निर्गुण मतवाद से सम्बद्ध है। विविध आडम्बरों का विरोध सर्वत्र दृष्टिगत है। विविध प्रकार के कर्मो केआडम्बर के बीच फँसे हुए मानव समाज को सहज, नैतिक एवं आडम्बर विहीन मार्ग दर्शन हो इस कृति का यही मुख्य लक्ष्य है।

शब्दावली का सबसे प्रिय विषय है—आध्यात्मिक रहस्यवाद और कबीर आदि की परम्परा में तुलसी साहब भी उस अगम्य प्रियतम के लिए आत्मा की पीड़ा भरी वेदना को निरन्तर व्यक्त करते हुए केवल मिलने की कामना ही नहीं करते उसके तादत्म्य से मिले सुख का अपने बिशिष्ट अनुभव के साथ व्यक्त करते हैं–

सतगुरु विरहिन बात कलेजे रोवै और चिल्लाइ।
हाय हाय हिये में निसि वासर हरदम पीर पिराइ॥
मैं दुखिया हौं दर्द दिवानी प्रीतम दस लखाई।
तुलसी प्यास बुझै प्यारे से चढ़ कर अधर समाई॥
किरपावंत संत समझावै और न लगै उपाई॥

---

१. प्रकाशित तुलसी साहब की शब्दावली भाग एक तथा दो बेलविडियर प्रिंटिग बर्क्स, इलाहाबाद।

सन्त साहित्य की समग्र अवधारणाएँ इस शब्दावली को सारतत्त्व के रूप में संकलित किया गया है।

रत्नसागर–तुलसी साहब की तीसरी कृषि 'रत्नसागर' है।[१] यह रत्नसागर सम्भवतया उनकी प्रारम्भिक कृति है। इस 'रत्न सागर' का मूल मन्तव्य मानव जाति के उद्धार से सम्बद्ध है। वे मानव जाति के उद्धार के विविध सन्दर्भों को अनेक शैलियों में रखते हैं जिनमें उनकी कथा शैली बड़ी ही रोचक है। इस सृष्टि रचना के बीच जीव का जन्म किन कारणों से होता है और किन कारणों से वह लोक में बंधा हुआ चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है। जीवन के भटकाव का मुख्य कारण उसकी कर्म संसक्ति एवं उनसे उत्पन्न संशक्तियाँ है। वे अपने प्रिय शिष्य हिरदै के विविध प्रश्नों का उत्तर देते हुए इस जीवन के बन्धन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालते हैं–

करनी करै भोगफल भाई। जोनी घर फल को भुगताई॥
यह रहनी की बात बिचारा। यामे नहीं होय निरधारा॥
करनी करै कर्म की बाजी। इनद्री सुख भोजन में राजी॥

यही कर्म एवं इन्द्री सुख ही संसक्ति एवं बार-बार जन्म धारण का कारण है। सन्तों का कर्त्तव्य है, मनुष्य को समझाकर, साधना की ओर उन्मुख करके तथा सत्संगति के सम्पर्क में प्रेरित करके जन्म-मृत्यु के बन्धनों से मुक्त करना और अपने शिष्य हिरदै के विविध प्रश्नों के उत्तर द्वारा अपने सिद्धान्तों का तुलसी साहब ने यहाँ विवेचन किया है। इन्होंने विश्वामित्र-वसिष्ठ, नारद कथा तथा अन्य लौकिक कथा प्रसंगों द्वारा परमार्थ सत्य का बड़ा ही सटीक एवं सही विश्लेषण किया है। शान्ति, दया, उदारता, क्षमा, धैर्य, सन्तोष, अहिंसा, विनम्रता एवं साधुता, अहंकारहीनता जैसे मानवीय मूल्यों की स्थापना करके उनका अनुपालन समाज के लिए आवश्यक बताया है। छुआछूत तथा भेदभाव के समूह विनाश के सम्बन्ध में इन्होंने जो उक्तियाँ स्थल-स्थल पर कहीं हैं–निश्चित ही आज के सन्दर्भ में उनका विशेष महत्त्व है। हिरदै तथा स्वयं के बीच संवाद के रूप में लिखी गई यह कृति निश्चित ही मानव मूल्यों की दृष्टि से आज भी प्रासंगिक है।

सन्त तुलसी साहब का मूल्यांकन

सन्त तुलसी साहब की सबसे बड़ी देन है, सम्पूर्ण मानव समुदाय के लिए–आध्यात्मिक अन्धानुकरण का पूर्णत: तिरस्कार॥ वे अध्यात्म के मूल तत्व को सन्त साधना से जोड़ते हैं, और सन्त साधना का वे अर्थ बताते हैं–वाह्याडम्बर शून्य, परम्परा से मुक्त तथा तर्कमंडित धर्मानुशासन। इसीलिए वे अपने युग के जैन, शिया, सुन्नी, वेदान्त, कर्मकांड, अंधपरम्परावाद के अन्तर्गत मूर्तिपूजन, विविध धार्मिक उत्सवों एवं कार्यों के आडम्बर आदि के विरोध में खड़े होते हैं। वे स्वयं निर्गुण संत के समर्थक हैं किन्तु निर्गुण साधक कबीर एवं नानकदेव की धार्मिक तथा व्यावहारिक मान्यताओं में व्याप्त रूढ़ियों का विरोध करते हैं। वे गुरु नानक देव के सरोवर एवं कबीरदास की चौका साधना की अपने ढ़ग से व्याख्या करके उसे वैज्ञानिक एवं तर्क संगत आधार देते हैं। उनका मूल सिद्धान्त है, परम्परा, पुराणवादिता, लोक प्रचलन, वेदवाद से हटकर उनसे भिन्न तर्क सम्मत साधना का मार्ग निर्मित करना ही मानव जाति का लक्ष्य है जो समाज के लिए सहज रूप से बोधगम्य हो सके।

पिंड में ब्रह्मांड का स्थिरीकरण—उनका सिद्धान्त इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है क्योंकि सम्पूर्ण आध्यात्मिक चेतना के केन्द्र बिन्दु में स्वयं को रखो, बाहर के संसार का अनुभव और ब्रह्मादि के संदर्भ केवल वाह्यानुभूति के हैं, आत्मानुभूति के नहीं। अत: आत्मानुभूति के मूलाधार अपने मन, बुद्धि, मति, विवेक, बोध तथा चैतन्य के द्वारा स्वयं में ही उस परम तत्त्व को जानने की चेष्टा करो जो मन्दिरों में है,

---

१. बेलविडियर प्रिंटिग वर्क्स, इलाहाबाद से प्रकाशित।

वेदों एवं किता‍ा में हैं, कर्मकांड एवं पंथ-भेष से जुड़ा है। आत्म चैतन्य एवं स्वतत्त्व का इस चैतन्य में अंकुरण करके उसी में स्व विलयन उनकी साधना का परम लक्ष्य है।

उनकी तीसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता लोक समुदाय से स्वयं को जोड़ने की है। उनके शिष्य सम्पूर्ण जातियों के व्यक्ति हैं। वे उनकी भाषा, उनके साक्ष्य, उनकी शैली, उनकी लोकरीतियाँ आदि का इसलिए अपनी कविता में प्रयोग करते हैं ताकि सहज ही बिना किसी औपचारिकता के साथ वे उनसे जुड़ सकें।

उनकी साधना एवं भक्ति का चौथा तत्त्व है, समग्र मानवीय मूल्यों की सामाजिक ग्राह्यता। जैसा कि कहा गया है—वे जाति पाँति एवं स्त्री-पुरुष तथा पिता-पुत्र का भेद आध्यात्मिक साधना में नहीं मानते है। वे हिरदै अहीर और उसके पुत्र गुनुवाँ को एक साथ धर्ममार्ग की दीक्षा देते हैं। वे महन्त फूलदास एवं उनके शिष्य सुरतिदास को भी साथ-साथ ज्ञानमार्ग पर ले चलते हैं। हिंसा के वे प्रबल विरोधी तथा पंथ, भेष कर्मकांड के पूर्णतः निंदक थे। वे आडम्बरपूर्ण धर्म, धर्मकथाओं की संसक्ति का निरन्तर विरोध करते हुए तर्कसम्मत धर्म साधना में प्रवृत्त होने के लिए सम्पूर्ण समाज को प्रेरित करते हैं। प्रेम, मैत्री , करुणा, विनम्रता, अहं भाव का त्याग उनकी साधना की मूल प्रवृत्ति थी। वे मानव जाति को मानवीयता के बन्धन में बाँधकर उनको एक साथ रहने एवं रखने के पक्षपाती थे। वे पंथों के रूप में विख्यात नहीं रहे हैं। सम्भव है, उनके देहावसान के बाद उनके मत को 'आवा पंथ' के नाम से अभिहित किया गया हो।

निष्कर्ष रूप से, कहा जा सकता है कि वे मानवीय विवेक तथा समय को धर्मसाधना के आधार के रूप में प्रेरित करते हुए समाज को रूढ़िवादिता से मुक्त करके धर्मभाव में प्रवृत्त करने के प्रति आजीवन कृत संकल्प रहे हैं।

✲✲✲✲✲✲✲

घट रामायण

भेद – पिंड और ब्रह्मांड का

॥ सोरठा ॥

स्रुति बुंद सिंध मिलाप, आप अधर चढ़ि चाखिया।
भाखा भोर भियान, भेद भान गुरु स्रुति लखा॥

अर्थ–सुरति बोध के अनुभव बिन्दु और परम तत्त्व के सिन्धु के सम्मिलन का आनन्द अन्तरात्मा (अधर) में प्रवेश करके चखा और मूल तत्त्व के रहस्य (ज्ञान) का अनुभव गुरु रूपी सुरति से प्राप्त करके दूसरे दिन प्रातः जगने पर (समाधि टूटने पर) उसका वर्णन प्रारम्भ किया॥

॥ छन्द स्रुति सिंध ॥

सत सुरति समझि सिहार साधौ। निरखि नित नैनन रहौ॥
धुनि धधक धीर गँभीर मुरली। परम मन मारग गहौ॥ १ ॥
सम सील लील अपील पेलै। खेल खुलि खुलि लखि परै॥
नित नेम प्रेम पियार पिउ कर। सुरति सजि पल पल भरै॥
धरि गगन डोरि अपोर[१] परखै। पकरि पट पिउ पिउ करै॥ २ ॥
सर साधि सुन्न सुधारि जानौ। ध्यान धरि जब थिर थुवा[२]॥
जहँ रूप रेख न भेष काया। मन न माया तन जुवा॥ ३ ॥
अलि अंत मूल अतूल कँवला। फूल फिरि फिरि धरि धसै॥
तुलसि तार निहार[३] सुरति। सैल सत मत मन बसै ॥ ४ ॥

अर्थ–यद्यपि मैं उसे निरन्तर आँखों से देखता हूँ फिर भी, सुरति ध्यान के तत्त्व (सत्य तत्त्व) को समझकर दिव्य आध्यात्मिक अनुभूति को मैंने साधा है। अनाहत नाद की दशा में सहज गंभीर वंशीनाद की ध्वनि की उत्तेजना (धधक) से मेरे मन ने उस रहस्यमय मार्ग का अनुगमन किया॥ १ ॥

शीलयुक्त समत्वभाव में वह विलक्षण भाव (अपेल पेलौ युक्त लीला (खेल) खुलकर दिखाई पड़ने लगा। नित्य प्रति नियमपूर्वक प्रियतम (निर्गुण ब्रह्म) का प्यार सुरति रूपी सेज पर पल-पल संचरित है। शून्याकाश से लगी हुई साधना की गाँठरहित (अपोर) प्रेम डोरी को परखते हुए निर्गुण ब्रह्म रूपी पति के वस्त्रों को थाम्हें आत्मा रूपी प्रेमिका रात-दिन–' पिउ (प्रियतम) पिउ' करती रहती है॥ २ ॥

---

१. जोड़ या गाँठ के।

२. हुआ।

३. मुन्शी देवीप्रसाद जी की पुस्तक में ''तार'' के आगे ''पार'' का शब्द भी है।

आत्मसंधान को शून्याकाश में भलीभाँति नियंत्रित करके ध्यान धारणा के बाद जब मन स्थिर हुआ (जुवा) तब देखा कि उस शीर्ष बिन्दु पर न कोई रूप है, न लक्षण (रेख) है, न कोई भेष रचना है, न कोई शरीर है, न मन है, न माया है, न युवा शरीर है॥ ३॥

उस सहस्त्रार कमल के मूल के अन्त में एक भ्रमर है जो पुष्प को आधार बनाकर बार-बार उसी में प्रवेश करना चाहता है। तुलसी साहब कहते हैं कि उस सुरति के सम्बद्ध सूत्र को देखकर सैकड़ों पर्वत शिखरों से श्रेष्ठ (इस साधना के केन्द्र में) साधना में मेरा मन निवास करता है॥ ४॥

॥ छन्द २॥

हिये नैन सैन सुचैन सुन्दरि। साजि स्रुत पिउ पै चली॥
गिर गवन गोह गुहारि मारग। चढ़त गढ़ गगना गली॥ १॥
जहँ ताल तट पट पार प्रीतम। परसि पद आगे अली॥
घट घोर सोर सिहार सुनि के। सिंध सलिता जस मिली॥ २॥
जब ठाट घाट बैराट कीन्हा। मीन जल कँवला कली॥
अली अंस सिंध सिहार अपना। खलक लखि सुपना छली॥ ३॥
अस सार पार सम्हारि सूरति। समझि जग जुगजुग अली॥
गुरु ज्ञान ध्यान प्रमान पद बिन। भटकि तुलसी भौ मिली॥ ४॥

अर्थ– अपने हृदय के नेत्रों को, नेत्र भंगिमाओं को अत्यन्त आनन्दपूर्ण करके अर्थात् सुधार कर सुरति से सजी हुई अपने उस पति से मिलन के लिए पुकारती हुई मैं चली और अत्यन्त सहजतापूर्वक पर्वतों (साधना केन्द्रों), की गुफाओं (गौह) समाधि चित्त की विविध अवस्थाओं और मार्गों को सकलती हुई शून्य गगन के पर्वत शिखर पर चढ़ती है॥ १॥

उस शून्य गगन में स्थित सरोवर के उस पार प्रियतम (ब्रह्म) के पुनः चरण स्पर्श करके सखी आगे बढ़ी। जहाँ घनघोर घटाओं की ध्वनि (अनाहत नाद) के शोर को सुनकर विराट सृष्टि यह आत्मा रूपी प्रेमिका उस ब्रह्म से ऐसे मिली–जैसे समुद्र से सरिता (नदी)॥ २॥

उस ब्रह्म सिन्धु के रूपरंग, घाट, वैराट (विशाल) को देखा तो उसमें उस आत्मा को जल की मछली जैसी या कमल की कली जैसा अपने में अनुभव किया। उसे समस्त संसार, छलमयी स्वप्न की भाँति दिखने लगा और उस सिंधु का । (अपना अशिन् एवं स्वयं को उसका) अंश रूप माना॥ ३॥

इस संसार के उस पार स्थित ब्रह्म ज्ञान के समुद्र को समझ कर युगों-युगों तक उसका ख्याल रखो। यही नहीं, सद्गुरु के द्वारा दिखाए गए ज्ञान और ध्यान के प्रमाण के बिना यह आत्मा रूपी युवती भटक कर पुनः भवसागर में मिल जाती है॥ ४॥

॥ छन्द ३॥

अलि अधर धार निहारि निज कै। निकरि सिखर चढ़ावही॥
जहँ गगन गंगा सुरति जमुना। जतन धार बहावही॥ १॥
जहँ पदम प्रेम प्रयाग सुरसरि। धुर गुरू गति गावही॥
जहँ संत आस बिलास बेनी। बिमल अजब अन्हावही॥ २॥
कृत कुमति काग सुभाग कलिमल। कर्म धोइ बहावही॥
हिये हेरि हरष निहारि घर कौ। पार हंस कहावही॥ ३॥

मिलि तूल मूल अतूल स्वामी। धाम अबिचल बसि रही॥
अलि आदि अंत बिचारिपद कौ। तुलसि तब पिव की भई॥ ४॥

अर्थ—यह आत्मा रूपी सखी अपने को नीचे की धारा में देखकर ऊपर (सहस्त्रार पर) चलने के लिए तत्पर रहती है। वह ऐसा शिखर (सहस्त्रार) है जहाँ गंगा (इड़ा) तथा यमुना (पिंगला) बड़े यत्न पूर्वक अपनी धाराएँ बहाकर शून्याकाश में मिलन करती हैं॥ १॥

वह सहस्त्रार बिन्दु से सम्बद्ध संसक्ति ही प्रयाग की गंगाधारा हैं और वहाँ उस ब्रह्म के आदि गुरु गायन करते रहते हैं। जिस इंड़ा-पिंगला के संगम पर आत्मा अपने को चमत्कारपूर्ण ढंग से निर्मल स्नान कराता रहता है॥ २॥

बड़े भाग्य से यहाँ कलिमल रूपी काग के सदृश व्यक्ति अपने कर्मों के पापों को धोकर बहा देते हैं और वे अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक हृदय से स्वयं को देखकर आध्यात्मिक जगत (उस पार) के हंस कहे जाते हैं॥ ३॥

उनके पास जो कुछ भी थोड़ा बहुत (तूल-तुलनीय) धर्म हैं—उस अतुल्य ब्रह्म से मिलाकर उस अविचल (निर्गुण-ब्रह्म) धाम में निवास करते हैं। हे सखी! इस ज्ञान को (पद) आदि-अन्त तक विचार करके मैं (तुलसी साहब) तत् पश्चात् उस परमात्मा (पिव) रूपी पति की होकर रह रही हूँ॥ ४॥

॥ छन्द ४॥

अलि पार पलँग बिछाइ पल पल। ललक पिउ सुख पावही॥
खुस खेल मेल मिलाप पिउ कर। पकरि कंठ लगावही॥ १॥
रस रीति जीति जनाइ आसिक। इस्क रस बस लै रही॥
पति पुरुष सेज सँवार सजनी। अजब अलि सुख का कहो॥ २॥
मुख बैन कहनि न सैन आवै। चैन चौंज चिन्हावही॥
अलि संत अन्त अतन्त जानै। बूझि समझ सुनावही॥ ३॥
जनि चीन्हि तन मन सुरति साधी। भवन भीतर लखि लई॥
जिन गाइ सब्द सुनाइ साखी। भेद भाषा भिनि भई॥ ४॥
अलि अलष अंडन खलक खडा। पलक पट घट घट कही॥
(तुलसी) तोलबोल अबोल बानी। बूझि लखि बिरले लई॥ ५॥

अर्थ—हे सखि! मैं उस पार अपनी सेज (पलंग) बिछाकर बलवती आकांक्षा (ललक) करती हुई (पति के मिलन का) आनन्द प्राप्त कर रही हूँ। मैं आनन्दपूर्वक पति (ब्रह्म) से क्रीड़ा, आलिंगन (मेल-मिलाप) करती हुई पकड़कर उन्हें गले गल लेती हूँ॥ १॥

अपने को उनकी प्रेमिका प्रकट करके रस की प्रेममयी कला में उन्हें जीत लेती हूँ और उन्हें पूरी तरह से अपने प्रेम के वश में भी कर रखा है। हे सखी! उस ब्रह्म रूपी पति (पुरुष) की सजाई हुई शय्या पर मैं अद्‌भुत आनन्द प्राप्त करती हूँ। उस आनन्द का मैं कैसे वर्णन करूँ?॥ २॥

उस आनन्द का वर्णन न मुख, न वाणी से, न इशारे से कर सकती हूँ। शान्ति की दशा में उसका स्वरूप केवल चित्त समझता है। हे सखी! उस अनन्त आनन्द का अन्तिम रूप केवल सन्त जानता है और वह उसका अनुभव करके, उसको समझकर दूसरे को सुनाता है॥ ३॥

जिन्होंने उस ब्रह्म को पहचान कर तन-मन को एक करके उनकी सुरति साधना साध ली है उसने उसे अपने भीतर-भीतर देख लिया है। जिन्होंने उसे सबद (शब्द) और साखी के रूप में इसे सुनाकर गाया है उनमें भाषा भेद के कारण वह भिन्न-भिन्न जैसा लगने लगा॥ ४॥

हे सखि! वह ब्रह्मांड (अंडन), सृष्टि (खलक) के बीच अलक्ष्य रूप में वह पलकों के पटों तथा घट-घट में खड़ा है। तुलसी साहब कहते हैं कि वह तुलनीय एवं अकथ्य वाणी से (पृथक्) है और बिरले ही उसे देखते और समझते तथा प्राप्त करते हैं॥ ५॥

॥ छन्द ५॥

अलि देख लेख लखाव मधुकर। भरम भौ भटकत रही॥
दिन तीनि तन सँग साथ जानौ। अंत आनँद फिरि नहीं॥ १॥
जग नहिन सार असार सखिरी। भ्रमत बिधि बस भौ महीं।।
धन धाम काम न कनक काया। मुलक माया लै बही॥ २॥
येहि समझि बूझि बिचारिमन में। निरखि तन सुपना सही॥
जम जाल जबर कराल सजनी। काल कुल करतब लई॥ ३॥
सब तिरथ बरत अचार अलि से। कर्म बस बन्धन भई।।
तुलसि तरक बिचारि तन मन। संत सतगुरु अस कही॥ ४॥

अर्थ—हे सखी! उसके रूप लेख, उसके लक्षण, रूप सौन्दर्य तथा आकर्षण को देखकर भ्रमर भ्रमित होकर भटकता रहा। वह इस शरीर के साथ उसमें लिप्त होकर कुछ ही दिनों तक (दिन तीनि-मृत्यु तक) साथ रहा और उसके बाद उसको वह आनन्द उसे पुनः नहीं मिला॥ १॥

हे सखी! इस असार संसार में कोई सार तत्त्व नहीं है और प्राणी भ्रमवश दैवाधीन होकर भ्रमित होता रहता है। वह माया रूपी नदी धन, धाम (गृह), कामनाओं, स्वर्णिम शरीर तथा सारे देश की माया लेकर बह जाती है॥ २॥

मन में इस बात को समझ, बूझ तथा विचार करके देखो कि यह सब सही-सही स्वप्न है। हे सजनी! यम का फन्दा बड़ा ही मजबूत तथा कठोर है और वह व्यक्ति के काल, कुल एवं कर्म-कौशल (करतब) को नष्ट कर देता है॥ ३॥

हे सखी! समस्त तीर्थ, व्रत, धर्माचरण ये कर्मवश होकर व्यक्ति के लिए बन्धन बन जाते हैं। तुलसी साहब निष्कर्ष निकालते हुए कहते हैं कि तन मन से तर्पण करते हुए मेरे इस कथ्य पर विचार करो कि किसी सत्गुरु संत ने इस प्रकार बताया है॥ ४॥

॥ छन्द ६॥

सखि समझि सूर सहूर सुनि कै। बदन बिच सुधि बुधि गई॥
करूँ कवन भवन उपाव बिन बस। नेक मधुकर बस नहीं॥ १॥
मिलि पाँच तीनि पचीस निसदिन। गाँठि गुन बन्धन भई॥
भइ बिबस बस नहिं दाँव लागै। दृढ़ निमख[१] नहिं आवही॥ २॥
धरि हाथ पटकि पुकारि पिव सँग। हारि जिव सँग हटि रही॥
कहुँ ठौर मोर न जोर चालै। आली बिपति कुछ का कही॥ ३॥
सुनि ज्ञान ध्यान न कान मानै। बिकल तन मन बिचलई॥
तुलसी बिरह बेहाल[१] हिये में। मौत दिन देवै दई॥ ४॥

---

१. लाड़-प्यार

अर्थ–सखी अपने सूरमा मन की इस नासमझी को सुनकर शरीर के बीच सुधि-बुद्धि रहित होकर रह गई। यह चित्त रूपी मधुकर लेशमात्र भी वश में नहीं आ रहा है, इसके लिए कौन-सा उपाय गढ़कर बनाऊँ॥ 1॥

नित्य प्रतिदिन पाँचों इन्द्रियाँ, तीनों ज्ञानवृत्तियाँ एवं पचीसों लोकात्मकगुण वृत्तियों भौतिक गुणों की गठरी के रूप में मानव जाति के लिए बन्धन बन गई है। उनके वश में होकर मानव चेतना विवश हो उठी है, उसका मुक्ति के लिए कोई दाँव नहीं लगता और एक क्षण भी (निमिख) दृढ़ता का भाव नहीं आने पाता॥ २॥

घर में हाथ पटक कर प्रियतम (निर्गुण ब्रह्म) को साथ-साथ पुकारती हुई हार मानकर जीव से दूर हटकर रहने लगी। किसी स्थान पर भी मेरा वश नहीं चल पा रहा है। हे सखी! मैं अपनी विपत्ति को क्या कहूँ॥ ३॥

मेरे ज्ञान की बात सुनकर ध्यान (समाधि चित्त) विश्वास (कान) नहीं मानता और शरीर तथा मन दोनों विचलित हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं अपने प्रियतम (निरंकार ब्रह्म) के लिए हृदय से व्याकुल हो उठी हूँ–हे दैव! किसी दिन (शीघ्र) ही मुझे मृत्यु दे दो॥ ४॥

॥ छन्द ७॥

सखि सीख सुनि गुनि गांठि बाँधै। ठाट ठट सतसँग करै॥
जब रंग संग अपंग अलि री। अंग सत मत मन मरै॥ १॥
मन मीन दिल जब दीन देखै। चीन्ह मधुकर सिर धरै॥
अलि डगर मिलि जब सुरति सरजू। कँवल दल चल पद परै॥ २॥
थिर थोव ठुमकि टिकाव नैना। नीर थिर जिमि थम थिर॥
यहि भाँति साथ सुधारि मन कौ। पलक गिरि गगना भरै॥ ३॥
लखि द्वार दृढ़ दरबार दरसै। परसि पुनि पद पिउ घरै॥
गुरु गैल मेल मिलाप तुलसी। मन्त्र विषधर बसि करै॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! मेरी शिक्षा सुनो, मनन करो (गुनो) और गाँठ बाँध लो और अब तू दृढ़ चित्त से सत्संग करो। हे सखी! जब उस निर्गुण का रंग तथा संग चित्त को प्राप्त होगा तो मन में स्थित नाना प्रकार के विचार समाप्त हो उठेंगे॥ १॥

मन-सरोवर का मत्स्य जब हृदय को दुखी देखेगा वह मधुकर को पहचान कर अपने शीश पर धारण करेगा। हे सखि! जब सुरति रूपी सरयू नदी रास्ते में मिलेगी तब हे कमल दल! तू चलकर उसी में जलस्थ हो जाएगा॥ २॥

उस समाधि वृत्ति में स्थिर करके चित्त के नेत्रों को रोक करके (ठुमकि) ठहराओ। इस प्रकार, मन को सुधार कर दोनों पलकों के बीच में स्थित ध्यान गिरि में उसे केन्द्रित करो॥ ३॥

द्वार दृढ़ होने पर उस निर्गुण ब्रह्म का दरबार दिखाई पड़ेगा और पुनः पति के भवन का इस प्रकार स्पर्श करो। तुलसी साहब कहते हैं कि गुरु के रास्ते पर सत्संगति द्वारा चलकर माया रूपी सर्प को उस महामंत्र द्वारा वश में कर लो॥ ४॥

॥ छन्द ८॥

सखि भेद भाव लखाव लै गुरु । मरम केहि मारग मिलै॥
जेहि जतन पतन पियास पलपल। पकरि मन केहि बिधि चलै॥ १॥
गुन गोह गति मति गजब गैला। सिखरि साधन करम पलै॥

सखि सुरति मंज समान संजम। मैल मन संग दुख खलै॥ २॥
सुनि सुलभ लखन लखाव सजनी। दुलभ दृढ़ कलिमल दलै॥
मोहिं दीन लीन जो चीन्ह चेरी। तपन बिच्च तन मन जलै॥ ३॥
सखि चरन सरन निवास निसदिन। दुख दवा मोहिं अब मिलै॥
गुरु सरन मन्त्र मिलाप तुलसी। जबर सँग जुलमी टलै॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! गुरु को साथ लेकर उसमें भाव एवं लोक के प्रति भेदभाव दर्शित करो–मालुम नहीं, उनके साहचर्य से आध्यात्मिक रहस्य किस मार्ग में मिल जाएं। जिस यन्त्र से लोक वासनाओं के प्यास का पतन हो पल पल उसके विषय में सोचो और यह भी स्मरण करो कि गुरु को अन्तिम रूप से स्वीकार करके मन किस प्रकार साधना लक्ष्य की ओर आगे बढ़ता जाए॥ १॥

गुणों की कन्दरा के प्रवेश करने पर मन की आश्चर्यजनक गति दिखाई पड़ती है और सहस्त्रार तक अन्य साधन कैसे रह सकते हैं। हे सखि! सुरति में निमज्जित (मंज) और वैसा ही संयम आवश्यक है। मैले यंत्र के साथ निश्चित ही चित्त यहाँ दुखी रहता है॥ २॥

हे सजनी! उन सर्व सुलभ लक्षणों (लखन) को दिखावो जो दृढ़तापूर्वक दुर्लभ कलिमल का दलन कर दे। गुरु इस दीन को दासी के रूप में पहचान लिया है और अब ईश्वर के विरह में मेरे तन मन दोनों जल रहे हैं॥

हे सखी! मेरा निवास तो अब गुरुचरणों में हो रहा है और इसीलिए दुःख रूपी दावाग्नि मिलती हैं, किन्तु समीप नहीं आते। तुलसी साहब कहते हैं कि गुरु द्वारा मिले मंत्र से मेरा तादात्म्य हो उठा है–अतः शक्तिमान का साथ है और कलिकाल का जुल्म टल गया है।॥ ४॥

॥ छन्द ९॥

जब बल बिकल दिल देखि बिरहिन। गुरु मिलन मारग दई॥
सखि गगन गुरु पद पार सतगुरु। सुरति अंस जो आवई॥ १॥
सुरति अंस जो जीव घर गुरु। गगन बस कंजा मई॥
अलि गगन धार सवार आई। ऐन बस गोगुन रही॥ २॥
सखि ऐन सूरति पै न पावै। नील चढ़ि निरमल भई॥
जब दीप सीप सुधारि सजि कै। पछिम पट पद में गई॥
गुर गगन कंज मिलाप करि कै। ताल तज सुन धुनि लई॥ ३॥
सुनि सब्द से लखि सब्द न्यारा। प्रालबद जद क्या कही॥
जेहि पार सतगुरु धाम सजनी। सुरति सजिभजि मिलिरही॥ ४॥
अस अलल अंड अकार डारै। उलटि घर अपने गई॥
येहि भाँति सतगुरु साथ भेंटे। कर अलो आनँद लई॥ ५॥
दुख दाउ कर्म निवास निस दिन। धाम पिया दरसत वहीं॥
सतगुरु दया दिल दीन तुलसी। लखत भै निरभै भई॥ ६॥

अर्थ–जब इस विरहिणी के हृदय को गुरु ने व्याकुल देखा, अपने मिलन द्वारा उसे (आगे का) मार्ग दिखाया) हे सखी! गुरु गगन–गुफा के उस पार हैं और जब 'सुरति' का प्रकाश (आवेग) आता है॥ १॥

जीव जो सुरति साधना का अंश है, गुरु के घर में आकर गगन की शून्य गुहा में रहते हुए कमलमय हो गया। हे सखि! गगन की सहस्त्रारधार में अपने को सँवारती हुई केवल देखने भर के लिए इन्द्रिय गुणों से जुड़ी दिखती है–अन्यथा वह स्वयं गुरुमय हो उठी है॥ २॥

हे सखि! वह उस सहस्त्रार के नील पर्वत पर चढ़कर निर्मल हो उठी और उसकी लौकिक चेतना विलुप्त हो उठी और वह आत्मा जब अपने दीप्त स्वरूप को थोड़ा और सुधार कर तथा साजसज्जा करके उस पश्चिमी छोर पर पहुँची (सहस्त्रार बिन्दु के अनाहत नाद के पास) तो उस गुरु के द्वारा आकाश (शून्याकाश) के सहस्त्रार कमल से मिल करके उसने अनाहद नाद की ध्वनि को सुना॥ ३॥

शब्द सुनकर तथा शब्दातीत ध्वनि की प्रतीति करके पहले से कहे जाते हुए लोक शब्दों की निरर्थकता (प्राल बद) के विषय में क्या कहा जाए? हे सजनी! जिसके उस पार सद्गुरु की निवास स्थली है, मैं सुरति के साथ सजी-धजी उनसे मिल पड़ी॥ ४॥

ऐसे अंडाकार संसार (अलल) अर्थात् ब्रह्मांड का त्याग करके मैं इससे अलग अब अपनी शून्य स्थली गगन गुफा में पहुँच गई। इस प्रक्रिया द्वारा मैंने सतगुरु से भेंट किया और हे सखि! सारा आनन्द प्राप्त कर लिया॥ ५॥

अपने पति परमात्मा के धाम में रहती हुई दुःख, दावाग्नि एवं कर्म की स्थली रूपी इस संसार को निर्लिप्त भाव से द्रष्टा की भाँति देखती रहती हूँ। तुलसी साहब कहते हैं कि यह दीनहीन जीव सद्गुरु के दयाभाव से दर्शक की भाँति इस संसार को देखता हुआ निर्भय हो उठा॥ ६॥

॥ छन्द १०॥

अलि आदि अजर दयाल सतगुरु। मर्म कहौ कहँ लगि कहूँ॥
उस कुटिल खोट मलीन बुधि मैं। चित छली मनमत रहूँ॥ १॥
धर धोइ सतगुरु सरस साबुन। ज्ञान सिल जल मल बह्यो॥
सखि मैल मन जस चिकट कपरा। उजल हिये अलि अस भयो॥ २॥
जब आदि अटल अनादि रँग में। चटक रँग सतगुरु दयो॥
कहुँ कौन सिफति सुनाइ सजनी। अचल सलिता सिंध लह्यो॥ ३॥
सिंध सब्द सतगुरु सुरति सलिता। अलि मिलन अस बिधि भयो॥
सिंध बुन्द तन मन बन बिराटा। बूझ बिन बादै बह्यो॥ ४॥
जब उलटि घर अलि आदि चीन्है। दीन दिल सतगुरु लयो॥
सखि आदि अंत समाद समझी। बरनि बिधि जस जस कह्यो॥ ५॥
सखि संत सतगुरु बरनि बरनौ। भाखि समझि सुनावही॥
गुरु चारि तन अस्थान अलि सुनि। समझि भेद लखावही॥ ६॥
सखि प्रथम गुरु सुनि कँवल कंजा। सहस दल पल पावही॥
सखि दुसर गुरु गढ़ गगन ऊपर। कँवल दुइ दल गावही॥
अलि तीनि गुरु तन माहिं पेखौ। चौकवल स्त्रुति लावही॥ ७॥
सतलोक चौथे चार सतगरु। अगम सिंध कहावही॥
जबँ सुरति शब्द मिलाप सजनी। संत वोहि घर जावही॥ ८॥
सखि मूल संत दयाल सतगुरु। पिउ निहाली मोहि करी॥
सत सुरति सिंधु सुधारि तुलसी। सार पद जद लखि परी॥ ९॥

अर्थ–हे सखी! मेरे सत्‌गुरु आदितत्त्व हैं, अजर-अमर हैं, बड़े ही दयावान हैं, उनके रहस्य का कहाँ तक वर्णन करूँ। उनके अभाव में इस कुटिल, भ्रष्ट, मलिन बुद्धि में छलिया चित्त को लेकर जन्मता रहता हूँ॥ १॥

सत्‌गुरु ने अत्यन्त आनन्दमयी साबुन से मेरा शरीर (घर) धो डाला और ज्ञान की शिला पर से मलिन जल बह गया। हे सखि! चिरकुट कपड़े जैसा मलिन मन अब इतना निर्मल एवं उज्ज्वल रूप का हो उठा॥ २॥

चित्त की इस उज्ज्वलता के वस्त्र पर अपने मूल रंग से रंगकर अब उसे और चटकदार बना दिया। हे सखि! फिर मैं उसका क्या वर्णन करूँ, जैसे कोई अचल नदी सिंधु रूप परमात्मा में जाकर मिल उठी हो॥ ३॥

इस प्रकार, सुरति नदी के सत्‌गुरु सिंधु से मिलन हो उठा। सीमित तन मन में स्थित चेतना बिन्दु इस संगम से विराट हो चली और मेरी यह समझ में न आया, कि वह मन कब ब्रह्म धारा में बह उठा॥ ४॥

हे सखी! जब उत्मनी दशा में अपने मूल आध्यात्मिक निवास की पहचान कर ली तो पता चला कि यह दुर्बल दीन आत्म तत्त्व अब मेरा नहीं, सत्‌गुरु का हो उठा। हे सखि! आदि-अन्त तक मैंने उस रचना को समझा और जैसा-जैसा मुझे बताया गया है, उसी प्रकार मैंने यहाँ (इस कृति में) उसका वर्णन किया है॥ ५॥

हे सखि! सद्‌गुरु सन्त ने इसका जो कुछ भी वर्णन किया है, स्वयं समझने के बाद कहकर सुना रहा हूँ। हे सखी! इन चार स्थलों का गुरु मुख से वर्णित स्वरूप सुनो और मैं (गुरुमुख से सुन समझकर) उनका भेद बता रहा हूँ॥ ६॥

हे सखी! इन चारो में से प्रथम बिन्दु पर 'कँवल कंज' है जिसमें सहस्रार दल समाधि के क्षण (पल) प्राप्त होता है। हे सखि! दूसरा गगन गुहा के ऊपर स्थित सत्गुरु का गढ़ है–जहाँ दो दलों वाला कमल है। हे सखी! सत्गुरु के शरीर को देखो, जहाँ चार दलों वाला कमल सुरति समाधि प्राप्त कराता है (स्रुति लावहीं)॥ ७॥

सत्गुरु का चौथा लोक सत लोक है–जो अगम सिंधु के नाम से पुकारा जाता है–उसे 'अगम्य सिंधु' भी कहा जाता है। इस सिन्धु से सुरति साधना का संगम होता है और संतों की चित्त दशा निरन्तर वहीं जाकर निवास करती है॥ ८॥

हे सखि! जगत के मूल (परमात्मा रूप) संत तथा दयालु सत्यगुरु ने मुझे पति परमात्मा के लिए व्याकुल बना दिया है। तुलसी साहब कहते हैं कि सत् सुरति समाधि रूपी समुद्र को सुधारो, तभी वह परमात्मा रूपी सार तत्त्व दिखाई पड़ सकता है॥ ९॥

॥ छन्द ११॥

लख अगम भेद अलोक अलि री। संत सतगुरु मोहिं कह्यौ॥
तिहुँ लोक से री अलोक न्यारा। पार मारग मोहिं दयौ॥ १॥
सिंध सब्द सतगुरु किरनि चेला। सुरति सब्द मिलावही॥
सतलोक सिंध सम्हार अलि लख। मिलन समझ सुनावही॥ २॥
सखि सिंध बुन्द मिलाप सतगुरु। किरनि सुरज कहावही॥
सखि समुद जल जस भरत बदरा। भूमि बरस बहावही॥ ३॥
अलि सिमटि नीर समीर सलिता। सिंध समझि समावही॥
सखि सिंध बुन्द जो सिष्य सतगुरु। गवन गत मत गावही॥ ४॥
सखि जलहि जल बल एक करिकै। भूमि भर्म नसावही॥

चित चीन्ह जैसे खेल चौपड़। जुग नरद घर आवही॥ ५॥
जिमि किरनि भास निवास रबि में। गगन मर्म मिलावही॥
अलि गगन नास अकास बिनसै। रबि रहन नहिं पावही॥ ६॥
अलि सिंध सूरज ब्रह्म कहि नद। किरनि जीव कहावही॥
सब ठाट बाट बिराट बिनसै। सुरज कहँ होइ रहावही॥ ७॥
सखि सुरज ब्रह्म विनास किरनी। जब अकास नसाइये॥
सखि सुरज कहौ केहि ठाम रहि। सोइ समझ खोजलगाइये॥ ८॥

अर्थ—हे री सखी! इस अगम्य (अध्यात्मिक) लोक को देखकर संत सतगुरु ने मुझसे कहा। यह आध्यात्मिक लोक तीनों लोकों से विलक्षण है और इस लोक में प्रवेश का मार्ग मुझे गुरु ने ही बताया है॥ १॥

इस ज्ञान के बाद मुझे लगने लगा कि सिन्धु शब्द ही सतगुरु है और उस जल की चमक शिष्य है। गुरु तथा शिष्य को सुरति ध्यान ही एक करता है। हे सखि! देखो, इस सिन्धु में ही 'सत् लोक' समाया हुआ है और शिष्यगण सिन्धु तथा बिन्दु के मिलन के अनुभव का ही गुणगान करके सुनाते रहते हैं॥ २॥

हे सखि! सिन्धु एवं शिष्य रूपी बिन्दु का मिलाप ही सत्गुरु (ब्रह्म) है। यह सम्मिलन उसी प्रकार है, जैसे सूर्य और उसकी किरणों का मिलाप। हे सखि, समुद्र का जल जैसे अपने में आत्मसात् करके बादल पुनः उसे भूमि पर बरसाता है—उसी प्रकार शिष्य भी सत्गुरु के सम्पर्क में ब्रह्मानुभूति से आत्म साक्षात्कार करके उसे पुनः लोक में जन समुदाय के बीच रखता है॥ ३॥

हे सखि! वही जल तथा वायु तथा तालाबों को सिन्धु समझकर उसमें पुनः समाविष्ट हो उठता है। ठीक उसी प्रकार, शिष्य तथा सत्गुरु बिन्दु तथा समुद्र हैं जो परस्पर एक दूसरे से परिपक्व होकर पुनः उन्हीं में मिल जाते हैं। अतः एक दूसरे से मिले होने के उनके स्वरूप का मैं वर्णन करता हूँ॥ ४॥

हे सखि! साधक शिष्य तथा गुरु दोनों जल को ही जल के माध्यम से ही एक रूप करके भूमि (माया) होने का भ्रम दूर करते हैं। अपने चित्त से पहचानों जैसे चौपड़ खेल के खिलाड़ी दो हैं किन्तु एक ही घर को लौटते हैं॥ ५॥

जिस प्रकार किरणों के प्रकाश का निवास सूर्य में है और आकाश इस मर्म का नियन्ता है। हे सखि! उसी प्रकार, जैसे आकाश का विनाश होने के बाद समझ शून्य नष्ट हो जायेगा और वहाँ सूर्य रहने नहीं पाएगा॥ ६॥

जब आकाश नष्ट हो जाएगा तो हे सखि! सूरज की किरणें भी विनष्ट हो उठेंगी—तब बताओं, वह सूरज कहाँ है, किस स्थान पर चला गया, सोच समझ कर खोज करो॥ ८॥

सोइ धाम ठाम ठिकात सजनी। घर समझ जहँ जाइये॥
नहिं और आस बिनास सबको। कोइ रहन नहिं पाइये॥ ९॥
सखि नीर छीर मिलाप समुन्दर। बदर फिरि भरि लावही॥
जल बरसि नद मिलि समुंद आवै। जाइ पुनि फिरि आवही॥ १०॥
अस जीव आवागवन माहीं। ब्रह्म जीव कहावही॥
बस कर्म काल बिनास निस दिन। अगम घर नहिं पावही॥ ११॥
अलि समुन्द आदि बुन्याद कह सोइ। स्त्रोत केहि घर गावही॥

करि खोजि रोज बिचारि मन में। गैल गुरु सँग पावही॥ १२॥
सखि संत चरन निवास चेरी। अधर समझ सुनावही॥
लखि सिंध बुन्द से अगम आगे। देखि समझि समावही॥
सोइ समझ सतगुरु सार सजि के। लेख लखन लखावही॥ १३॥
जिमि धार मिलि जल मीन चढ़िके। अधर घर धसि धावही॥
अलि अमर लोक निवास करिके। सुख अचल जुग पावही॥ १४॥
गुरु कंज सतगुरु मज मिलि के। अंज अमल पिलावही॥
सज सुरति निरति सम्हार मिलिके। पिलि पुरुष पिय पावही॥ १५॥
एरी अगम दीनदयाल सतगुरु। हाल हरष निहारही॥
तुलसिदास बिलास कहि अस। संत अज अरथावही॥ १६॥

अर्थ–हे सजनी! उस स्थान को खोजो क्योंकि वही आत्मा का मूल निवासस्थल है, वही उसका ठिकाना है (ठाँव) है, और वह साधक का घर है तथा उसी को ही अपना समझ कर वहीं जाओ। सभी के लिए अन्य कोई निवास स्थली की आशा नहीं है तथा वह अन्यत्र नहीं रहने पाएगा॥ ९॥

हे सखि! आत्मा तथा ब्रह्म का मिलाप, नीर-क्षीर मिलन समुद्र से सम्बद्ध है और बादल पुनः पुनः उसी से ले जाते तथा वहीं दे आते हैं। बादल जल बरसते हैं, वह नदी में आता है और नदी के द्वारा गया हुआ जल पुनः समुद्र में आता है॥ १०॥

इस प्रकार, जीव जगत में आवागमन के कारण केवल जीव कहलाता है और कर्म तथा काल के प्रभाव से यह विनाशधर्मी जीव अज्ञानता वश ब्रह्म का सन्निध्य नहीं प्राप्त करता॥ ११॥

हे सखि! उसी अनादि समुद्र को निर्गुण ब्रह्म समझें, वही जगत का मूल तथा आदि आधार है। उसका स्रोत कहाँ है, किसी को पता नहीं है। मन में अच्छी तरह से प्रतिदिन विचार करके देखो, उसे पाने का मार्ग (गैल) गुरु सान्निध्य से ही प्राप्त किया जा सकता है॥ १२॥

हे सखि! सन्त-चरणों में निवास करके उनकी दासी बनो और वे अन्तः लोक में स्थित उस ब्रह्म विद्या के विषय में बताएँगे। उस मूल ब्रह्म तत्त्व को विन्दु और सिन्धु के मिलन की दशा के भी आगे समझकर, देखकर उसमें विलीनता प्राप्त करो ॥ १३॥

जिस प्रकार जल तथा धारा पर जलस्थित मछली चढ़कर अपने अन्तर्तम में स्थित निवास में प्रवेश करके दौड़ती है–नितान्त सहजभाव से, वैसे ही, साधक उस अमर लोक में निवास करता हुआ अनन्त -अनन्त युगों तक आनन्द प्राप्त करेगा ॥ १४॥

गुरु रूपी कमल और सत्गुरु (ब्रह्म) रूपी सौन्दर्य (का मंत्र) मिलकर निर्मल अमृत (अंज) का पान कराएँगे। इस प्रकार सुरति-निरति के सौन्दर्य से सज्जित स्वयं पति रूपी ब्रह्म के सान्निध्य का सुख प्राप्त करोगे।। १५॥

अरी री! सखी!! सर्वथा अगम्य दीन दयालु प्रभु ही सतगुरु हैं–प्रतिक्षण हर्षपूर्वक वे भक्त की दशा देखते रहते हैं। तुलसी साहब उनके इस निर्गुणमयी लीला-विलास का सन्त महात्माओं के लिए गान करते हुए उनके अजत्व की अर्थमीमांसा करते हैं॥ १६॥

॥ दोहा॥

तुलसी अगम निवास, सुरति बास बस घर किया।।
पिया परम रस मूल, सो अतूल अंदर हिया॥ १॥

फूली बन फुलवारि, भीतर घट के कहि कही॥
खग मृग सरवर ताल, गुरु निहाल करि लखि लई॥ २॥

अर्थ–तुलसीसाहब बताते हैं कि ब्रह्म का निवास ऐसे स्थान पर है जो सर्वथा अगम्य है। सुरतियोग के फलस्वरूप मैंने भी वहीं अपनी निवास स्थली बना ली। वह मेरा ब्रह्म पति आनन्द का अधिष्ठान है और वह अतुलनीय विलक्षण मेरे हृदय के अन्तरतम में है॥ १॥

उसके साथ रहने पर इस शरीर के अन्तरतम की पुष्प वाटिका खिल उठी है और इसी शरीर में उसकी कृपा से मैं पक्षी, मृग (वन पशु), सरोवर, ताल आदि सब कुछ देख रहा हूँ॥ २॥

॥ सोरठा॥

तन मन ब्रह्मांड पसार, अंड अंड नौखंड लौं।
सो घट लखन मँझार, करत सैल ब्रह्मंड की॥ १॥
सतगुरु गगन गुहार, गगन मगन स्रुति मिलि रही।
मन्दिर मगन निहार, कंज भान भिन के कही॥ २॥

अर्थ–इस शरीर तथा मन के अन्दर ब्रह्मांड फैल उठा है, अंडों की भाँति ब्रह्मांड जैसे इसी में स्थित हो। मैं इस (वाणी) के अन्दर ही सम्पूर्ण ब्रह्मांड की जैसे सैर (सैल) कर रहा हूँ॥ १॥

इस पिंड रूपी आकाश में सतगुरु (ब्रह्म) की ही वाणी सुनाई पड़ रही है–उस प्रभु की ध्वनि इसी हृदयाकाश में इसी सुरति के साथ विलीन भी हो रही है। मैं आनन्दित भाव से आत्मा के अधिष्ठान रूप शून्य गगन के उस मंदिर को देख रहा हूँ, जहाँ भिन्न-भिन्न कमल हैं और भिन्न-भिन्न सूर्य बताये जाते हैं॥ २॥

॥ दोहा॥

भास भवन घट में लखी, सलिल कँवल के माइँ।
पदम पार बेनी बसी, लसी अधर चढ़ि धाइ॥

अर्थ–ब्रह्म का अधिष्ठान मैंने शरीर में अनुभव किया, यहीं बिना जल के कमल देखा–इस कमल के उस पर बनी हुई त्रिवेणी (सहस्त्रार की सन्धिस्थली) दिखाई पड़ी–यह सब हमने अन्दर-अन्दर ही दौड़ते हुए शून्य शिखर पर चढ़कर देखा॥

॥ सोरठा॥

तुलसी तोल निहार, गुरु अगम पद पदम हीं।
कर दृग ऐन अधार, पार परस पट भवन में॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने भलीभाँति तौलकर (मूल्यांकन करके) देख लिया है कि गुरु के चरण-कमल ही अगम्य (को जानने के हेतु) हैं। इस संसार के रहस्य को आवृत किए हुए पट (परदे) को देखने के लिए गुरु के ज्ञान दान से प्राप्त निर्मल दृष्टि को ही आधार बनाओ॥

॥ शब्द चरचरी॥

तुलसिदास भास भवन, देखा घट माहीं।
लाई स्रति सलिल कँवल, पदमन पर जाई॥ टेक॥
सतगुरु गिरि गगन, मगन, मंदिर मानौ अजूब।

कंजा भजि भलक भान, कोटिन छबि छाई॥ १॥
बेनी मजन अनूप, रहिनी अन्दर अरूप।
चंदा रबि रेनि दिवस, तारे नभ नाही॥ २॥
बरनन लखि अलख ऐन, स्याम सिखर निकर कंद।
निरता स्त्रुति समझि सूर, पकज अपनाई॥ ३॥
अंडा अंबुज अतूल, बेलि बृच्छ अधर मूल।
फूला फल बन निवास, ललित लता छाई॥ ४॥
भंवर भृंग लसि सुगंध, उरझे रस बस बिलास।
आनंद सीतल समीर, सखर तट माई॥ ५॥
जहँ जहँ दृग देखि जात, खगपति कृति नभ उड़ात।
बन बन मृग चरत जात, कोकिल करकाई॥ ६॥
धरिकै धस धरन डोर, दृढ़कै चढ़ि कड़क कोक।
धधकत धसि धधक नीर, फूटा पुल जाई॥ 7॥
भाखा भीतर बयान, सज्जन सुनि समझि साथ।
अद्‌बुद अज अजर बात, संतन लखवाई॥ ८॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि ब्रह्म भवन का ज्ञान (भास) मुझे हो गया है और वह शरीर (घट) के अन्दर ही है। मैं शरीर के अन्दर स्थित इस भवन में जाकर स्थित कमल को सुरति रूपी जल में आया॥ टेक॥

सतुरु ब्रह्म गगन (शून्य) पर्वत पर मग्न हैं–उनका मंदिर (भवन) मानों मंदिर न होकर कोई अजूबा हो। वहाँ गगन-गुफा में स्थित कमल दल का ध्यान करो (भजि) उसी के माध्यम से कोटि-कोटि छवियों से अलंकृत सूर्य सुन्दर प्रतीत (झलक) होगा॥ १॥

उस इंडा-पिंगला एवं सुषुम्ना रूपी त्रिवेणी का स्नान अनुपम है, उसके अन्दर चित्त का निवास तो और भी अनुपम है। यहाँ रात-दिन चन्द्र एवं सूर्य निरन्तर बने रहते हैं किन्तु उस आकाश में तारे नहीं हैं॥ २॥

उस अलक्ष्य गृह का रूप देखकर तथा उसके श्यामल (शून्य) शिखरों के समूह का अनुभव करके जो लोकवासनाओं से विरक्त जन एवं समाधि सिद्ध योगिजन (सूर) हैं, वे उस सहस्त्रार कमल को अपना लेते हैं–अर्थात् अपनी समाधि सहस्त्रार में लगाए रहते हैं॥ ३॥

उस सहस्त्रार कमल को सम्हालने वाला ब्रह्मांड अतुलनीय है, उसके नीचे लताएँ, वृक्ष तथा लटकती हुई जड़ें हैं–उस वन के परिसर में निवास है, फल-फूल मंडित लक्षित लताएँ छाई हुई हैं॥ ४॥

साधना विलास सुंगधि और रस में आनन्दित (उलझे) भ्रमर समूह फैले है। उस सरोवर के तट पर शीतल वायु आनन्द दे रही है॥ ५॥

जहाँ जहाँ नेत्रों की दृष्टि जाती है, गरुण आकाश में उड़ते जैसे दिखते हैं। वन-वन में मृग समूह चरते दिखते हैं तथा कोकिला कुहुकती रहती है॥ ६॥

हे साधक! इस शून्य में समाधि की डोरी पकड़ कर उसमें प्रवेश करो और पूरी दृढ़ता से उस अविचल कमल में अध्यवसित (प्रविष्ट) होओ। तुम्हारे प्रवेश काल में शून्य सरोवर का वह जल धधकता है (धधकेगा) और उसका सेतु फूटने-सा लगेगा (किन्तु हे साधक! तुम विचलित न होना)॥ ७॥

हे सज्जनों! मैं घट-ब्रह्मांड के भीतर की स्थिति का वर्णन मैं कर चुका, इसे सुनें और साथ-साथ समझ लें। यही सर्वाधिक अद्‌भुत, अज एवं मृत्युमुक्त चर्चा (बात) है और इसे सन्तों को मैंने दिखा दिया है॥ ८॥

॥ सोरठा ॥

भान भवन घट वास, लखि अकास अन्दर गई।
लीला गिरि चित चास, दीपक मंदिर मरम जस॥ १॥

अर्थ–जब सूर्य के प्रकाशमय भवन में शरीर तथा चित्त का निवास हुआ तब वहाँ शून्याकाश देखकर विलासवती आत्मा उसमें प्रवेश कर गई। उसके मन में अब लोला गिरि की साध (चास) हो गई है और यह उसी प्रकार है–जैसे मंदिर के अन्दर दीप (प्रभा) का रहस्य अर्थात् मन्दिर एवं दीपक दोनों एक दूसरे को प्रकाशित करते हैं–उसी प्रकार शून्याकाश में आत्मा परमतत्त्व एक दूसरे को आलोकित करने लगे ॥ १॥

॥ दोहा ॥

लखि प्रकास पद तेज, सेज गवन गढ़ गगन में।
पति प्रिय प्रेम बिलास, तुलसिदास दस गिरा में॥ २॥

अर्थ–प्रकाश के इसके तेजोमय स्वरूप (पद) को देखकर शून्याकाश रूपी दुर्ग में स्थित पति (ब्रह्म) की शय्या पर उसने गमन किया। दसों द्वार वाले उस भवन में जाकर, तुलसी साहब कहते हैं कि, वह अपने प्रियतम पति के विलास में डूब गई ॥ २॥

॥ सोरठा ॥

मैं मति ऐन अयान, गुरु बयान मो को कह्यौ।
लह्यौ गगन सोइ जान, सतगुरु मंजन पदम हीं॥ ३॥
सतगुरु अगम अपार, सार समझि तुलसी कियो।
दया दीन निरधार, मोहिं निकार बाहिर लियो॥ ४॥

अर्थ–अज्ञान भरे चित्त वाले मुझ शिष्य को गुरु ने इस अध्यात्म विद्या का वर्णन किया–फिर ब्रह्म रूपी गुरु के चरणों का प्रच्छालन करता हुआ मैंने ज्ञानदृष्टि से उसे शून्य आकाश को समझा॥ ३॥

मेरे सतगुरु अगम्य है, अपार हैं, मैंने उनके होने का मूल तत्त्व समझकर उन्हें गुरु माना। बिना किसी कारण के अर्थात् अकारण इस दीनजन पर उनकी दया बनी रही, वे सतगुरु ही हैं–जिन्होंने इस मायामय संसार से निकालकर मुझे मुक्त कर दिया॥ ४॥

॥ दोहा ॥

सतगुरु संत दयाल, करि निहाल मो को दियो।
मूरति सिन्ध सुधार, सार पार जद लखि पर्‌यो॥ ५॥

अर्थ–सतगुरु ही वह दयावान् सन्त हैं, जिन्होंने मुझे वह परम तत्त्व देकर विह्वल बना दिया। सुरति साधना द्वारा सिन्धु के मार्ग को सुधारा और मैं और इस भवसागर के पार जैसे दिखाई पड़ने लगा॥ ५॥

॥ सोरठा ॥

संत चरन पद धूर, मूर मरम मो को दई।
भई निरति स्त्रुति सूर, लइ समान मन चूर करि॥ १॥

मैं मति मान अपूर, क्रूर कुटिल न्यारे किये।
हिये तिमर तन दूर, तूर तमक तन की गई॥ २॥
मो मन सुरति अयान, जानि सुरति सत रीति ले।
गहि कर संत सुजान, मान मनी मद छाँड़ि के॥ ३॥
मैं मति सत सम नाहिं, पाइ पकरि लारै लई।
सतगुरु दीन दयाल, जाल काट न्यारी करी॥ ४॥
सतगुरु चरन निवास, बिमल बास बिधि लखि परी।
धरी जो तुलसीदास, भास चमकि चढ़ि चाँप धरि॥ ५॥
सतगुरु परम उदार, दल दरिद्र सब दूरि करि।
संपति सुरति बिचार, निधि निहार सच्दै लखा॥ ६॥

अर्थ–सन्त की चरणधूलि ने ही मुझे रहस्य के मूल तत्त्व को दिया है। मेरी मति निरति और सुरति के कारण सबल हो उठी और तुच्छ वस्तु के सदृश उन्होंने मन को (लोकमन को) नष्ट कर दिया॥ १॥

मुझ अपूर्ण बुद्धि के व्यक्ति की क्रूरता, कुटिलता को गुरु ने मुझसे अलग किया। मेरे हृदय का अँधेरा दूर हुआ और शरीर का अहम् और गर्व (तूर तमक) दूर हो गया॥ २॥

सुरति-समाधि तथा ज्ञान से सर्वथा अज्ञानी मेरे चित्त ने सत्य रीति (सही-सही तरीके से) से सुरति को समझा और इस प्रकार मन के मान एवं मद विकार का परित्याग करके सज्जन संत का हाथ पकड़ा (सहारा लिया)॥ ३॥

मैं अपनी मति के अनुसार सत्यमय नहीं था-गुरु के चरणों को पकड़ कर उसी में अपनी निष्ठा (लारै) लगाई और दीनों के प्रति अत्यधिक दयाभाव रखने वाले मेरे गुरु ने मायिक संसक्ति (जाल) को काटकर मुझे उससे मुक्त कर दिया॥ ४॥

सतगुरु के चरणों की छाया में निवास करने से निर्मल (पवित्र) निवास की विधि मुझे दिखाई पड़ गई। इस तुलसी साहब ने उसे ग्रहण करके अदृश्य में प्रकाशित तत्त्व को देखकर समझा॥ ५॥

मेरे सत्गुरु परम उदारमना हैं, मेरी दरिद्रता के सारे समूहों को उन्होंने विनष्ट किया। उनके ज्ञान दर्शन के बाद ही मुझे सुरति ज्ञान जैसी संपत्ति समझ में आई और उसी के माध्यम से अपूर्व ज्ञान रूपी निधि को देखकर 'अनाहत नाद' जैसे शब्द से साक्षात्कार किया है॥ ६॥

भेद पिंड और ब्रह्मांड का

॥ चौपाई ॥

परथम बन्दौं सतगुरु स्वामी। तुलसी चरन सरनि रति मानी॥
पुनि बन्दौं संतन सरनाई। जिन पुनि सुरत निरत दरसाई॥
चरन सरन संतन बलिहारी। सूरति दीन्ही लखन सिहारी॥
सरन सूर सूरति समझाई। सतगुरु सूर मरम लख पाई॥
मैं मतिहीन दीन दिल दीन्हा। संत सरल सतगुरु को चीन्हा॥
सतगुरु अगम सिंध सुखदाई। जिन सत गेह रीति दरसाई॥
पुनि पुनि चरन कँवल सिर नाऊँ। दीन होइ संतन गति गाऊँ॥
दीन जानि दीन्ही मोहिं आँखी। मैं पुनि चरन सरनगहि भाखी॥

मैं तौ चरन भाव चित चेरा। मोहिं अति अधम जानि कै हेरा॥
मैं तौ प्रति प्रति दास तुम्हारा। संत बिना कोई पावै न पारा॥
संत दयाल कृपा सुखदाई। तुम्हारी सरन अधम तरि जाई॥
आदि न अंत संत बिन कोई। तुलसी तुच्छ सरन में सोई॥
जो कुछ करहिं करहिं सोइ संता। संत बिना नहिं पावै पंथा॥
मोरे इष्ट संत स्तुति सारा। सतगुरु संत परम पद पारा॥
सतगुरु सत्तपुरुष अबिनासी। राह दीन लखि काटी फाँसी॥
कँवलकंज सतगुरु पद वासी। सूरति कीन दीन निज दासी॥
सूरति निरत आदि अपनाई। सतगुरु चरन सरन लौ लाई॥
बार बार सतगुरु बलिहारी। तुलसी अधम अघ नाहिं बिचारी॥
बन्दौं सब चर अचर समाना। जानौ तुलसी दास निदाना॥
मैं किंकर पर दया बिचारा। अनहित प्रिये करौ हित सारा॥
सब के चरन बन्दि सिर नाई। प्रिये लार लै प्रीति जनाई॥
तुम प्रति भूल बंद अस गाई। बार बार चरनन सिर नाई॥
पुनि बन्दौं सतगुरु सत भावा। जिनसे बस्तु अगोचर पावा॥
सतगुरु अगम अरूप अकाया। जिनकी गति मति संतन पाया॥
सतगुरु की कस करहुँ बखानी। सूरति दीन्ही अगम निसानी॥
लख लख अलख सुरति अलगानी। संतकृपा सतगुरु सहदानी॥
सूरति सैल पेल रस राती। सतगुरु कंज पदम मदमाती॥
तुलसी तुच्छ कुच्छ नहिं जानै। सतगुरु चरन सरन रत मानै॥
सूरति सतगुरु दीन्हि जनाई। नित नित चढ़ै गगन पर धाई॥
सैल करै ब्रह्मंड निहारा। देखै आदि अंत पद सारा॥
निरखा आदि अंत मधि माहीं। सोइ सोइ तुलसी भाखि सुनाई॥
पिंड माहिं ब्रह्मंड समाना। तुलसी देखा अगम ठिकाना॥
पिंड ब्रह्मंड में आदि अगाधा। पेली सुरति अलख लख साधा॥
पिंड ब्रह्मंड अगम लख पाया। तुलसी निरखि अगाध सुनाया[१]॥
पिंड माहिं ब्रह्मंड दिखाना। ता की तुलसी करो बखाना॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि उनके चरणों की शरण की संसक्ति स्वीकार करके मैं सर्वप्रथम स्वामी सतुरु की बन्दना करता हूँ॥

---

१. मुं० दे० प्र० की पुस्तक में ''अगाध सुनाया'' की जगह ''परख गत गाया'' और आगे की कड़ी में ''दिखाना'' की जगह ''समाना'' है।

जिन्होंने इस साधना से उपकृत करके मुझे सुरति तथा निरति का ज्ञान कराया है, उसके बाद, ऐसे सन्तों की मैं वन्दना करता हूँ।

जिन सन्तों ने मुझे सुरति का ज्ञान कराया और तत्त्व को देखने की दृष्टि सुधारी (सिहारी) बलिहारी है, मैं ऐसे सन्तों के चरणों की शरण में हूँ॥

ऐसे शूरमा सन्तों की शरण में मैं आया और उन्होंने 'सुरति साधना' को समझाया और उनके द्वारा ही मैं बलशाली तत्त्वज्ञ सन्तों के रहस्य को समझ पाया॥

मैं अज्ञानी, दीन व्यक्ति समर्पित भाव से जब गुरु की शरण में गया तब सन्तों के चरणों में रहकर सत्गुरु को पहचाना॥

सत्गुरु अगम्य समुद्र की भांति आनन्ददायी हैं, जिन्होंने मुझको सत्य के गृह तक पहुँचने की रीति तथा राह दिखाई है॥

मैं बार-बार सन्तं के चरण कमलों में अपना शीश झुकाता हूँ क्योंकि दीन (संसक्ति रहित) होकर ही सन्तों के ज्ञान (उनकी अवस्थाओं) का गान कर सकता हूँ–अन्यथा नहीं॥

मुझे दीन समझकर सन्तों ने मुझे ज्ञान चक्षु प्रदान किया और फिर मैं उनकी चरणों की शरण में जाकर और उसे धारण करके यह (घट रामायण) कही॥

मैं तो उनके चरणों में दास्य (चेरा) भाव से आया और मुझे अत्यन्त अधम समझ कर उन्होंने देखा (स्वीकार किया)॥

हे प्रभु! मैं तो आपके दास का दास (प्रति प्रति दास) हूँ–इन सन्तों के बिना इस संसार से किसी को मुक्ति पाना सम्भव नहीं है॥

संत दयालु हैं, उनकी कृपा आनन्ददायी है, आपकी कृपा से अधम (पापी जन) भी मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

कोई भी व्यक्ति अपने आदि स्वरूप और अन्तिम स्वरूप को बिना सन्तों के नही प्राप्त कर सकता (जान सकता), तुच्छ तुलसी साहब कहते हैं कि मैं उन्हीं सन्त की शरण में हूँ॥

जो कुछ करणीय है, उसे सन्त जन ही करते हैं और बिना सन्त जन के ज्ञान मार्ग नहीं प्राप्त हो सकता। वेदों के सार स्वरूप संत जन ही मेरे इष्ट है। सत्गुरु की प्राप्ति परम पद संत जन की सहायता से ही सम्भव है॥

सत्गुरु (ब्रह्म) अविनासी सत्य पुरुष हैं। इसका (दास का) मार्ग कंटकमय व फाँस मय था, जिसे समाप्त करके उसने रास्ता दिया। सत्गुरु के चरणों में निवास करने वाले मुझ जैसे व्यक्ति का मन सहस्त्रदल में स्थित है। अपने शिष्य को वे निरन्तर स्मरण आते है। वे उसे अपना दासत्व दे डालते है॥

सुरति-निरति आदि योग प्रक्रियाओं को अपना कर साधक (मैं) सत्गुरु के चरणों के चरणों की शरणागति में लौ लगा ली। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं बार-बार सत्गुरु की बलिहारी जा रहा हूँ। उन्होंने मुझ अधम को स्वीकार करते हुए उसके पापों को नहीं देखा॥

सम्पूर्ण सचराचर की मेरे समान ही उन्होंने एक समान मानव-दया की और उनके सारे अनहित को हितमय कर दिया॥

सभी के चरणों पर शीश डालकर मैं बन्दना करता हूँ और अपने आन्तरिक स्नेह (लार-लाड़) से सबके प्रति प्रीति प्रगट की। बार-बार चरणों में शीश डालकर तुम्हारी इस प्रकार की बन्दना करता हुआ गा रहा हूँ॥

पुन: मैं सत्यभाव (निष्ठा) से सत्गुरु की वन्दना करता हूँ, जिनकी कृपा से ही मैंने अदृश्य वस्तु को प्राप्त किया है। सत्गुरु अगम्य हैं, अरूप हैं, शरीर विहीन है–जिनके ज्ञान के विषय में संत भी नहीं जानते॥

मैं सतगुरु का वर्णन कैसे करूँ–क्योंकि उनकी पहचान के अगम्य लक्षण हैं। जिनकी स्मृति (सूरति) या शरीर रचना लाखों-लाखों रूपों में होते हुए भी अलक्ष्य (अलख) है। सन्तों की कृपा ही सतगुरु की भेंट या निशानी (सहिदानी) है॥

उनकी स्मृति रसभरी कन्दराएँ हैं, सतगुरु रूपी कमल मदमस्त दिखाई पड़ते हैं। तुलसी साहब जैसा तुच्छ व्यक्ति तो उनके विषय में कुछ भी नहीं जानता। वह तो उनके चरणों के प्रति संसक्ति को ही सब कुछ मानता है॥

अपनी जिस स्मृति को सतगुरु ने दिखा दिया है उसके लिए वह नित्य-प्रति आवेगपूर्वक शून्य मण्डल पर दौड़कर जाता है। उस ब्रह्मांड को देखते हुए मैं निरन्तर उस पर विचरण (शैल-सैर) करता रहता हुआ आदि से अन्त तक उसके रहस्य को देखता रहता हूँ॥

मैंने उसके आदि मध्य अन्त सबको देखा है। मैं तुलसीदास उसी को कहकर सुना रहा हूं। इस शरीर (पिंड) में ब्रह्मांड छिपा समाहित है और इसी में उस अगम्य निराकार ब्रह्म की निवास स्थली देखी है॥

आदि और अगाध ब्रह्मांड इस पिंड में ही है–सुरति ज्ञान का प्रसार (फैली) हुआ और मैंने अलक्ष्य ब्रह्म का लक्ष्य साध लिया।

इसी पिंड के अगम्य ब्रह्मांड में (उसी की कृपा से) उसे देख सका। तुलसी साहब कहते हैं कि उसी की कृपा से उस अगाध तत्त्व को देखकर मैंने लोगों को सुनाया है। मुझे पिंड में स्थित ब्रह्मांड दिखाई पड़ा और उस पिंड स्थित ब्रह्मांड का मैं तुलसी साहब यहाँ (घट रामायण के रूप में) बखान या वर्णन कर रहा हूँ॥

॥ सोरठा ॥

पिंड माहिं ब्रह्मंड, देखा निज घट जोड़ कै॥
गुरु पद पदम प्रकास, सत प्रयाग असनान करि॥

अर्थ–गुरु चरणों के सत्प्रकाश रूपी प्रयाग में स्नान करके ही मैंने अपने शरीर में ही इसी पिंड में ब्रह्मांड को समझकर देखा है॥

॥ दोहा ॥

बूझै कोइ कोइ संत, आदि अंत जा ने लखी।
परचै परम प्रकास, जिन अकास अम्बर चखी॥

अर्थ–इसे कोई कोई अर्थात् बिरला संत ही जानता है (और इसे वही जानता है) जिसने आदि तथा अन्त दोनों को देख लिया है। जिस सन्त ने साधना के शून्याकाश में आकाश का स्वाद चख लिया है, उसी से उस दिव्य परम प्रकाश का परिचय भी है॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी तोल तरास, तत बिबेक अन्दर कही।
बूझेंगे निज दास, जिन घट परचे पाइया॥ १॥
पानी पवन निवास, कँवल बास बिधि सब कही।
जीव काल और स्वाँस, और अकास उतपति भई॥ २॥
भीतर देखि प्रकास, सब ब्रह्मंड बिधि यों कही।
रावन राम संबाद, आदि अंत निज जोड़ कै॥ ३॥

अर्थ–तुलसीदास कहते हैं कि मैंने भली भांति मूल्यांकन करके (तोल) एवं सुस्पष्ट (तरास) कर पिंड में निहित तत्त्व का वर्णन किया है। इसको वही शिष्य प्राप्त करेंगे (समझेंगे) जिन्होंने पिंड रचना से परिचय प्राप्त कर लिया है॥ १॥

इस पिंड की निवास-स्थली जल तथा वायु है और इसी में सहस्त्रार कमल का निवास है, ऐसा सभी ने बताया है। इन्हीं दो तत्त्वों से जीव, काल, श्वास तथा आकाश की उत्पत्ति हुई है॥ २॥

इस घट के भीतर घटाकाश में प्रकाश को देखकर समस्त ब्रह्मांड का वर्णन (इस प्रकार) रावण राम संवाद के रूप में इसके आदि अन्त को देखकर किया॥ ३॥

॥ चौपाई॥

जो कोई घट का परचा पावै। कँवल भेद ता को दरसावै॥
भिन्न भिन्न कँवलन बिधि गाई। स्वाँसा भिन्न बिधी दरसाई॥
निज निज तत्त कहेऊ मैं जानी। परखेंगे कोइ संत सुजानी॥
मैं गति नीच कींच कर सानी। कहत लजाउँ अगम गति जानी॥
जो अपनी गति कहहुं बिचारी। तौं मन मोट होत अधिकारी॥
मैं किंकर संतन कर दासा। घट घट देखा तत्त निवासा॥
ता की गति ग्रन्थन में गाई। बूझै जिन सत संगति पाई॥
सूरति सार सब्द जिन पाया। दस गृह सैल जिन करी अकाया॥

अर्थ–जो कई व्यक्ति इस घट (पिंड) से परिचय प्राप्त कर लेता है, उसे सहस्त्रार कमल का रहस्य ज्ञात हो जाता है। कमलों की भिन्न भिन्न दशाओं का वर्णन किया गया है, और श्वास के भिन्न-भिन्न रूप बताये गये हैं॥ १॥

मैं समझकर भिन्न-भिन्न तत्त्वों का वर्णन करूँगा और उसे कोई चतुर मर्मज्ञ संत ही समझेंगे। काया के निकृष्ट कीचड़ में सनी हुई अपनी मति द्वारा मैं उस निर्गुण की अगम्य गति (ज्ञान) कहने में लज्जा का अनुभव करता हूँ॥ २॥

यदि मैं अपनी गति (ज्ञान) का विचार कर वर्णन करता हूँ तो मेरी यह ज्ञानाधिकार सम्बद्ध मति मोटी (अज्ञान से परिपूर्ण) समझी जाएगी। मैं तो दास हूं और विशेषकर सन्तों की और मैंने प्रत्येक घट-घट में उसी का निवास देखा है॥ ३॥

उसके ज्ञान का वर्णन अनेक ग्रन्थों में किया गया है जिसने सत्संगति की है, वही उसे समझ सकता हैं, जिसने सुरति समाधि का शब्द प्राप्त कर रखा है और जिसने शरीर के दसों गृहों में स्थित पर्वतों को कायामुक्त कर रखा है॥ ४॥

॥ सोरठा॥

जिन मानी परतीत, अधर रीति जा ने लखी।
सब गति कहहुं अजीत, सत्त बचन परमान कै॥ १॥
तुलसी सब्द सम्हार, वार पार सगरी लखी।
पकी चखी स्त्रुति सार, लार सब्द सूरति गई॥ २॥

अर्थ–जिन्होंने विश्वास किया और जिसने पिंड के अधर (अन्दर) की दशाएँ देख ली हैं, उनके वचन सत्यनिष्ठा के प्रमाण है॥ १॥

तुलसी साहब कहते हैं कि जिसने अनाहत शब्द को सम्हाल रखा है और इस पार-उस पार के

समस्त दृश्यों को देख लिया है। जिसने सुरति के पके हुए मूल तत्त्व का आस्वादन कर रखा है–उसकी संसक्ति सबद तथा सुरति से पूरी तरह से जुड़ जाती है॥ २॥

॥ दोहा॥

सतगुरु पुर पद पार, ये अगार अदबुद कही।
भौ बुधि भेष मँझार, सार लार सूझै नहीं॥

अर्थ–सत्गुरु के चरणों के उस पार वह समाधि में चित्रित अद्‌भुत रूप से वर्णित नगर है। हमारी बुद्धि तो भवसागर में नाना रूपों में फँसी है–यह ब्रह्म वासना तो उसे सूझती तक नहीं॥ १॥

॥ छन्द॥

गुरु पद कंज लखाइ घट परचे पाई। सुरति समानी सिंध मई॥
देखा वह द्वारा अगम पसारा। दस दिस फोड़ अकास गई॥
नाम निअच्छर छर नहिं अच्छर। देख अगाध अनाद लई॥
पार भीतर जाना घट परमाना। जेइ जेइ संत अगार कही॥
जिनकी रज पावन राम औ रावन। निः अच्छर सत सार सही॥
पंडित और ज्ञानी यह नहिं जानी। भेष भेद गति नाहिं लई॥
सब जग संसारा काल की जारा। सकल पसारा भेष मई॥
रागी बैरागी भौ रस त्यागी। साँगी पाँगी भरम बही॥
ग्यानी बिज्ञानी बन वस जानी। संत पंथ मत राह नहीं॥
जोगी सन्यासी काल की फाँसी। परमहंस परमान नहीं॥
निज गावै बेदा जानै न भेदा। सास्त्र संघ जिन राह लई॥
संतन गति न्यारी सुनौ बिचारी। चौथे पद के पार कही॥
कोइ करिहै संका महामति रँका। सतसंगति सम सूझ नहीं॥
तुलसी मति-हीना पायौ चीन्हा। संत कृपा घट घाट लई॥

॥ छन्द॥

अर्थ–गुरु चरण कमलों को दिखाकर, पिण्ड का परिचय प्राप्त करके सुरति अगाध समाधि समुद्र में विलीन हो गई। उसके पश्चात् ही वह अगम्य एवं अपार द्वार देखा और तब दसों द्वारों को तोड़कर वह ज्ञानदृष्टि शून्याकाश में खो गई॥

वह निरंजन वर्ण शून्य (नि अच्छर) है, वह क्षरणशील न होकर, अक्षरणशील है, उस अगाध तथा अनादि तत्त्व को मैंने देख लिया। उसे मैंने घर के भीतर स्थित ही समझा और उसके लिए प्रमाण घट ही है। उसे ही सभी ने सन्तों का निवास गृह बताया है॥

जिसकी पवित्र रज से राम और रावण उत्पन्न हुए हैं–वह वाणी शून्य का एकमात्र सही-सही यही सारतत्त्व है। न उसका कोई वेष है, न उसका कोई भेद है और न उसकी कोई भिन्न ज्ञान दशा (गति) है–पंडित और ज्ञानीजन उसे आज तक नहीं समझ पाए हैं।

समस्त संसार काल की पत्नी है और वह अनेक वेष धारण करके समस्त स्थानों पर फैली है। उसके भ्रम में उससे वशीभूत होकर रागवासना ग्रस्त, विरागीजन, इस संसार (भौ) का रस त्याग करने वाले सन्यासी (साँगी) सभी उसमें रम जाते हैं॥

ध्यान धारण करने वाले, विज्ञानी सन्यासीगण, वन में निवास करने वाले संत के मार्ग का अनुसरण करने वाले तथा अनेक अनेक साधुजन, योगी, सन्यासी के लिए यह माया काल की फाँस है–परमहंसों का तो कोई प्रमाण ही नहीं है॥

ये अपने ज्ञान (या वेद) का वर्णन करते रहते हैं किन्तु उसके रहस्य को नहीं जानते। शास्त्र सिन्धुओं का जिन शास्त्रज्ञों ने मार्ग ग्रहण कर रखा है, इसे विचार करके सुनो कि संतों की गति विलक्षण होती है (वे सर्वज्ञ है) किन्तु–चौथे पद (निर्वाण पद) की कोई सीमा नहीं है॥

यदि कोई इस बात पर संदेह करता है तो वह महामति से रहित है। वैसे, सत्संगति के बिना कोई ज्ञान सूझता नहीं। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं बुद्धिहीन व्यक्ति भी संतों की कृपा से ज्ञानदृष्टि प्राप्त की और उस परम तत्त्व को पिंड रूपी तट (घट घाट) पर प्राप्त किया॥

॥ सोरठा॥

पानी पवन निवास, कँवल बास बिधि सब कही।
सब्द सुरति कर बास, वै निरास अच्छर रहत॥ १॥
कह्यो ग्रन्थ घट सार, गुरु परचै निज कँवल में।
जिन जिन पाय निवास, सो लखिहैं ये भेद सब॥ २॥

अर्थ–जल तथा वायु में निवास करके प्रत्येक प्रकार से सहस्त्रार में बास (सुंगधि)द्वारा एहसास कराते हुए शब्द रूप में वे सुरति समाधि में निवास करते हैं। उसे अक्षररहित समझकर सन्यासी योगी आदि उसमें स्थित रहते हैं॥ १॥

पिंड के इस सार तत्त्व का वर्णन इस ग्रंथ में मैं कर रहा हूँ। गुरु द्वारा परिचित कराने पर अपने ही ब्रह्म कमल में वह दिखाई पड़ा। जिन-जिन सन्तों ने अपने चित्त में आत्मतत्त्व का विश्राम प्राप्त कर लिया है–वे इसके इन भेदों को देखेंगे॥ २॥

॥ चौपाई॥

अब ब्रह्मंड का भाखौं लेखा। भिन्न भिन्न घट भीतर देखा॥
पाँच तत्त का कहौं बिचारा। अगिनि अकास नीर निरधारा॥
पृथ्वी पवन सकल कर भेदा। पिंड ब्रह्मंड का रच्यो निषेदा॥
लखि अकास बाई सँग आई। दोइ मिलि निज अगिनी उपजाई॥
अब पानी का सुनौ बिचारा। ये चारौ मिलि मही अकारा॥
ऐसे पाँच तत्त उपराजा। निज तन कीन्ह देह कर साजा॥
पानी बुँद सृष्टि उपजाई। ता में चेतन सत्त समाई॥
अब पानी का भाखौं लेखा। भिन्न भिन्न घट भीतर देखा॥
ता की बिधि बिधि कहौं बिचारा। छत्तिस नीर पचासी धारा॥
जोइ जोइ नीर नाम बतलाऊँ। नीर छतीसो बरनि सुनाऊँ॥
बिधि बिधि नाम नीर समझाऊँ। नाम नीर भिन्न भिन्न दरसाऊँ॥

अर्थ–अब मैं ब्रह्मांड के विषय में वर्णन करता हूँ। उसे मैंने भिन्न-भिन्न पिंडों (घटों) के भीतर देखा है। पंच तत्त्वों पर मैं सबसे पहले विचार कर रहा हूँ। अग्नि, आकाश, जल ये तीनों पृथक् हैं॥

पृथ्वी तथा वायु सभी के भेद हैं और इस प्रकार इनसे पृथ्वी तथा ब्रह्मांड की रचना हुई है। आकाश को देखो, उसके साथ वायु उत्पन्न हुई है। इन दोनों ने मिलकर अग्नि को पैदा किया है॥

अब पानी के विषय में विचार सुनो। इन चारों ने मिलकर पृथ्वी को आकार दिया है। इस प्रकार पाँचों तत्त्व उत्पन्न हुए हैं और अपने-अपने द्वारा इन्होंने पिंड की सज्जा की है॥

पानी की बूँद ने सृष्टि उत्पन्न की। उसी में चैतन्य तत्त्व प्रविष्ट हो गया। अब मैं जल का वर्णन करता हूँ। उसे मैंने भिन्न-भिन्न पिंडों में इस प्रकार देखा है॥

मैं विधिपूर्वक उसकी विधि का वर्णन कर रहा हूँ। सत्तीस प्रकार के जल हैं और उसकी पचासी प्रकार की धाराएँ हैं। जिन-जिन जलों को मैं तुम्हें बतलाऊँगा और उन छत्तीसों जलरूपों का वर्णन करके सुनाऊँगा। नाना प्रकार के रूपों से मैं उनका नाम बताऊँगा और उन जलों के अलग-अलग नामों का वर्णन करूँगा।

॥ नीर के नाम ॥

॥ चौपाई ॥

जल अजीत परथम करि गाऊँ। करता जल दूसर कर नाऊँ॥
और अनूप तीसर जल कीन्हा। चौथा मुक्ति नीर को चीन्हा॥
नीर पाँच पुरइनि परमाना। अंबुज षष्टम नीर बखाना॥
नीर सात बिषया झर होई। नीर आठ अटला सुर सोई॥
नवाँ नीर नाटक दुख भेदा। दसवाँ नीर दसौ मन छेदा॥
एकादस नीर काल को जाना। द्वादस नीर जिव करै पयाना॥
तेरवाँ नीर पुरुष कौ ध्याना। जो बूझै घट परचै जाना॥
जीव नीर चौधा में भूला। पंद्रह नीर भीर सहै सूला॥
सोला नीर कनक कर संगी। सत्रा नीर रूप रस रंगी॥
अठरा नीर बोल दे नाऊँ। उन्निस नीर कुसुम रंग राऊ॥
बिसवाँ नीर कलंगी गाई। निज घट भीतर परचा पाई॥
इकिस नीर सुख सागर धामा। भँवरकंज उरझा तेहि ठामा॥
बाइस नीर मूल घट राजा। तेइस नीर निरासू बाजा॥
नीर चौबिसवाँ चतुर सुजाना। पच्चिस नीर मेघ परमाना॥
छब्बिस नीर कहौं मैं काला। सताइस नीर घनासुर नाला॥
अठाइस नीर रूप द्वै आना। उन्तिस नीर अभया दृग दाना॥
तिसवाँ नीर आहि बल भारी। इकतिस नीर आहि संसारी॥
बतिस नीर निरगुन है सीठा। तैंतिस आलस नीर है मीठा॥
चौंतिस नीर सरोसिल नाऊँ। पृथ्वी पैंतिस नीर बताऊँ॥
छत्तिस नीर कामिनी बासा। ब्रह्मा बिस्नु का भोग बिलासा॥
जीव जंतु जल जीव निवासा। ये सब परे काल की फाँसा॥
छत्तिस नीर नाम निरधारा। सो कोइ साधू करै बिचारा॥
आगे कहौं पचासी पवना। ता कर नाम भेद गुन बरना॥

भिनि भिनि नाम बिधी बतलाऊँ। पवन पिचासी बरनि सुनाऊँ॥
पिंड में पवन पचासी बासा। सो निज भाखौं भेद खुलासा॥

॥ नीर के नाम ॥

अर्थ–प्रथम 'अजीत' जल का वर्णन करता हूँ। दूसरे जल का नाम 'कर्त्ता' जल है। तीसरा जल, अनूप है। चौथा पहचाना गया जल 'मुक्ति' जल है। पाँचवाँ जल 'पुरइन' के नाम से प्रमाण रखता है और छठाँ जल 'अंबुज' जल कहा गया है। सातवाँ जल 'विपया' है और आठवाँ जल 'अटला सुर' है॥

नवा नीर दुख को नष्ट करने वाला 'नाटक' है। दसवाँ जल दसों द्वारों को छेदने वाला है। एकादश नीर काल है–बारहवाँ जल जहाँ जीव प्रस्थान करता है (या जीव जल है)।।

तेरहवाँ जल 'पुरुष' का ध्यान है–जो उसे बूझता है, उसे पिंड का ज्ञान हो जाता है। चौदहवें जल में जीव की संसक्ति है पन्द्रहवाँ जल वह है जिससे लोकपीड़ा झेली जाती है॥

सोलहवाँ जल स्वर्ण का साथी है और सत्रहवां जल रूपरस का आनन्द है। अट्ठारहवाँ जल 'बोल' है और उन्नीसवाँ जल पुष्प रंग से श्रेष्ठ है। बीसवें जल को 'कलंगी' के नाम से पुकारा जाता है और उसका परिचय अपने शरीर के भीतर ही होता है। इक्कीसवाँ जल सुख सागर धाम का है, उस स्थान पर 'भ्रमर-कमल' दोनों उलझे हैं॥

बाइसवाँ जल घट मूल का राजा है और तेईसवाँ जल निरासा में बजता रहता है। चौबीसवाँ जल चतुर सुजान है और पच्चीसवाँ जल बादल का प्रमाण है॥

तीसवाँ जल बल का भार है और एकतीसवाँ जल संसारी है। बत्तीसवाँ जल निर्गुण ब्रह्म की सृष्टि है और तैंसवाँ जल आलस नाम का मीठा जल है। चौतीसवें जल का 'सरोसिल' नाम है और पृथ्वी को पैंतीसवाँ जल बताता हूँ॥ छत्तीसवें जल में 'कामिनी' का निवास है–वह ब्रह्मा और विष्णु का भोग विलास है॥

जीव जन्तुओं का जल जीवन में निवास है–ये सभी काल के वश में होते है। छत्तीस जलों का इस प्रकार नाम निर्धारित है और इन पर बिरला साधु ही विचार करता है॥

आगे मैं पचासी वायु का वर्णन करता हूँ–उनका नाम तथा भेद यहाँ वर्णित है। उनके भिन्न-भिन्न नाम और भेद यहाँ बतलाये गये हैं–उन पचासी वायुओं का वर्णन करके सुनाता हूँ।

इस पिंड के भीतर पचासी पवनों का निवास है। मैं उनका स्पष्ट भेद करके वर्णन करता हूँ॥

पवन के नाम

१. रजलाय पवन
२. केदार पवन
३. विलंभ पवन
४. समीर पवन
५. गुरभो पवन
७. श्रुतिअंध पवन
८. नलपती पवन
९. ब्रह्मराज पवन
१०. मंदोष पवन
११. सकल तेज पवन
१२. मन सोत पवन
१३. जग जोत पवन
१४. उपजीत पवन
१५. जगजीत पवन
१६. पर राज पवन
१७. बलकुंभ पवन
१८. पतराज पवन
१९. बलभेद पवन
२०. बारुन पवन
२१. कुम्भेर पवन
२२. जगजाय पवन
२३. बेधुन्ध पवन
२४. सकलंध पवन
२५. सल सोख पवन
२६. सुख रोग पवन
२७. ज्ञान कुंभ पवन
२८. मैना ऊँचा पवन
२९. त्रिकोध पवन
३०. किवलास पवन
३१. करनास पवन
३२. रस नाग पवन
३३. जनजीत पवन
३४. सकरीत पवन
३५. बेलोक पवन
३६. मनमोष पवन
३७. बेरूप पवन

३८. सतसूक पवन
३९. बीज बन्द पवन
४०. बीज बन्द पवन
४१. अज सार पवन
४२. नितनाल पवन
४३. शब्दाल पवन
४४. गिरनाल पवन
४५. शुषपाल पवन
४६. रूपान पवन
४७. विधान पवन
४८. सुभपती पवन
४९. छेरती पवन
५०. उतरंग पवन
५१. तितरंत पवन
५२. पुरवो पवन
५३. सरभो पवन
५४. उपमीत पवन
५५. दरतीत पवन
५६. उपमार पवन
५७. अभियार पवन
५८. अतरीत पवन
५९. ताईत पवन
६०. सुषमंद पवन
६१. असमद पवन
६२. सोराद पवन
६३. लैयाद पवन
६४. करिहाट पवन
६५. करुनाट पवन
६६. बैराग पवन
६७. लैजार पवन
६८. लैलार पवन
६९. नदसूर पवन
७०. पदमूर पवन
७१. करकीत पवन
७२. धरजीत पवन
७३. मनमास पवन
७४. सरसूत पवन
७५. अवधूत पवन
७६. आकाश पवन
७७. जगबास पवन
७८. सुनसूत पवन
७९. मनभूत पवन
८०. निरधार पवन
८१. सतसार पवन
८२. आसोग पवन
८३. तन भोग पवन
८४. जग जोग पवन
८५. मन रोग पवन

॥ चौपाई ॥

पवन पचासी भाखि सुनाई। कोइ साधू घट भीतर पाई॥
घट में पवन पचासी जाना। निरखा नैन सैन धरि ध्याना॥
साधु आदि कोई करै बिबेका। सोइ निज सार पवन का लेखा॥
तुलसी जिन जिन नैन निहारा। पवन पचासी बरनि सिहारा॥
जिन जिन घट की सैल सँवारा। पवन भवन सोइ गवन गुहारा॥
आगे सुनहु गगन का लेखा। सोला गगन पिंड में देखा॥
जिन जिन सैल सुरति से कीन्हा। सोला गगन भाखितेहि दीन्हा॥
जो सोला का भेद बतावै। सोह सज्जन सत साध कहावै॥
भिन्न भिन्न सोला बिधि भाखौं। गगन नाम निज एक न राखौं॥
बिधि बिधि नाम कहौं समझाई। चित दे सुनौं गगन कर नाई॥

अर्थ–पचासी पवनों को कहकर बताया है। इसे कोई कोई साधु ही घट के भीतर प्राप्त करता है घट पवनों को संख्या पचासी समझो। नेत्र दृष्टि पर ध्यान लगा कर ही इसे मैंने देखा या समझा था॥

कोई विलक्षण साधु ही इसका ज्ञान करता है–वही अपनी साधना के सार तत्त्व पवन का लेखा-जोखा भी करता है। तुलसी साहब कहते हैं कि जिन-जिन इसे नेत्रों से देखा है–पचासी पवनों का वर्णन करके वह आनन्दित होता है॥

जिस-जिस पिंड का पर्वत शिखर सँवारा गया है–उसी-उसी ने वायु स्थल के गमन को पुकारा है–(वर्णन किया है) आगे आकाश का वर्णन देखो–मैंने सोलह आकाश इसी पिंड में देखा है॥ १३॥

सुरति ज्ञान से जिन-जिन पर्वतों से साक्षात्कार किया–उन्होंने सोलह आकाशों के विषय में बता दिया है। जो इस सोलह आकाश का वर्णन करता है, वही सज्जन है, वही सच्चा साधु है॥

मैं सोलह आकाशों का वर्णन भिन्न-भिन्न रूपों में कर रहा हूँ। गगन (आकाश) का नाम देकर एक भी न छोड़ूँगा। उनके विधि-विधि नामों को मैं समझाकर बताऊँगा। हे श्रोतागण! ध्यान देकर आकाश की भाँति स्थिर चित्त से सुनो॥

॥ गगन के नाम। चौपाई ॥

परथम गगन निसाधर मोषा। दूसर गगन पृथी पद पोषा॥
तीसर गगन बिरिछ सुर सोषा। चौथा गगन दिलंभी गोषा॥
पंचम गगन हिरा पद स्यामा। षष्टम गगन निरंजन नामा॥
सप्तम गगन पुलंधर चीन्हा। अष्टम गगन सफानल कीन्हा॥
कदलीकंद नवीं कर नामा। दसवीं गगन जमरस के ठामा॥
एकादस गगन हरि हिरदे नामा। द्वादस गगन अधर परमाना॥
तेरा गगन कलंगी रूपा। चौधा गगन है धुंध सरूपा॥
पद्रा गगन मुक्ति कर नामा। सोला गगन गुप्त निज धामा[१]॥
इतने गगन काया के माईं। सज्जन साध खोज कोइ पाईं॥
सोला का कोई भेद बतावै। सोइ सोइ गगन गिरा गति गावै॥
तुलसी निरखि कहा निज लेखा। बूझि साध कोइ करै बिबेका॥
घट भीतर सब गगन बताया। भिनि भिनि नाम गगन गति गाया॥
इतने की कोइ जानै सधा। सो नहिं परै काल के फंदा॥
आगे भेद जो कहौं अनूपा। भँवर गुफा में जोति सरूपा॥
भँवर गुफा छै भाखि सुनाऊँ। जाको भिनि भिनि भेद बताऊँ॥

अर्थ–आकाश का प्रथम नाम निशाकर कहा गया है–दूसरा आकाश पृथ्वीपद बताया गया है। तीसरा आकाश देववृक्ष सोषता है और चौथा गगन दिलंभी है–जो आकाश को प्रतिबिम्बित करता है॥

पंचम आकाश श्यामवर्ण का हीरापद है और छठें आकाश का निरंजन नाम है। सातवें आकाश को 'पुलंधर' के रूप में पहचाना है और आठवें आकाश का नाम सफानल है॥

नवें का नाम कदली कंद है और दसवाँ गगन 'जमरस' के पास है। एकादश गगन का हृदय नाम है और द्वादश आकाश अधर है। तेरहवाँ आकाश 'तेलंगी' रूप है–चौदहवाँ आकाश धुंध की भाँति है॥

पन्द्रहवाँ आकाश मुक्ति के नाम का है–सोलहवें गगन का धाम गुप्त है। इतने आकाश शरीर के मध्य हैं। विरले सज्जन तथा साधु इसे खोज पाते हैं। जो आकाश में स्थित नाद की ध्वनि का गान करता है, वही कोई विरला ही सोलह आकाश का भेद बता सकता है॥

तुलसी साहब ने उन्हें भलीभाँति देखकर अपना लेखा कहा है–कोई साधुजन ही इसको समझ कर इसका विवेक कर सकता है। इसी घट के भीतर समस्त आकाश को बताया गया है। गगन की गति के अनुसार साधुजनों ने उसका भिन्न-भिन्न नाम बताया है॥

---

१. मु० दे० प्र० की पुस्तक में कड़ी ८ में 'गुप्त निज' की जगह 'मुक्ति कर' छपा है (जो कि ठीक नहीं हो सकता क्योंकि वहाँ नाम पंद्रहवें गगन का है)।

कई साधु इतने तत्त्वों का जब ज्ञान कर लेता है तो वह काल के फँदे में नहीं पड़ता। आगे जो इसके अनुपम भेदों का वर्णन करेगा–वह भ्रमर गुफा में ज्योति स्वरूप समझा जाएगा। मैं अब छः भ्रमर गुफाओं का वर्णन करता हुआ उनके भिन्न-भिन्न भेदों को बता रहा हूँ॥

॥ भँवर गुफा के नाम ॥

परथम बेहद नाम सुनइया। भँवर गुफा बिच बास करइया॥
दूसर नाम निरखि निरधारी। तीसर नाम मुक्ति पद प्यारी॥
चौथा नाम उनमुनी स्यामा। सोइ सब जोगिन का बिसरामा॥
पंचम नाम हरी हद सूना। छठवाँ चदर अधर पर धूना॥
छई छर भँवर गुफा दरसाई। तुलसी नैन नजरि में आई॥
आगे भाखौं भेद निहारा। छै त्रिकुटी घट माहिं सिहारा॥
जा कौ नाम ठाम दरसाऊँ। भिनि भिनि भाव भेद समझाऊँ॥

अर्थ–भ्रमर गुफा का प्रथम नाम 'बेहद' सुना गया है–वह भ्रमर गुफा के बीच निवास करता है। दूसरा भेद 'नरधारी' नाम से समझो। तीसरा नाम 'प्रिय' मुक्तिपद है। चौथा नाम भेद श्यामल उनमनी है–वही सम्पूर्ण योगियों के लिए विश्राम स्वरूप है। पाँचवाँ नाम (भेद) हरीहद शून्य है। छठाँ 'चंदर है–जिसका स्थल ओष्ठ है। छठाँ भँवर गुफा में 'छर' के रूप में दिखाई पड़ता है–तुलसी साहब कहते हैं कि वह निरन्तर दृष्टि में आती रहती है।

घट के भीतर स्थित छः त्रिकुटियों का वर्णन करता हूँ आगे मैं उनके भेदों को देखकर वर्णन कर रहा हूँ। मैं इन त्रिकुटियों का नाम तथा स्थान बताऊँगा और उनके भिन्न-भिन्न भाव भेदों को भी समझाऊँगा॥

॥ त्रिकुटी के नाम – चौपाई ॥

प्रथम कहौं रुकमन्दर नाऊँ। काल कौ चक्र फिरै तेहि ठाऊँ॥
दूसर बली बिजै बल सोई। षटदल कँवल फूल जहँ होई॥
तीसर नाम मुकर मनि जोई। मन बुधि निद्रा से सुख सोई॥
चौथा नाम सब्दनी होई। नौ नाड़ी सुपने दे सोई॥
पंचम नाम गोमती गाऊँ। अठदल कँवल फूल तेहि ठाऊँ॥
हंसमुखी छठवीं कर नामा। हंस बिहंग बसै तेहि ठामा॥

अर्थ–प्रथम त्रिकुटी का नाम एकमन्दर है। उस स्थान पर काल चक्र विचरण करता रहता है। दूसरे का नाम बली है जो अपने विजय बल से युक्त है तथा उसके पास ही घट दल कमल पुष्प स्थित है ॥ १ ॥

तीसरे का नाम 'मुकुरमणि' है, जहाँ मन और बुद्धि निद्रा में सुखपूर्वक सोते रहते हैं। चौथी त्रिकुटी का नाम शब्दनी है–वह नौ नाड़ियों को स्वप्न में रखकर सोती रहती हैं। ॥ २ ॥

पाँचवाँ नाम गोमती है, उस स्थान पर अष्ट दल कमल फूल के रहता है। छठें का नाम हंस मुखी है–उस स्थान पर 'हँस पक्षी' निवास करते हैं॥ ३ ॥

॥ दोहा ॥

छै त्रिकुटी बिधि बिध कही, दृग निज नैन निहार।
तुलसिदास घट भीतरे, देखि कही सब सार॥

अर्थ—जैसा विधिपूर्वक बताया गया है, उस प्रकार की छः त्रिकुटियों का वर्णन अपने नेत्रों से देखकर किया है। तुलसी साहब कहते हैं कि इन सबके सार तत्त्वों को इस पिंड के भीतर देखकर उनका वर्णन करते हैं॥

॥ चौपाई ॥

त्रिकुटी छई नाम निज गाया। तुलसी भिन भिन भेद लखाया॥
जोगी जीत रीत कोई जानै। त्रिकुटी चढ़ै भेद पहिचाने॥
आगे सतमत द्वार लखाऊँ। सुकिरत सेत द्वार दरसाऊँ॥
जौन दिसा सुकिरत है भाई। तौन दिसा सत द्वार लखाई॥
अष्ट कँवल दल दरपन माईं। नाभि सेत नल मध के ठाईं॥
नल नागिनि करि बैठी भेषा। जीव भखन वो करै अनेका॥
पुनि सरवर तेहि पास बिराजै। ता पर बैठि सभा बहु गाजै॥
तेहि सरवर जल नीर अपारा। जीव उतरि कोइ जाइ न पारा॥
कौन दिसा नागिनि रस रूखा। कौन दिशा सरवर रहै सूखा॥
अभि अंतर सुकिरत सत बासा। करिया कँवल में काल निवासा॥
अष्ट कँवल नागिनि रस रूखा। सरवर बिरह कँवल में सूखा॥
यह सत रीति द्वार दरसाई। अब मैं कहौं सुनो तुम भाई॥
आगे तरवर भेद अपारा। चारि बिरछ पर सुरति सम्हारा॥
जीव पैठि सोइ मारग पावै। गगन कँवल भीतर चलि आवै॥
उलटै चक्र सुन्न में धावै। सिध साधक जहँ ध्यान लगावै॥
बिरछ चारि सोइ कहौं बुझाई। जाकर नाम ठाम गति गाई॥
जहँवाँ कागभसुण्ड कहु काला। बट पीपर पाकरी रसाला॥
कागभसुण्ड काया के माईं। तन मन बिरछ संत समझाई॥
बिरछा ऊपर तालबिराजै। निरखत काल कला सब भाजै॥

अर्थ—मैंने अपनी छः त्रिकुटियों के नामों का वर्णन किया है और उनके भिन्न-भिन्न भेदों को दिखाया। कोई योगी ही इस संसार की जीत की रीति को जानता है, तो वही त्रिकुटी पर चढ़कर उनके भेदों को समझेगा॥

आगे सतमत का द्वार दिखाऊँगा—ये सुकीर्ति के द्वार हैं। हे भाई जिस दिशा में जिस दिशा में वह सुकीर्ति है—उसी दिशा में 'सत' द्वार हैं॥

जहाँ अष्ट दल कमल दर्पण की भाँति हैं—वह स्थान नाभि के श्वेत नाम से मध्य में है। उसी नाल में नागिन वेषबदल कर बैठी है—जो अनेक जीवों का भक्षण कर लेती है॥

पुनः उसके पास एक सरोवर है—वहाँ बैठकर आत्मनिष्ठ अनेक सभाएँ करता है। उस सरोवर का जल अगाध है—उसको पार करके कोई जीव जा नहीं सकता॥

किस दिशा में नागिन रस से रुष्ट रहती है, किस दिशा में सरोवर सूखा रहता है। उस सरोवर के मध्य में सुकीर्ति धर्मी सत् निवास करते हैं। काले कमल में यहाँ काल निवास करता है॥

अष्ट कमल में नागिन रसरुष्ट रहती है—सरोवर कमल के वियोग में सूखा रहता है। मैंने इस 'सत' रीति का द्वार दरसाया है—अब आगे जो मैं कहता हूँ, हे भाई! तुम सुनो॥

उस सरोवर के आगे वृक्षों के अनेकभेद हैं—इनमें से चार वृक्षों पर सुरति संभली हुई है। जीव वहाँ प्रवेश करके आगे का मार्ग प्राप्त करता है और वह (आगे) गगन कमल के भीतर प्रवेश कर जाता है॥

यह चक्र उलटकर शून्य में चक्कर लगाता है (दौड़ता है) और वहाँ सिद्ध एवं साधक ध्यान लगाते हैं। वहाँ स्थित उन चार वृक्षों के विषय में मैं समझा कर कहता हूँ—मैंने स्वयं वहाँ जाकर उनके नाम, स्थान तथा स्वरूप ज्ञान का गान किया है॥

जहाँ कुछ समय तक कागभुशुण्डि रहे हैं—वे वट, पीपल, पाकर एवं आम्रवृक्ष हैं। कागभुशुंडि की काया के मध्य में तन, मन एवं वृक्ष तीनों को सन्तों ने समझाया है।।

इस वृक्ष के ऊपर एक एक सरोवर शोभित है—और उसे देखते ही काल की सम्पूर्ण कलाएँ भागकर (तिरोहित हो) जाती है।

॥ सोरठा ॥

बिरछा ऊपर ताल, जहाँ काल करकै नहीं।
तुलसी संत दयाल, दिया भेद भिनि भिनि लखा॥

अर्थ—चारों वृक्षों के ऊपर सरोवर है, जहाँ काल हिल नहीं सकता (करके नहीं)। तुलसी साहब कहते हैं कि दयालु संतों ने यह भेद दिया (बताया) है, उसे भिन्न-भिन्न रूपों में देखा भी है॥

॥ कहेरा ॥

सखी री बिरछ पै ताला, जहँ करकै न काल।
बिरछा के जड़ नहिं पाती, वा की ढुरि ढुरि[1] डाल॥ टेक॥
सर मैं सुरति न्हवावई, कागा किये हैं मराल।
संतों पंथ पिया पाये, गुरु भये हैं दयाल॥ १॥
अठमें अटारी माहीं, परे सुनि पिया हाल।
हरखा बंक सुर नाला, चढ़ी चट चट चाल॥ २॥
सुरति गगन घन छाई, पिया परे परे ख्याल।
तुलसी तरक तत तारी, भारी काटी भ्रम जाल॥ ३॥

अर्थ—हे सखी! इन वृक्षों के ऊपर एक सरोवर है—जहाँ काल भी हिलडुल नहीं सकता। इस वृक्ष की न जड़ है, न पत्ता है—उसकी झुकी-झुकी डालियाँ हैं॥ १॥

इसी सरोवर में मैंने सुरति को स्नान कराया, इसने इस काग शरीर को हंस बना दिया। संतों के इस मार्ग पर मैंने पति आत्मब्रह्म को प्राप्त कर लिया—मेरे गुरु कितने दयावान् हो गए॥ २॥

आठवीं अंटारी पर मेरी आत्मा का समाचार सुनो। उसमें जाने पर बंक नाल हर्षित हो उठा और आत्मा आगे चटाचट चाल से चढ़ती गई॥ ३॥

सुरति में शून्याकाश की गहन छाया छा गई और मेरे पति (आत्म ब्रह्म) उसी में अनुरक्त है। तुलसी साहब कहते हैं कि तत्काल ही उस परम तत्त्व ने उनके भारी भ्रमजाल को काटकर मुझे मुक्त कर दिया॥ ४॥

---

१. झुकी हुई।

॥ सोरठा ॥

कहों अब बिधि बरतंत, संत कहनि मन मत गही।
लही जो तुलसी अंत, ज्ञान चक्र चित चेति कै॥

अर्थ–मैं अब विधिपूर्वक समस्त वृतान्त (बरतंत) का वर्णन करता हूँ क्योंकि मेरी मति 'सत' कहने के प्रति प्रतिबद्ध हुई है। चित्त में ज्ञान चक्र को समझकर तुलसी साहब ने जो कुछ कहा है, वही उनकी परमार्थ ज्ञान की प्राप्ति का अन्तिम सत्य है॥

॥ चौपाई ॥

अब सोई बिधि बरतंत सुनाऊँ। राह रीति मन मत दरसाऊँ॥
मन मत चक्र घेर के मारा। ज्ञान चक्र जब जीव सम्हारा॥
काल मारि मुख फेरि चलावै। काल भागि त्रिकुटी में आवै॥
जीव सब्द गहि खेदि चलाई। अधर कँवल बिच काल छिपाई॥
भर्म चक्र जब काल चलावा। भरमित जीव भरम जब आवा॥
संसय सोग जीव उपजाई। साहेब सब्द बिसरि गयो भाई॥
भगिया जीव गगन मग माहीं। यहे कोइ काल गहैगो नाहीं॥
जीव वहाँ से निसरि पसाई। नाल बंक में जाइ समाई॥
बंकै नाल काल गति लइया। जीव भागि आगे चलि गइया॥
परम कँवल में जीव छिपाना। वहाँ काल जो जाइ समाना॥
सोला गगन जीव फिरि आई। तहाँ काल पुनि खेदत धाई॥

अर्थ–अब मैं उसी प्रकार वृत्तान्त सुनाता हूँ तथा मन की गति के अनुसार मार्ग तथा इस साधना की प्रणाली का वर्णन करता हूँ। जब से जीव ने ज्ञान चक्र को सम्भाला, तभी से अज्ञान को (मन गति) को चक्र से मार कर नष्ट कर दिया॥

काल को मार कर पुनः मुख दूसरी तरफ करके उस चक्र को चलाया गया। भयवश काल भाग कर त्रिकुटी में छिप गया॥ जीव (अज्ञानी जीव) को पकड़कर पुनः उस पर चलाया गया। अधर कमल के बीच पुनः काल जाकर छिप गया॥

जब काल ने भ्रम चक्र चलाया–भ्रमित जीव, उस समय भ्रमवशित हो उठा। जीव में उस समय संशय योग उत्पन्न हुआ और वह जीव साहेब (परमात्मा) शब्द भूल गया॥

जीव भाग कर पुनः गगन में गाया और बोला इस काल को कोई नियंत्रित करेगा (गहैगो) या नहीं। जीव वहाँ से भागा और नाल बंक में जाकर घुस गया॥

काल की गति ने बंकनाल को भी वश में ले लिया फलतः जीव भाग कर आगे चला गया। परम कमल में जीव जाकर छिप बैठा–वहाँ भी काल जाकर समा गया। सोलह आकाशों में जाकर जीव भागकर लौट आया और वह जहाँ-जहाँ गया, वहाँ वहाँ काल उसे खदेड़ता रहा॥

॥ सोरठा ॥

सोला गगन मँझार, जीव काल खेदत फिरै।
बूझै बूझनहार, घट निहारि अंदर लखै॥

अर्थ–सोलह आकाशों के मध्य में जीव को काल खदेड़ता फिरता रहा। अपने घट के अन्दर देखो, इसे समझो, कोई बूझने वाला ही इसे बूझता है॥

॥ चौपाई ॥

वहाँ जीव कोइ बचन न पावै। रहस नाल जिव पैठि समावै॥
वहँ कहुँ काल सुनन जब पावै। समाधान होइ काल सिधावै॥
रहस नाल से भागि पराई। भँवर गुफा में जाइ छिपाई॥
आपै काल ध्यान धर कीन्हा। अपनी सुरति गुफा में दीन्हा॥
सूरति जीव काल पर आवै। काल आप पर ध्यान लगावै॥
अपनी सुरति गुफा में लावै। भीतर सुरति जीव समावै॥
अपना घर बिधि काल न पावै। पीछे काल तहाँ लगि धावै॥
तब लग काल जीव को घेरा। घर सुधि बिन जो फिरै अनेरा॥
धनि वे जीव आप को जानी। उलटि काल को बाँधै तानी॥
जानै जीव जो नाम सहाई। नाम निअच्छर जाइ समाई॥
पुरुष नाम जीव लखि पावै। जीव नाम लखि ब्रह्म कहावै॥
नाम छाँड़ि जग जीव कहाये। भरम भरम भौसागर आये॥
अभि अंतर जिव पैठे जाई। राई के दस भाग समाई॥
अंतर काल बड़ा मग लागा। एक राई का दसवाँ भागा॥
अंतर बड़ा जीव को सोका। काल की आँखी तीनों लोका॥
जीव की आँखि पुरुष को देखा। काल दृष्टि जब होय बिसेषा॥
आँखी जीव चकोर समाना। पाँचों करै दृष्टि जस बाना॥
धरती दृष्टि प्रकिरती उद्रा। दृष्टि अकास करै नर मुद्रा॥
तत्त पाँच पाचौ हैं नारी। बचै नाम निज सुरति बिचारी॥

अर्थ–वहाँ कोई जीव बचने नहीं पाता। जीव रहस्य नाल में प्रवेश करके उसी में समा जाता (समावै) है। जब वहाँ स्थित जीव के विषय में सुन पाता है तो सावधान होकर काल चल देता है॥

जीव रहस नाल से दौड़ भागता है और भ्रमर गुफा में जाकर छिप जाता है तब काल स्वयं का ही ध्यान धारण करके अपनी सुरति गुफा में देता है॥

सूरति समाधि में जीव भी काल पर आता है और काल भी स्वयं पर ध्यान लगाए हुए हैं। काल अपनी सुरति गुफा में लगाए हुए है और गुफा के भीतर जीव सुरति ध्यान में खो गया है। विधाता का काल अपना घर यहाँ नहीं पाता–पीछे-पीछे यद्यपि काल यहाँ तक दौड़ा (आया है)॥

तभी तक काल जीव को घेरता है–जब तक अपने घर (भ्रमर गुफा) की याद के बिना अकेला (अनेक) घूमता रहता है। वह जीव धन्य है–जिसने अपने को जान लिया है, वह जानने वाला जीव उलट कर काल को ही कस कर बाँध लेता है॥

अपनी सहायता करने वाले का नाम जीव जब जान लेता है, तब वह उसी अक्षरविहीन नाम में आकर समा जाता है। मनुष्य नाम से जीव की प्रतीति होती है–जीव ब्रह्म का नाम जानकर ब्रह्म कहलाता है॥

ब्रह्म का नाम छोड़कर मनुष्य इस संसार में जीव कहा जाता है और अनेक योगियों में भ्रमण करता हुआ वह भवसागर में रहता है॥ ब्रह्म के अभ्यन्तर में जीव जाकर उस प्रकार बैठ जाता है, जैसे राई (छोटी सरसों) के दसवें भाग में समा गया हो॥

यह एक राई का दसवाँ भाग अपने अन्तर काल में एक लम्बा रास्ता-सा लगता है। इस बड़े अन्तर को देखकर जीव को बड़ा शोक होता रहता है–तीनों लोक तो काल की आँखें हैं॥

जीव की आँखें उस समय पुरुष को देखती रहती हैं क्योंकि अब काल की दृष्टि विशेष हो गई है–वह पुरानी दृष्टि नहीं रह गई है। जीव की आँख में चकोर (प्रभु संसक्ति हो गई) समाविष्ट हो गया और पाँचों इन्द्रियाँ दृष्टि (देखते) जैसा व्यवहार (बाना) करने लगती हैं॥

प्रकृति में आवेग (उद्रा) आ गया, पृथ्वी दृष्टिमती हो गई और यह दृष्टि शून्याकाश में मनुष्य जैसी मुद्रा करने लगी। पंच तत्त्व पाँचों नारी जैसे प्रभु में समर्पित हो उठे और सुरति साधना के बीच केवल नाम ही बच पाता है॥

॥ दोहा ॥

काल करै जिव हानि, तुलसीदास तत सम रहौ॥
घट रामायन सार, मथि काया बिच घट कह्यो॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि काल ही जीव की हानि कर सकता है, अतः तत सम (संसक्ति रहित निरपेक्ष) होकर जीवन यापन करो। इस घट रामायण में काया के बीच पिंड को मथकर तत्त्व-चिन्तन किया गया है–(उसे समझो)॥

॥ सोरठा ॥

भिनि भिनि कहौं बखान, आदि अंत घट भेद बिधि॥
तुलसी तनहिं बिचार, घट निरखो निज नैन से॥

अर्थ–पिंडभेद के विधियों को आदि से अन्त तक भिन्न भिन्न रूपों में बताया गया है। तुलसी साहब कहते हैं कि शरीर पर विचार करते हुए अपने नेत्रों से इस पिंड को देखो॥

॥ चौपाई ॥

आगे घट का भेद बखाना। बतिस नाल घट भीतर जाना॥
नाल भेद बिधि कहौं बुझाई। जिन जानी घट परचे पाई॥

अर्थ–आगे घट में भेदों का वर्णन किया गया है। इस घट के भीतर बत्तीस नाल जानिये। मैं समझाकर नाल भेद विधिपूर्वक कहता हूँ। जिन्होंने इसे जाना, उसे घट का परिचय प्राप्त हो गया।

॥ नाल के नाम – चौपाई ॥

प्रथम नाल की बिधी बताऊँ। अभया तेज ताहि कर नाऊँ॥
दूसर रहस नाल जो गावा। चौदल कँवल फूल तेहि ठाँवा॥
कँवल चार दल भँवर उड़ाना। चढ़ि अकास बिधि जाइ समाना॥
कनक नाल तीसर कर नामा। चौंसठ जोगिनि बसै तेहि ठामा॥
चौथी नाल बिकट थिर थाना। कोठा नाल बहत्तर जाना॥
धुन्धर नाल पाँचवीं होई। काल सिंहासन बैठा सोई॥
छठवीं नाल रूपरम नामा। निरगुन रूप बसै तेहि ठामा॥

नाल सातवीं सेत बताई। गन की कला बसै तेहि माईं॥
नाल आठ अभया मत नाँऊँ। कामिनि चारि बसै तेहि ठाऊँ॥
नाल मुकरमा नौवीं नामा। द्वादस दूत बसै तहि ठामा॥
हरि संग्रह दसवीं दरसाई। लछमन राम बसै जेहि माईं॥
मुक्तामनि एकादस सोई। कलसर दूत बैठ बल जई॥
द्वादस नाल पोहप पट माईं। नभ नल द्वार सब्द गोहराई॥
तेरहीं नाल निकट नट नौली। बचन बिदेह बाक बिन बोली॥
चतुरदसि नाल नटवर नामा। मेघा छपन कोटि बिसरामा॥
पंद्रा गगन नाल निरबानी। झरि झरि चुवै कूप से पानी॥
सोला सुखमनि नाल कहाई। सुकिरत सेत बसै तेहि ठाईं॥
सत्रह नाल अनूप अचीन्हा। अंडा बिदित बिस्व रचि लीन्हा॥
अठारा नाल बिमल सुर जानी। तैंतिस कोटि देव दरबानी॥
उन्निस नाल भँवर मन्दा की। अंडा कुम्भ रहै मन छाकी॥
बिसवीं नाल अजोरक माली। सूरत सब्द सेत चढ़ि चाली॥
इक्किस नाल हंसदे नाऊँ। मुक्ता मानसरोवर ठाऊँ॥
बाइस नाल सत अंकित होई। बन अशोक सीता जहँ होई॥
तेइस नाल नगर एक बाटा। जहाँ को जम रोकै नहिं घाटा॥
चौबिस बिषम नाल निजधामा। गुंजै भँवर कंज के ठामा॥
पच्चिस नाल पदम सुर सोई। पचरँग रूप जहाँ नहिं होई॥
छबिस नाल गढ़ गोधर नाईं। अटक पार चढ़ फटक समाई॥
सताइस नाल त्रिकुट पर लंका। जहँ रावन बसै ब्रह्म निसंका॥
अठाइस सेत द्वार दुरबीना। समुन्दर सात पार कोइ चीन्हा॥
उंतिस नाल सिखर पर सैला। अच्छर अंदर अगम दुहैला॥
तिसवीं नाल अधर रस रोकी। जहाँ निरंजन बैठे चौकी॥
इकतिस सुरति कँवल अस्थाना। कोइ सज्जन सत साध बखाना॥
बत्तिस नाल सब्द सुन माईं। मुकर द्वार चढ़ि छूटै झाईं॥
बत्तिस नाली बरन अनूपा। सुर नर मुनि नहिं पाव भूपा॥
ये सब नाल चाल दरसाई। सो सब देखे घट के माईं॥
जिनके नाम ठाम गुन बरना। कहै तुलसी संतन के सरना॥
बत्तिस नाल बरनि समझाई। वाकी मुनि हर एक रहाई॥
बंक नाल है वा को नाँवा। तीनों भवन भेद नहिं पावा॥
घट में बत्तिस नाल बखाना। काया सोध साध कोइ जाना॥

अर्थ–अब मैं प्रथम नाल के विषय में बताता हूँ, उसका नाम अभया तेज है॥ १ ॥ दूसरे नाल 'रहम' का जो गान करते हैं–उसके स्थान चार दल वाले कमल के फूल पर होते हैं॥ १ ॥ इसके चार दलों से भ्रमर उड़ते हैं और वे आकाश में चढ़कर विधाता (ब्रह्मा) में प्रवेश कर जाते हैं॥ १२/१ ॥ कनक नाल तीसरा नाम है–यहाँ चौंसठ योगिनियाँ निवास करती हैं॥

चौथा नाल विकट नाल है। उसका स्थान स्थिर है, और इसमें बहत्तर कोठा नाल हैं। पाँचवीं नाल धुन्धर नाल है और वह काल के सिंहासन पर बैठा हुआ है।

छठी नाल का नाम 'रूपरम' है–और यहाँ निर्गुण रूप का निवास होते होता है। सातवीं नाल मन बताई गई है, उसमें मन की समस्त कलाएँ निवास करती हैं॥

आठवीं नाल का नाम अभयामत है–जिसके पास चार कामिनियाँ निवास करती हैं। नवीं नाल का नाम मुकरमा है, उसके पास बारह दूत निवास करते हैं॥

हरिसंग्रह दसवीं नाल कही गई है–जिसमें राम-लक्ष्मण बैठे हुए हैं। एकादश नाल मुक्तामणि है–जहाँ कलसर दूत बलपूर्वक बैठे हुए हैं॥

हे सखी! बारहवीं नाल पोहप पट है, यह नाल द्वारा आकाश में शब्दों को बुझाता है। तेरहवीं नाल नौली नाम की सन्निकट ही है–यह वचन विदेह एवं वाणी बिना बोली के हो जाया करती है॥

चौदहवीं नाल का नटवर नाम है, जहाँ छप्पन कोटि मेधा (प्रतिभा) विश्राम करती है। पन्द्रहवें नाल का नाम निरवानी है–जहाँ 'उल्टा कूप' का जल झर झर कर चूता रहता है॥

सोलहवीं नाल सुखमनि है–उस स्थान पर सुकीर्ति संतु स्थित है–सत्रहवाँ नाम अनुपम एवं अचीन्हा है–जहाँ विश्व के समग्र ब्रह्मांड की रचना वर्तमान है॥

अठारहवीं नाल को देवगण 'विमल नाम से जानते हैं–जहाँ तैतीस करोड़ देवता दरबानी करते रहते हैं। उन्नीसवीं नाल 'भँवर मन्दाकी ' है–जहाँ शरीर एवं पिंड एक होकर रहते हैं॥

बीसवाँ नाल अजोरक माली है–जहाँ सुरति शब्द संतु तक चढ़, कर पहुँच गए हैं? इक्कसवें नाल का नाम हंसदेव है–वहाँ मुक्ता तथा मानसरोवर दोनों हैं॥

बाइसवीं नाल 'सत अंकित' है–जहाँ अशोक बन में सीता है। तेइसवीं नाल नगर में 'एक बार' है–जहाँ यमराज कोई मार्ग नहीं रोकता। चौबीसवाँ, विषम नाल है–जहाँ उसके धाम में कमल के पास भ्रमर गुंजरित होते रहते हैं॥ पच्चीसवाँ नाल पद्म सुर है–जहाँ पंचेन्द्रियों वाले रूप नहीं होते॥

छब्बीसवें नाल का नाम गोधरगढ़ है–जहाँ खाइयों का अवरोध पार करते ही शून्य द्वार (फटक) में समा जाते हैं। सत्ताइसवीं नाल त्रिकुटी पर है, लंका उसका नाम है– जहाँ रावण ब्रह्म से निर्भय नि-शंक भाव से निवास करता है॥

अट्ठाइसवाँ द्वार श्वेत द्वार है–जहाँ दूरबीन है और वहाँ से सात समुन्दर पार स्थित किसी को पहचान लेता है। उन्तीसवाँ नाम 'शिखर पर शैल' है जो अन्तर बिना अक्षर (नाम का) दुर्लभ तत्त्व है॥

तीसवीं नाल 'अधर रस' के रूप में रोकी हुई है–जहाँ निरंजन ब्रह्म चौकी पर बैठे हुए हैं। इकतीसवीं नाल सुरति स्थान पर है–जिसका वर्णन कई सज्जन या साधुजन ही कर सकता है॥

हे सखी! बत्तीसवें नाल के शब्दों को सुने–वह मुकुट पर लगी हुई झाई की भाँति है–जो उस पर चढ़ने से छूटती है।

बत्तीसवाँ नाल अनुपम वर्णन का है–उसे कोई देवता, मुनि या राजा नहीं पा पाते॥

इन समस्त नालों की अवस्थाओ को मैंने बताया है–इन्हें सभी साधक अपने शरीर के भीतर देखते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि संतों की शरण में रहकर मैंने इनके नाम, स्थान तथा गुणों का वर्णन किया है॥

मैंने बत्तीस नालों का वर्णन करके समझा दिया है। शेष मुनियों द्वारा वर्णित 'एक नाल' अपहृत है। उसका नाम बंक नाल है। तीनों लोकों में उसका रहस्य समझा नहीं जा सका है॥

इस पिंड के अन्तर्गत मैंने बत्तीस नालों का वर्णन किया है कोई साधु ही अपनी काया (पिंड) का शोधन करके इसे समझ सकता है॥

॥दोहा॥

बत्तिस नाल निहारि कै, तुलसी कहा बिचारि॥
घट घट अंदर देखि कै, साध करै निरवार॥

अर्थ–बत्तीस नालों को देककर तुलसी साहब ने उसे विचार करके बताया है। इन्हें पिंड-पिंड के अन्दर देख करके साधुजन इनका निर्धारण करेंगे॥

॥ चौपाई॥

सत्त बचन साधू परमाना। भीतर भेद सत्त पहिचाना॥
काया खोज नहीं जिन पाया। जाके सदा हिये तम छाया॥
काया खोज किया नहि भाई। सुकदेव रहे भूल के माइ॥
ब्यास जनक नारद नहिं पाई। कथि पुरान आतम गति गाई॥

अर्थ–सत्य वाणी के लिए साधुजन ही प्रमाण हैं। पिंड के भीतर के भेद ही सत्य की पहचान है। जिसने इन तत्त्वों को शरीर में खोजकर नहीं प्राप्त किया–उनके चित्त पर सदैव अंधकार छाया रहेगा॥

हे सखी! जिन्होंने काया में इसकी खोज नहीं की, ऐसे शुकदेव भूल में पड़े रहे। व्यास, राजा जनक तथा नारद ने भी इसे प्राप्त नहीं किया और पुराणों का कथन करते हुए आत्मा के ज्ञान को गाते रहे॥

॥ दोहा॥

ज्ञानी भूले भर्म में, परम हंस ब्रह्मचार।
सास्तर संघ बिचारिया, बहै कर्म की धार॥

अर्थ–परम सिद्ध (हंस) के ब्रह्माचरण को ज्ञानी भ्रम में पड़कर भूल गए। वे उसे शास्त्रों में विचार करते हुए कर्म की धारा में बह गए॥

॥ सुन्न भेद । चौपाई॥

आगे कहो सुन्न बिस्वासा। बिना सुन्न गये जीव निरासा॥
अब निज कहों सुन्न में स्वाँसा। बिना सुन्न जिव काल निवासा॥
सुन्न दिसा बिधि कहौं बुझाई। बूझै साध सुन्न जिन पाई॥
बिरला सुन्न भेद को पावै। सुन्न दीप सोइ सब्द कहावै॥
सुन्न की सोत धुन्न में लागी। धुन की सोत गगन में जागी॥
गगन के ऊपर पवन रहाई। निरगुन पावन भवन के माई॥
निरखि कँवल साधै कोइ साधू। मिटि जाइ काल कष्ट की ब्याधू॥
मूल कँवल के ऊपर देखो। घट में सत्त सब्द ले पेखो॥
अष्ट कँवल ओंकार का बासा। सो निज बूझो काल तमासा॥
षोड्स कँवल को ध्यान लगावै। जोगी करै भेद सोइ पावै॥
पवन जोग- जोगी गति गाई। त्रिकुटी निज धुनि कँवल कहाई॥
मन थिर होइ सुरति ठहरावै। त्रिकुटी कँवल पवन लै आवै॥

देखै अवर पवन हिये माई। चमकै जोति दृष्टि में आई॥
जीव पवन जब चलै अघाई। सेत पवन से मारि चलाई॥
करिया पवन भई बलहीना। नाखौ पवन जीव जब चीन्हा॥
नाखौ पवन भरोसा मोरा। सेत कँवल से बाँधौ डोरा॥
सेत कँवल सुकिरत की होई। सत मत द्वार जानिये सोई॥
सत्त सुकृत की एकै बानी। ताकी गति बिरलै पहिचानी॥
कदली सब्द लाभ जिन देखा। मुक्ति अमी तहँ पियै अलेखा॥
जहाँ निरंजन बसै निदाना। सहस कँवल जोगी बिधि जाना॥
द्वादस आगे इमृत बासा। निगुरा नर सो मरै पियासा॥
सगुरा होइ सोई निज पावै। भर-भर मुख इमृत भल खावै॥
पीवै अमी लोक को जाई। घट भीतर निज खोज लगाई॥
पाँजी खोज हाथ अनुसरई। सो जिव सहजै से भौ सरई॥
झिलिमिल झरै सुन्न के माहीं। गंगा जमुना सरसुति राही॥
गङ्गा जमुना सरसुति होई। तिरबेनी संगम है सोई॥
त्रिकुटी संगम बेनी घाटा। बसै जीव सत पावै बाटा॥
बंक नाल होइ गंगा जाई। जमुना सुन्न गुफा से धाई॥
सरसुति सेत कँवल से आई। मन जोगी बिधि बास कराई॥
गंगा गहै करै असनाना। जमुना दूरि मुक्ति कर थाना॥
तीनौ नदी तीनि हैं धारा। आप आप में देखि निहारा॥
यह तीनौं हैं अगम अपारा। बिरले साधू उतरै पारा॥
तिन में रहै त्रिभवनी घाटा। ब्रह्मा बिस्नु न पांवै बाटा॥
संकर जोगो सिद्ध अनूपा। उनहू न पायौ आपन रूपा॥
निराकार अभि अंतर भाई। ता का भेद कहूँ समझाई॥
सुरति निरति करि खोजै आपू। सुन्न सिखिर चढ़ि खैंचै चाँपू॥
महि ऊपर ब्रह्मंड की तारी। द्वै पट भीतर सुरति सम्हारी॥
दहिने बाँयें सिला पहारा। जहँ की बाट न कोइ निहारा॥
जहँ सत द्वार बैठ सत यारा। अगम अगाध अजर का द्वारा॥
इमृत पीवें जीव बिचारा। जा से कटै काल की जारा॥

अर्थ–आगे मैं शून्य के विषय में वर्णन करता हूँ। बिना शून्य में प्रवेश के जीव निराश रहता है। अब अपने शून्य में स्थित श्वास का वर्णन करता हूँ। बिना शून्य के जीव का काल में निवास है॥

मैं शून्य की दिशा को विधिपूर्वक समझाता हूँ। जिन साधुओं ने शून्य को प्राप्त कर लिया है, वे इसे समझेंगे। विरला साधु ही शून्यभेद को समझता है। शून्य दीप में स्थित 'सोऽहम्' शब्द ही 'सबद' के नाम से पुकारा जाता है॥

शून्य का स्रोता ध्वनि में लगता है, ध्वनि का स्रोत आकाश में जाता है। आकाश के ऊपर वायु है और इस प्रकार मूलभवन में निर्गुण वायु है॥

वहाँ आकाश में कमल देखकर कोई-कोई साधु उसे साधता है और उससे काल कष्ट की व्याधि मिट जाती है। उस कमल के मूल के ऊपर इस पिंड में स्थित 'सत' शब्द को लेकर देखो॥

अष्ट कमल दल में ॐकार का निवास है। उसे काल की क्रीडा समझो। इसके बाद षोड्श कमल का ध्यान लगाओ–योगी जन स्वार्थ तथा परमार्थ में जो भेद करते हैं, वह उसे प्राप्त कर लेता है॥

पवन के योग का ज्ञान योगियों ने गया है। त्रिकुटी के बीच अपनी ध्वनि का श्रवण 'कमल' है। मन को स्थिर करके यहाँ जो सुरति ध्यान को एकाग्र करता है, वह उस त्रिकुटी के बीच कमल-पवन में ले आता है॥

हृदय में आए हुए अन्य पवनों को भी वह देखता है, और उस अपूर्व ब्रह्म की ज्योति दृष्टि में आकर चमकती है। जीव पवन जब सन्तुष्ट (अघाई) हो जाए तो उसे श्वेत पवन से मार कर चला देना चाहिए।

करिया पवन जब बलहीन हो उठता है, तब नाखाँ पवन को जीव पहचानने लगता है। यही नाखाँ पवन मेरा विश्वसनीय भरोसा है, यही श्वेत कमल से डोरी बाँधकर एकतान करता है॥

श्वेत कमल सुकीर्ति से सम्बद्ध है और वही 'संत' मत का द्वार है–संत द्वार एवं पुण्य की एक ही भाषा है, उसका ज्ञान कोई विरला साधु ही जानता है॥

कदली वन में जिन्होंने 'शब्द' का लाभ पाया है–वही साधु अलक्ष्य मुक्ति रूपी अमृत का पान करता है। जहाँ केवल (निदाना) निरंजन निवास करते हैं, वहाँ सहस्त्रार कमल है–जिसे योगी विशेष योगविधि से जानते हैं॥

द्वादश कमल के आगे अमृत का वास है। गुरुविहीन व्यक्ति यहां प्यास से मरता रहता है। जो सतगुरु के साहचर्य में होगा, वही, निजत्व को प्राप्त करेगा–और वह मुख में पवित्र अमृत भर-भरकर खाता रहता है॥

वह अमृत पीकर मुक्ति लोक को जाता है–(यह वह है) जिसे इसी घट के भीतर उसकी खोज की है। जो अमृत (पाँजी) की खोज में निरन्तर हाथ फैलाए रहता है, वह जीव सहज भी भवसागर तर जाता है॥

शून्य गगन में झिलमिलाता हुआ, वह झरता रहता है–'गंगा, यमुना' एवं सरस्वती का योगी राही है। जहाँ गंगा, यमुना एवं सरस्वती है–वही त्रिवेणी का संगम है॥

त्रिकुटी में संगम की त्रिवेणी का घाट है–सत जीव वहाँ निवास करके मुक्ति मार्ग प्राप्त करता है। बंकनाल से होकर गंगा जाती हैं और शून्य गुफा में यमुना दौड़ती (बहती) रहती हैं॥

सरस्वती श्वेत कमल में आती हैं–योगी अपने मन को विधिपूर्वक वास कराता है। गंगा को ग्रहण करके उसमें समान करोष यमुना तो दूर से ही मुक्ति की स्थान है॥

तीनों नदियाँ तीन धाराएँ हैं और इन्हें अपने-अपने पिंड में निहार कर देखो। ये तीनों अगम्य और अपार हैं, विरले साधुजन ही इन नदियों के पार उतरते हैं।

इन तीनों त्रिभवनी घाट है–जहाँ ब्रह्मा तथा विष्णु भी मार्ग नहीं प्राप्त करते। शिव तथा अन्य अनूप (विलक्षण) योगिजन ने भी अपने स्वरूप को वहाँ समझ नही पाए या देख नहीं पाये॥

हे भाई! वह सब निराकार रूप में अभ्यन्तर में वर्तमान हैं, उनका भेद मैं समझाकर कहता हूँ। सुरति एवं निरति ज्ञान द्वारा स्वयं खोज करो और शून्य शिखर पर चढ़कर धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाओ॥

वहाँ पृथ्वी के ऊपर ब्रह्मांड की ताली (तारी) है और दो कपाटों (पट) के भीतर सुरति ज्ञान सम्हाली हुई है–उसके दाहिने बाएँ पत्थर की शिलाएँ तथा पहाड़ हैं–जिसमें स्थित मार्ग कोई नहीं देख पाता॥

उस अगम्य, अगाध, अमरणधर्मा के शत द्वार पर जहाँ 'सत' में समाविष्ट योगिजन (यारा) बैठे हैं। वहीं यह बेचारा जीव अमृत पान करता है; जिससे काल का जंजाल (जारा) कट जाता है॥

॥ दोहा॥

जोग बिधी बेनी कही, सुन्न जोग बिधि गाइ।
काल कला परचंड यों, ठग ठग सब को खाइ॥

अर्थ– योग विधि से त्रिवेणी बताई गई है, और वहीं शून्य योग विधि भी गाकर बताई गई है। काल की प्रचंड कलाएँ इस प्रकार (जो इनके ज्ञान से अपरिचित हैं) ठग-ठग कर सबको खाती रहती है॥

॥ चौपाई॥

अब बेनी संतन की गाऊँ। या से भिन्न भेद दरसाऊँ॥
संतन की बेनी बिधि न्यारी। तुलसी भाखी देख निहारी॥
अगम द्वार बेनी असनाना। सो बेनी संतन की जाना॥
मंजै जोइ अगम गति जानी। वह प्रयाग सब संत बखानी॥

अर्थ–अब संतों की त्रिवेणी का वर्णन करता हूँ। पूर्व कथित त्रिवेणी से भिन्न उसके भेद का वर्णन करता हूँ। संतों की त्रिवेणी प्रक्रिया विलक्षण है। तुलसी साहब कहते हैं कि उनको मैंने भलीभाँति निहार कर देख लिया है॥

अगम द्वार पर त्रिवेणी का स्नान है, वही सन्तों की त्रिवेणी समझो। जो उस अगमन की गति जानता हैं, वही वहाँ स्नान करता है, उस प्रयाग का वर्णन सारे सन्तगण करते हैं।

॥ सोरठा॥

तुलसी अगम अपार, जहँ बेनी मंजन कियौ।
सतगुरु पदम प्रयाग, करि अगाध गति जिन कही॥

अर्थ–जहाँ त्रिवेणी में स्नान किया,वह अगम्य तथा अपार है–मेरे सद्‌गुरु ही मेरे पद्म प्रयाग हैं। जिन्होंने प्रयाग की अगाध गति का वर्णन किया है॥

॥ चौपाई॥

अब तेहि राह रीति दरसाऊँ। भिनि भिनि पंथ मता गति गाऊँ॥
सरगुन से निरगुन बिधि बानी। भिनि भिनि राह रीति सब छानी॥
परथम दृग दुरबीन लगावै। मन चित सुरति ताहि पर छावै॥
देखै ता के बीच मँझारा। जगमग जोति होत उजियारा॥
निरखा निरगुन पुरुष निहारा। जहवाँ सुनै सब्द झनकारा॥
सेत दीप जिव पहुँचै पारा। कोटिन काल भये जरि छारा॥

अर्थ–अब मैं उस मार्ग की रीति का वर्णन करता हूँ–इससे जुड़े भिन्न-भिन्न पंथ और मतों की गति का गान कर रहा हूँ। सगुण ब्रह्म से निर्गुण ब्रह्म की व्याख्या भिन्न है– उनके भिन्न मार्ग हैं तथा रीति अलग-अलग कही गई हैं॥

सर्वप्रथम अन्तः दृगों में दूरबीन लगाओ और साधक के मन, चित्त एवं स्मृति उस पर छा जाए। तब उसके मध्य उस ज्योति को देखें–जिसमें ज्योति जगमगा रही है–उजाल हो रहा है॥ २॥

वहाँ न्यारा निर्गुण पुरुष को मुक्त साधक ने देखा, और वहाँ अनाहद नाद की झंकार का शब्द सुने। जीव संतों के द्वीप में उस पर पहुँचता है–जहाँ कोटि-कोटि काल जल कर छार हुए हैं॥ ३॥

॥ दोहा ॥

निरगुन ज्ञान बिचारिया, सुरति राखिये पास।
तुलसीदास जहँ बासकर, जीव न जाइ निरास॥
घट रामायन सार, यह घट माहिं घटाइया।
घट का मथन बिचार, भिन्न भिन्न करि डारिया॥

अर्थ–सुरति को अपने पास रखकर उसके द्वारा निर्गुण ज्ञान को देखें। तुलसी साहब कहते हैं, वहाँ निवास करो–जहाँ उसके पास कोई जीव न जा सके॥

यह घट रामायण का सार तत्त्व है और इसे घट रामायण पर घटाया गया है–इस घट के विचार मंथन ने इसके स्वरूप को भिन्न-भिन्न कर डाला है।

॥ सोरठा ॥

निरगुन निरखि निहारि, ता से गुरुपद भिन्न है।
चौथे पद जद जाइ, पद प्रयाग सतगुरु लखै॥

अर्थ–निर्गुण ब्रह्म को भलीभाँति निरख कर देखो, सदगुरु उससे भिन्न है यदि चौथे पद पर पहुँचो तब सतगुरु का चरण रूपी प्रयाग दिखाई पड़ेगा॥

॥ दोहा ॥

तीन लोक के माहिं, निरगुन सरगुन रचि रह्यौ॥
सतगुरु इनके पार, सो तुलसी घट लखि परयौ॥

अर्थ–तीनों लोकों के बीच में निर्गुण तथा सगुण रचा हुआ है–सतगुरु इनके उस पार है और वही (सतगुरु) घट (पिंड) के भीतर भी दिखाई पड़ता है।

॥ छन्द ॥

घट भीतर जानी आदि बखानी। सुरति समानी सब्द मई॥
देखा निज नैना कहौं मुख बैना। सत्त नाम का मर्म यही॥ १ ॥
नहिं राम अरु रावन यह गति पावन। अगुन सगुन गुन नाहिं कही॥
कहि अकथ कहानी अगम की बानी। बेद भेद गति नाहिं लई॥ २ ॥
सुर नर मुनि ज्ञानी उनहुं न जानी। पँडित भेष सब कहैं कही॥
तुलसी मत भारी यह गति न्यारी। बूझैंगे कोई संत सही॥ ३ ॥

अर्थ–इस पिंड के भीतर आदि तत्त्व समाया हुआ कहा जाता है, और सुरति ज्ञान उसमें शब्द बनकर छिपा हुआ है। मैंने उसे अपने नेत्रों से देखा है, मुख-वाणी से कहता हूँ–यही सत्यनाम का मर्म है॥ १ ॥

यह राम और रावन नहीं है, यह अध्यात्म की पवित्र गति (ज्ञान) है–इसे अगुण, सगुण एवं गुण रूप नहीं कहा गया है। इसकी कथा अकथ्य है, यह अगम्य वाणी है, वेद ने इस भेद के लक्षणों को नहीं माना है॥ २ ॥

देवता, मुनि, ज्ञानी मनुष्य आदि ने उसके ज्ञान को नहीं समझा है। नाना भेषधारी पंडितजन भी जो कहा गया है, उसी को ही कहते हैं, तुलसी साहब कहते हैं कि यह मत सर्वाधिक भारी (गम्भीर) है, उसका ज्ञान विलक्षण है, उसे कोई संतजन ही सही-सही समझेंगे॥ ३ ॥

॥ सोरठा ॥

आदि अंत का भेद, तुलसी तन भीतर लखा।
सुरति सब्द परकास, ज्यों अकास सर सैल करि ॥

अर्थ–उसके आदि और अन्त के रहस्य को तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने पिंड के भीतर देखा है– जैसे शून्याकाश सरोवर एवं पर्वत है, ठीक उसी प्रकार सुरति शब्द का प्रकाश है। हे सन्तगण! आप लोग उसका आनन्द लें।

॥ चौपाई ॥

अब सुनु भेद कहों अनुसारा। लेकर ज्ञान बान भ्रम जारा ॥
ज्ञान रतन की आँखी होई। जब जम जाल देखिये सोई ॥ १ ॥
सत मत गत अभि अंतर देखै। तत मत अष्ट कँवल में पेखै ॥
सुरति सुहागिन होइ अगमानी। तुरतै मिली सत्त की बानी ॥ २ ॥
अरध उरध बिच बैठे माधो। तत उनमुनी लगाइ समाधौ ॥
तारी उलटि तत्त में लावै। रहस नाल मधि जाइ समावै ॥
तुलसी मुद्रा जोग समाधा। आगे भाखों भेद अगाधा ॥ ३ ॥

अर्थ–अब मैं भेदों के अनुसार वर्णन करता हूँ। ज्ञान के गण को लेकर समस्त भ्रमों को जला दिया। ज्ञान आध्यात्मिक रत्न की आँख है। उससे देखना हो तो यम के माया जाल को देखा जा सकता है ॥

सत्यमत के ज्ञान को अभ्यन्तर में योगिजन देखते हैं– उस मत को पिंड के अन्तर्गत अष्ट कमल में भी देखते हैं ॥ सुरति रूपी सौभागिनी आगे-आगे होकर तुरन्त ही सत्य की वाणी से मिल जाती है ॥

अर्ध एवं ऊर्ध्व के बीच ब्रह्म (माधव) बैठे हैं और उन्होंने अपनी उन्मनी समाधि भी लगा रखी है ॥

तालु (तारी) को उलटकर तत्त्व को मन में आते हैं और रहस नाल में जाकर समा जाते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि यही समाधि की योगमुद्रा है–आगे उसके अनन्त भेदों का वर्णन करता हूँ ॥

॥ दोहा ॥

तुलसी तन के माहि, पंथ भेद साधू सही ॥
तत मत तोल अँकाइ, घरघर जाइ जिन जिन कही ॥

अर्थ-साधुगण सही कहते हैं कि शरीर के मध्य में अनेक पंथभेद हैं। घर घर जाकर जिन सन्तों ने जो-जो बताया है, उस उस तत्त्व का मूल्यांकन वहाँ किया जा सकता है ॥

॥ चौपाई ॥

ये सब काल जाल रस रीती। भौ कृत खान जानि जम प्रीती ॥
गगन के मँडल काल अस्थाना। पाँच भूत विधि जाइ समाना ॥
पाँच पचीस तीन मन मैला। सब जानौ वा को निज खेला ॥
काल जाल जग खाइ बढ़ाया। रिखी मुनी कोइ भेद न पाया ॥
उलटा चलै गगन को धाई। ता से काल रहै मुरझाई ॥
सतगुरु साहिब संत लखावैं। तब घट भीतर परचा पावैं ॥

जो जेइ मूल भेद दरसावै। तब घट में अबिनासी पावै॥
सतसँग भक्ति हृदे बिच आवै। जब सतद्वार अगम लखि पावैं॥
हिरदै सत्त रहै लौ लाई। सब्द द्वार चढ़ि काल गिराई॥
मुक्ति ज्ञान पावै अबिनासी। अगम ज्ञान संग मूल निवासी॥
यह कोइ बिरला साधू पावै। अबिनासी गति अगम लखावै॥
सतगुरु कृपासिंध कोइ जागै। आवा गवन भर्म भौ भागै॥
कीन्ही अगम नाम स्त्रुति सैला। चीन्हा अगम निगम तिन खेला॥
अधर सिखर पर तंबू तानै। जहँ से देखै सकल जहानै॥
ब्रह्मंड द्वार एक है नाका। गहि दुरबीन सुरति से ताका॥
मकर तार पावै वह द्वारा। ता पर सुरति होय असवारा॥
सुरति जात लागै नहिं बारा। चली सुरति भइ नाम अधारा॥
तब पहुँचै इक्किसवें द्वारा। सुन्न से परे सब्द है न्यारा॥
सुरति सब्द में जाइ समानी। निर सब्दी गति अगम लखानी॥
जहँ नहिं पहुँचै मुक्ति पसारा। सोइ है आदि पुरुष दरबारा॥
मुनि अचार पावै नहिं कोई। सब भौ भर्म रहा जग सोई॥

अर्थ—आध्यात्मिक रस से रिक्त ये सब काल के जाल हैं। ये संसार की भौतिक लोक रचना की खानि हैं और इन सबमें यमराज की प्रीति है, ऐसा जानो॥ शून्याकाश मंडल पर काल का स्थान है और पंचमहाभूत तत्त्व विधिपूर्वक उसमें जाकर समा गए हैं। पंच महाभूत तत्त्व, पच्चीस तन्मात्राएँ तथा तीनों गुणों का मन यहाँ मैला हो गया है–तुम सब यह उसी निर्गुण ब्रह्म का ही खेल समझो॥ काल ने माया जाल को खाकर उसे और बढ़ा दिया–कोई ऋषि, मुनि उसके भेद को न समझ सका॥

जब साधक उल्टीरीति (मनोन्मनी द्वारा) शून्याकाश की ओर दौड़ता है फिर वहाँ काल मुरझा जाता है। साहब सत्गुरु जब मार्ग दर्शन कराते हैं तब पिंड के भीतर स्थित संसार का परिचय होता है। जो भी साधक इस मूल तत्त्व का भेद बताता है तभी इस घट के अन्तर्गत कोई संत अविनाशी तत्त्व (निरंजन-ब्रह्म) का परिचय प्राप्त करता है। जब अगम्य 'सत् ' द्वार दिखाई पड़ेगा, तभी सत्संगति तथा भक्ति हृदय के बीच आएगी॥

यदि हृदय में सत्य की लौ लगाए रहोगे तो शब्द के द्वार से चढ़कर काल को गिरा दोगे (नष्ट कर दोगे)। अगम्य ज्ञान के साथ का मूल निवासी अविनाशी मुक्ति ज्ञान को प्राप्त करता है। इसे कोई विरला साधु ही प्राप्त करता है। सत्गुरु की कृपा-सिन्धु से ही कोई जागृति प्राप्त करता है, वह शून्याकाश में आता है, तब उसका समस्त अज्ञानजनित संसारिक भ्रम भाग जाता है।

नामरूपी सुरति पर्वत को उसने अगम्य बना दिया है किन्तु जिन्होंने उस अगम्य। सुरति ज्ञान (तत्त्व) तथा शास्त्र के ज्ञान तत्त्व को पहचान लिया है, वहाँ वही क्रीड़ा करता है।

अधर-शिखर पर वह तम्बू तानता है और वहाँ से वह सम्पूर्ण जगत को देखता रहता है। ब्रह्मांड द्वार पर एक नाका है- (केन्द्र स्थान) वहाँ से वह सुरति रूपी दूरबीन से ताकता है। उस द्वार पर मकर तार हैं उस पर सुरति सवार होती है। सुरति के चढ़कर जाने में देर नहीं लगती। यह सुरति वहाँ जाकर नाम का आधार बन जाती है। तब इक्कीसवें द्वार पर पहुँचता है, जहाँ शून्य के अनाहत नाद से परे एक विलक्षण शब्द है। जो सुरति ज्ञान में जाकर समा जाता है, उसे शब्दहीन सृष्टि की अगम्यगति दिखाई

पड़ती है। मुक्ति का फैलाव जहाँ नहीं पहुँच पाता, वहीं आदि पुरुष का दरबार है–कोई भी मुनि इस दरबार का आचरण नहीं जान पाता और इस संसार का सम्पूर्ण मर्म उसी में खोया (विलीन) रहता है ॥

भँवर गुफा मारग चढ़ि देखा। जहँ जिव सत्त सुरत का लेखा॥
सुन्न सुन्न सब करत बखाना। सुन्न भेद कोइ बिरले जाना।।
कहीं बिस्तार सुन्न की जोई। ज्यों गूलर फल कीट समोई॥
फल जेते तेते ब्रह्मंडा। दीप दीप फल फल नौ खंडा॥
सुन्न अंड की करी बखाना। कहै तुलसी कोइ साधू जाना॥

अर्थ–भ्रमर गुफा के मार्ग पर चढ़कर देखा-जहाँ भी सत्य है और केवल वहाँ सुरति का ही तत्त्व (लेख) है। शून्य-शून्य सभी कहते हैं किन्तु शून्य का भेद कोई बिरले ही जानते हैं।। अब विस्तारपूर्वक शून्य जो है उसका अर्थात् शून्य का वर्णन करता हूँ। मनुष्य शून्य में उसी प्रकार सन्निहित है, जैसे गूलर फल में कीट। गूलर में जितने फल हैं, उतने ही ब्रह्मांड हैं फल ही सारे द्वीप है और वही द्वीपों के नवखंड हैं। उसी क्रम में मैं शून्य में स्थित अंड (पिंडों) का वर्णन करता हूँ तुलसी साहब कहते हैं, इसे कोई साधु-जन ही जानता है॥

॥ सोरठा॥

तुलसी सुन्न निवास, सब्द बास जिन घर किया।
जिमि गूलर फल तासु, जग भिनि भिनि जेहि लखि परा॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि शब्द मूल के निवास को जिसने अपना घर बना लिया है, उसी का निवास शून्य में है–जैसे गूलर के फल जिन्हें-भिन्न-भिन्न जैसे भी लख पड़ा हो॥

॥ छन्द॥

भये सुन्न निवासी सब सुख रासी। सुरति बिलासी सब्द मई।।
अनहद हद पारा अगम अपारा। अमी सिंधु स्त्रुति जाइ लई॥ १॥
देखा उँजियारा घट घट प्यारा। निरखि निहारा पार कही॥
तुलसी तुल जावै दस दिस पावै। सिंध फोड़ि असमान गई॥ २॥

अर्थ–शून्य निवासी साधु सभी सुखों की राशि बन जाते हैं, वे सुरति ज्ञान के विलासी तथा अनाहत शब्द मय हैं। इस अनाहत नाद के पार अपार और अगम्य अमृत सिंधु है–जिसे सुरति में जाकर प्राप्त करता है॥ १॥

चारों ओर घट-घट में प्यारा उजाला देखा उसे देखकर, दूर कहीं उसके पार देखा। तुलसी साहब कहते हैं कि उसके पास (तुल) जाकर दसों दिशाओं को प्राप्त करता है–लगता है, यह मनोन्मनी सिन्धु को फाड़कर आकाश में पहुँच गई है॥ २॥

॥ दोहा॥

सुन्न महल अजपा जपै, समुँद सिखरि के पार।
टूटी गगन गिरा भई, सत्त सब्द झनकार॥
त्रिकुटी टाटी टूटि कै, सुन्न अंड भिनि बास।
घट भीतर परिचय भई, देखा अजर निवास॥

अर्थ–समुद्र के शिखर के पार शून्याकाश में साधु का महल है और साधु जन यहां अजपाजाप करते रहते हैं। यह शून्याकाश भी जब टूट जाता है, साधक की वाणी 'सत्य' शब्द की झंकार (झंकृति) बन जाती है।

इस सिद्धावस्था में त्रिकुटी के टट्टर टूट कर शून्य पिंडाकाश में विचित्र सुगंधि से सुवासित (भिनि) हो जाते हैं। इस घट के भीतर उस निरंकार से परिचय हो जाता है–इस प्रकार मैंने उस अजिर ब्रह्म का निवास देखा है॥

॥ कँवल भेद ॥ चौपाई ॥

घट में सोधि कँवल जिन गाई। लखै कँवल बिरला कोइ भाई॥
अंकुर उतपति कँवल मँझारा। सत्त नाम पद तिनके पारा॥
ऊँच नीच परबत बिच बाटा। काल जहाँ रोकै नहिं घाटा॥
ता के दहिने मारग माई। दामिनि पाँच छेकि नियराई॥
देवै दानी दान चुकाही। पावै जीव अगम की राही॥
दानी कहै जीव सुनि बाता। बिना दान करिहौं मैं घाता॥
जब जिव कहै समझ सुन भाई। करौ घात केहि कारन जाई॥

अर्थ–इसी पिंड में अन्वेषण करके जिन्होंने कमल का वर्णन किया है, (वैसा वर्णन) कोई बिरला बंधु ही कर सकता है। 'सत्तनाम' जिनके वश (पारा) में है, वे ही जानते हैं कि कमल के मध्य में अंकुर की उत्पत्ति होती है। ऐसे जन, ऊँचे-नीचे पर्वत के बीच अपना सिद्धि मार्ग पा जाते हैं और वहाँ काल घाट नहीं रोकता॥ हे सखी! उसी के दाहिने मूल मार्ग है, और वहाँ समीप आते ही पाँच बिजलियाँ रास्ता रोक लेती हैं। यहाँ दानी साधु सर्वस्व दान चुकाकर, (वह जीव) अगम्य की राह प्राप्त करता है। दानी कहता है कि हे जीव! मेरी बात तो सुनो–मैं बिना दान के घात करूँगा। तब जीव कहता है कि हे भाई सुनो, किस कारण वहाँ जाकर घात करोगे?

॥ भेद पिंड और ब्रहाण्ड का ॥

अंतर गुफा तहाँ चलि जाऊँ। जहँ साहिब के दरसन पाऊँ॥
पाँचौ नाम जीव जब भाखा। छठवाँ नाम गुप्त करि राखा॥
पाँचौ नाम काल के जानौ। तब दानी मन संका आनौ॥
निरगुन निराकार निरबानी। धर्मराय यों पाँच बखानी॥
जीव नाम निज कहै बिचारी। जानि बूझि दानी झख मारी॥
जाव जीव यह राह तुम्हारी। हम नहिं रोकैं बात बिचारी॥
पोचं पाँच हमहूँ सुनि पाई। हम नहिं निकट तुम्हारे आई॥
पोचं चोर रहे अलगाई। होइ निरभै जिव आगे जाई॥
आगे सात सुमेर उँचाई। नौ नाटक तापर रहैं भाई॥
नौ नाटक पूछन चले आगे। कहौ जीव केहि मारग लागे॥
हम यहि घाट बाट रखवारी। यहाँ न अदली चलै तुम्हारी॥
कहै जीव दृग दानी भाई। हम चलि जाइ नाम चित लाई॥

दानी दान चुकावौ आई। जब यहि बाट निभन तुम पाई॥
केहि कर अंस कहाँ तुम जाई। बात आपनी कहौ बुझाई॥
कहै जीव सतलोक निवासा। मैं चल जावँ पुरुष के पासा।।
दानी कहै दूरि है भाई। अगम पथ कैसे निभ जाई॥
कौन नाम मारग को जाई। कौन नाम से उबरै आई॥
इतना भेद कहौ समझावा। बाट जीव जब घर की पावा॥

अर्थ–जहाँ अर्न्तगुफा है, वहाँ चला जाकर साहिब (निरंकार ब्रह्म) का दर्शन प्राप्त करूँगा। जब जीव ने पाँचों नाम बताना शुरू किया तब अन्त में उसने छठाँ नाम गुप्त कर रखा। ये पाँचों नाम काल के ही समझो। इसे सुनकर उस धर्मनिष्ठ (दानी – दान देने वाले) के मन में शंका हुई। धर्मराज यम ने केवल निर्गुण, निराकार एवं वर्ण विहीन आदि पाँच की चर्चा की है, जीव ने अपने उस अलेख नाम का वर्णन नहीं किया–और तब वह धर्मनिष्ठ जानबूझकर मुखमार कर बोला–हे जीव! जाओ, यह वह तुम्हारी राह है, बिना समझे-बूझे हम तुम्हारी राह नहीं रोकेंगे।

पाँचों चोर (पंच महाभूत तत्त्व) उस जीव से पृथक् हो गए और निर्भय होकर जीव आगे बढ़ा। आगे सात पर्वतों का ऊँचा शिखर हैं, हे भाई। उस पर नौ पगडंडियाँ हैं–नौ पगडंडियों को वह जीव पूछने चला–तो उत्तर मिला! हे जीव! जाओ, यह तुम्हारी राह है, बिना समझे-बूझे हम तुम्हारी राह नहीं रोकेंगे।

पांचों चोर (पंच महाभूत तत्त्व) उस जीव से पृथक् हो और निर्भय होकर जीव आगे बढ़ा। आगे सात पर्वतों की ऊँची शिखाए हैं, हे भाई! उस पर नौ पगडंडियां हैं–नौ पगडंडियों को वह जीव पूछने चला–तो उत्तर मिला! हे जीव–तुम किस मार्ग से लगोगे या चलोगे। मैं इन घाटों-बाटों का रखवारा हूँ–यहाँ पर तुम्हारी अदला-बदली नहीं चलेगी।

जीव कहने लगा, हे दृष्टि प्रदान करने वाले भाई! हम तो चित्त में नाम लेकर चलते रहे हैं। धर्मनिष्ठ (धर्मराज यमराज) ने कहा हे भाई दानी, जब तुम आंकर यहाँ दान चुकाओ, तभी इस मार्ग से तुम्हारा निस्तार होगा। तुम किसके अंश हो, तुम कहाँ जा रहे हो, अपनी बात तुम समझा कर कहो।

जीव ने बताया कि उसका निवास 'सत् लोक' में है और मैं उस निरंकार पुरुष के पास चलकर जाना चाहता हूँ। धर्मनिष्ठ बोला, वह तो बहुत दूर है, उस तक पहुँचने का मार्ग अगम्य है, तुम्हारा पहुँचना वहाँ कैसे हो सकेगा? उसका नाम क्या है। उसका मार्ग क्या है, जब वह इन सारे भेदों को बता सका, तभी उस जीव को अपने घर का मार्ग प्राप्त किया॥

॥ जीव बचन। चौपाई॥

दानी सुनु बिधि बात हमारी। हम चलि जाइँ पुरुष दरबारी॥
सुरति निरति लै लोक सिधाऊँ। आदि नाम लै काल गिराऊँ॥
सत्त नाम लै जीव उबारी। अस चल जाऊँ पुरुष दरबारी॥
इतना बचन कही दिल सूना। बहुत त्रास लै मन में गूना॥
तुम मारग जावो जिव अपने। हम तुमको रोकैं नहिं सुपने॥
चले जीव आगे पग दीन्हा। करिया सरवर मारग लीन्हा॥
तहँ तौ पंछी एक रहाई। निस बासर वो बैठ ऊँचाई॥
तेहि मारग जिव चला अघाई। चोंचि पसार खान को चाही॥

मुख पंछी बहु भाँति पसारा। जिवरा तो को करौं अहारा॥
अपना नाम कहौ टकसारा। तब चलि जैहौ वहि दरबारा॥
नहिं हम से तुम बचने पैहौ। तो को जिवरा धर धर खैहौं।
जिवरा सुरति नाम से लाया। करिया मारि पाँव तर नाया॥
जीव चला झरने के पारा। दस दिस देखि परा उँचियारा॥
अमी द्वार इमरत कर बासा। मिटा जीव का संसय सासा॥
अधर जीव इमरत को पी वै। सब्द बुंद इमरत जुग जी वै॥
बस्तु पाइ साधै कोइ साधू। चाखै इमरत सुरति समाधू॥
चटि चटि सूरति चढ़ी अटारी। इमरत अजर नाम की लारी॥
साहिब अजर सब्द घर पावै। आवागवन बहुरि नहिं आवै॥
डोरी पुरुष अकास अकेला। किया सुरति घट भीतर मेला॥
इमरत कँवल भरा भँडारा। पी वै जिव सो उतरै पारा॥
नाम अगाध कहौं समझाई। सूरति सब्द अगाध सुनाई॥
जो जिव चाहै अगम निवासा। सूरति करै सब्द में बासा॥
जिन जिन सूरति सब्द सँवारा। सो चलि गये अगम पद पारा॥
पावै भेद बस्तु लखि पावै। सो सतलोक सोक नसि जावै॥
सुरति सब्द में भई अधीना। ताकर भेद काल नहिं चीन्हा॥
सत्त नाम से काल नसाना। कोइ साधू काया मथि जाना॥
काया दरपन सुरति समानी। सो साधू साहिब सम जानी॥

अर्थ–हे धर्मनिष्ठ! मेरी बात को ठीक से समझो–हम उस दरबारी पुरुष (निरंजन) के पास जा रहे हैं। सुरति-निरति दोनों को लेकर मैं उनके लोक में प्रवेश करूँगा और उस अनादि ब्रह्म का नाम लेकर काल को नष्ट कर दूँगा। उस 'सत्यपुरुष' का नाम लेकर जीव ने स्वयं काल से उबारा और कहा कि इस प्रकार मैं निरंजन के दरबार में चला जा रहा हूँ। उसने इतनी बातें शून्य मन से कही तब धर्मनिष्ठ (काल) ने अत्यन्त संयस्त होकर मन में विचार किया और बोला–हे जीव! तुम अपने मार्ग पर जाओ, हम तुम्हें अब स्वप्न में भी नहीं रोकेंगे।

जीव आगे चलकर पैर बढ़ाया, उसे मार्ग में एक काला सरोवर मिला। वहाँ एक पक्षी रहता था और रात दिन वह ऊँचाई पर बैठा रहता था। उस मार्ग पर सन्तुष्ट होकर जीव चला, तब वह चोंच फैलाकर जीव को खाना चाहा। पक्षी ने अपने मुख को अनेक भाँति से फैलाया कि मैं इस जीव का आहार करूँगा। उसने पूछा कि अपना नाम साफ-साफ (टकसारा) बताओ, तभी उस निरंजन के दरबार में जा पावोगे। हे जीव! तुम हमसे नहीं बचने पावोगे और मैं तुम्हें पकड़-पकड़ कर खाऊँगा। जीव ने नाम के रूप में सुरति ध्यान किया और उसने करिया को मार कर पावों के नीचे गिरा दिया।

तब वह जीव उस झरने के उस पार गया तो उसे दसों दिशाओं में उजाला दिखाई पड़ा। द्वार अमृत का था, वहाँ सम्पूर्णतः अमृत का निवास था और तब जीवन का समस्त संशय भाव समाप्त हो उठा। जीव अधर-भाव से अमृत पान करने लगा–अमृतमय शब्द बिन्दुओं में वह जीने लगा। वस्तु पाकर कोई साधुजन क्यों नहीं उसे साधेगा और अपनी सुरति समाधि में अमृत चखेगा।

चट-चट करता हुआ तेजी से वह जीव सुरति ज्ञान की अटारी पर चढ़ गया–नाम रूप अंजिर के अमृत की वासना उसके हृदय में बस गई है। उस घर में निरंजन ब्रह्म का शब्द प्राप्त कर रहा है–अब वह फिर 'आवागमन' के बंधन में नहीं आएगा।

वह शून्याकाश में अकेला उस निरंजन ब्रह्म से सम्पर्क साध लिया है और सुरति द्वारा इसी घट (शरीर) में ही उससे सम्पर्क साध रखा है। उसका भंडार अमृत कमल से भर उठा है–जीव जो उसे पीता है, वह सर्वथा उस पार उतर जाता है (इस भवलोक से मुक्ति हो जाती है)।

मैं उस अगाध नाम से सम्बोधित ब्रह्म के विषय में बताता हूँ। सुरति ध्यान में उस अगाध का ही शब्द सुनाई पड़ता है। यदि जीव उस अगम्य ब्रह्म में निवास करना चाहता है तो वह सुरति साधना करके 'शब्द' में निवास करे। जिन-जिन सन्तों ने सुरति समाधि से वह शब्द सँवारा है, वे अगम्य पथ के पार चले गए हैं।

वस्तु भेद को समझकर जो मूल तत्त्व को जान जाता है–वह सत् लोक प्राप्त करता है और उसके समस्त शोक नष्ट हो उठते हैं। सुरति शब्द साधना के जो अधीन हो जाता है, उसके भेद के विषय में काल भी अपरिचित रहता है। सत्य नाम से काल भी नष्ट हो जाता है, अपनी काया का मंथन करके कोई-कोई साधु इसे समझते हैं। शरीर दर्पण हैं, इस दर्पण में 'सुरति' समाई हुई है, यदि इस प्रकार का कोई साधु है तो उसे ब्रह्म के समान समझो॥

॥ साखी ॥

कँवला काल निरंजना, तिन बस कीन्हा घाट।
भिन्न भिन्न दरसाइ कै, सतगुरु दीन्ही बाट॥

अर्थ–कमल। काल एवं निरंजन इनके वश में सारे प्रस्थान मार्ग हैं, इन्हें भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाकर सत्गुरु ने सबके लिए रास्ता खोल दिया है।

॥ दोहा ॥

जीव चला घर आपने, काल छेकि जम जार॥
नाम सुरति जब लख पग, भागे ठग बटमार॥

अर्थ–जीव अपने घर की ओर चला और काल ने यम के जाल से घेरा। जब सबको सुरति समाधि का सोऽहम् शब्द दिख पड़ा तो सभी ठग और बटमार (काल, यम आदि) भाग चले॥

॥ भेद पिंड और ब्रह्मांड का ॥

सुरति सब्द मिल लोक में, चढ़ि सतनाम जहाज।
तुलसीदास पिया मिले, कीन्हा सेज बिलास॥

अर्थ–इस लोक में सुरति से मिलकर सतनाम के जहाज पर चढ़कर तुलसीदास साहब कहते हैं, मैं अपने प्रियतम से मिला और शैया विहार किया॥

॥ छन्द ॥

तुलसी लख जागे काल से भागे। लख दृग दानी दूर किये॥
इमरत रस चाखा सौ सब भाखा। जीव अघाइ अनाद पिये॥ १॥
सतनामहि जाना पद पहिचाना। सुरति सब्द जो जाइ लिये।।
जिन जो स्त्रुति सैना देखा नैना। अगम अपने पौ पाइ पिये॥ २॥
हिये खुल गइ आँखी सब बिधि भारवो। काल बरन बिधि बूझि कही॥ ३॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि प्रियतम के साथ मुझे देखकर सभी सभी सोते जागकर काल की भाँति भगे और (प्रियतम के साथ देखकर) हमसे धर्मराज (दानी) ने अपनी आँखे दूर कर ली। सारा संसार कहता है कि मैंने अमृत रस चख लिया है और इस जीव ने उसे आनादि तत्त्व के साथ तृप्त होकर अमृत का पान किया॥ १॥

उस सत्य नाम को मैं जान गया, उसके चरणों को मैं पहचान गया और वहाँ जाकर उस सूरति सबद को ग्रहण कर लिया। वह जो समस्त वैदिक तत्त्वों का समूह था, उसे मैंने नेत्रों से देखा और उस अगम तत्त्व को अपने में (अपने पौं) पाकर तृप्तभाव से पिया। हृदय की आँख खुल गई, उसका हर प्रकार से वर्णन किया और इस प्रकार मैंने काल के नाना रूपों (बरन विधि) को समझ कर बताया॥ 2-3॥

॥ सोरठा॥

बानी काल बिचार, तीनि बरन तोली सबै।
कहों बरन निरधार, सो कोइ साधू परखिहै॥

अर्थ–वाणी और काल का विचार मैंने तीन प्रकार से तौला है (समझा है)। इसके रूपभेद का निर्धारण करके मैं बता रहा हूँ। इसको कोई साधु ही परखेगा (पुनः मूल्यांकन करेगा।)।

॥ चौपाई॥

काल बैन बिधि भाखि सुनाई। ता की अब मैं करों लखाई॥
बानी तीनि तीनि बिधि जानी। कँवल मध्य में कहीं बखानी॥
कौन बरन वे कँवल रहाई। जाकी विधि बिधि कहों बुझाई॥
कोने बरन निरंजन देवा। तिन का बरन बताओं भेवा॥
करिया बरन काल को भाई। सेत रक्त वे कँवल रहाई॥
सुन्नि के बरन निरंजन देवा। तिन कर कहों निरख सब भेवा॥
अब बानी का कहौं बिचारा। बूझै साध करै निरवारा॥
बानी कौन निरंजन होई। बानी कौन काल की सोई॥
बानी कौन कँवल की लीन्हा। सो सब निरखि बताओं चीन्हा॥
बानी अधर निरंजन सोई। बानी क्रोध काल की होई॥
बानी मेल कँवल कर लीन्हा। येहि बिधि से तीनो हम चीन्हा॥

अर्थ–काल की वाणी का वर्णन करके सुनाता हूँ। अब मैं उसके स्वरूप को बताता हूँ। वाणी को तीन प्रकार की समझो। कमल मध्य में स्थित इस वाणी का मैं वर्णन करता हूँ॥

किस प्रकार कमल के मध्य में यह वाणी रहती है, मैं इस विधि के अनुसार उसका वर्णन करता हूँ। निरंजन देव किस वर्ण के हैं, हे भाई उनका वर्णन करो॥

काल का भाई श्याम वर्ण का है, वे रात में कमल में प्रवेश करके लाल वर्ण के हो जाते हैं। निरंजन शून्य वर्ण के हैं। मैं उनको पूरी तरह से देखकर ही उनके भेदों को बताता हूँ॥

अब मैं वाणी का निराकरण करता हूँ। कोई साधु ही इसे समझकर इससे सम्बद्ध सत्य का निराकरण कर सकता है। इसमें निरंजन की वाणी क्या है? कौन काल की वाणी है कमल किस वाणी को ग्रहण करता है–इन सबको भलीभाँति पहचानकर बताओ॥

जो वाणी अंतरात्मा (अधर) की है, वह निरंजन की वाणी है। क्रोध की वाणी है। कमल से मेल-मिलाप कर रही–एक वह भी वाणी है। इस प्रकार से हमने तीनों वाणियों को पहचान लिया है॥

॥ साखी ॥

निरगुन सरगुन लखि परै, काया काल बिचार।
आदि पुरुष सत लोक में, सो घर अधर हमार॥ १॥
घट घट में सब लखि परा, भिनि भिनि अगम पसार।
तन बिच सोला द्वार की, तुलसी कहत पुकार॥ २॥

अर्थ–शरीर एवं काल विचार के क्षण निर्गुण व सगुण दोनों दिखाई पड़े। आदि पुरुष (ब्रह्म) सत्य लोक में है, और वही हमारी अन्तरात्मा का घर है।

इस संसार के घट-घट में भिन्न-भिन्न अगम्य तत्त्वों का प्रसार दिखाई पड़ा। इस प्रकार, इस शरीर में सोलह द्वारों की चर्चा तुलसी साहब पुकार-पुकार कर करते हैं।

॥ चौपाई ॥

सोला द्वार भेद कहौं भाखी। जा की बरन बिधी कहूँ साखी॥
प्रथम द्वार का भेद बताऊँ। जा की बिधि बरतंत सुनाऊँ॥
प्रथम मूल दीप गति गाऊँ। जा की नाम ठाम समझाऊँ॥
सतगुरु गुप्त भेद लखवावै। सोला द्वार भेद जब पावै॥

अर्थ–सोलह द्वार भेदों का वर्णन करता हूँ–मैं इनकी वर्णन विधि और उनकी साक्षी बताता हूँ। मैं प्रथम द्वार के भेद का वर्णन करता हूँ–मैं उसकी विधि और वृत्तान्त सुनाता हूँ॥ प्रथम भेद की मूल गति का गान करता हूँ–मैं उसके नाम तथा स्थान का भी वर्णन करता हूँ। सोलह द्वारों के भेद का ज्ञान जो सन्त प्राप्त कर लेता है तभी वह सत्गुरु के गुप्त रहस्यों को देखता है।

॥ द्वार भेद ॥

परथम सहस कँवल में द्वारा। दूसर अकह कँवल के पारा॥
तीसर द्वार गगन के नीचे। चौथा द्वार अधर के बीचे॥
जहँवाँ बैठा कंदर काला। जिनहिं बिछाया जग जम जाला॥
पंचम द्वार दसौ दिस बाहिर। मन सब बैठा जग में जाहिर॥
भँवर गुफा बिच छठवाँ द्वारा। कँवल भँवर तहँ बसै नियारा॥
सतवाँ द्वार दसों के दहिना। पाँचो भूत सूत बिन सैना॥
अठवाँ मूल चक्र के माहीं। बैठा मूल मोह रस राही॥
नौवाँ द्वार ताल में होई। स्वाँसा पवन चलावै सोई॥
ये नौ द्वार काल के जाना। दसवाँ द्वारा अधर बखाना॥
द्वारा चारि गुप्त गुहराई। जानै साध संत जिन पाई॥
ऐसे चौधा भेद पुकारा। पन्द्रा द्वार सत्त के पारा॥
सोला खिरकी अगम निसानी। जा में सत साहिब की बानी॥
ता के परे द्वार नहिं देखा। जहँ इक साहिब नाम न भेसा॥
संत सैल वह अगम निसानी। बसै संत वोहि धाम अनामी॥

काया मद्धे काल बिचारो। निरंकार से पुरुष नियारो॥
वा का भेद साध कोई पावै। अगम निगम सोइ संध लखावै॥
जोगी रमक राह नहिं जाना। जोग ज्ञान मत भेद भुलाना॥
प्रानायाम जोग कोर कीन्हा। लोई कोई कवल उलट कर लीन्हा॥
कोग अष्टांग जोग जस कीन्हा। परम जोग रस रहे अधीना॥

अर्थ–प्रथम भेद सहस्त्र कमल के द्वार घर है, दूसरा द्वार अकथ्य कमल के उस पार है, तीसरा द्वारा शून्य के नीचे है और चौथा द्वारा अन्तरा्मा के बीच में है। जिस गुफा में काल बैठा है और जिसने समस्त संसार के लिए माया जाल फैला रखा है पाँचवाँ द्वार उसकी दशों दिशाओं के बाहर है संसार में यह स्पष्ट है कि वहाँ 'मन' रस लेता हुआ बैठा है।

भँवर गुफा के बीच छठाँ द्वार है–जहाँ भ्रमर कमल पर स्वच्छन्द (नियारा) बैठा रहता है। सातवाँ द्वार दसों द्वार के दाहिने है–जहाँ पाचों महाभूततत्त्व बिना बन्धन (सूत) और बिना सेना (नियंत्रण) के हैं। आठवाँ द्वार मूल के मध्य है–जहाँ मूलतत्त्व मुग्धभाव से रसास्वादन करता है। नौवाँ द्वार तालु में है और वही श्वास वायु को चला रहा है॥ इन नवों द्वारों को काल का द्वार समझो और दसवाँ काल अन्तरात्मा में है॥ चार द्वार गुप्त कहे गए हैं–जिन साधु सन्तों ने प्राप्त कर लिया है, उन्हें वही जानते हैं। इस प्रकार, चौदह द्वार पुकारे गए हैं, पन्द्रहवाँ द्वार सत्य के उस पार है।

सोलहवें द्वार की खिड़की अगम की निशानी है–जिसमें निरन्तर सत साहब (निराकार ब्रह्म) की वाणी सुनाई पड़ती है॥

इस सोलहवें द्वार के पार न कोई द्वार है और न कोई देश है वहाँ साहेब (परमात्मा) एक हैं, न उनका कोई नाम है और न कोई वेष। वह सन्तों का पर्वत है और सन्त जन उस अनाम धाम में निवास करते हैं।

काया के मध्य में काल का विचार करो और समझो कि वह पुरुष निरंकार और बिलक्षण है। इसका रहस्य कोई ही साधु प्राप्त कर सकते हैं। वही अगम तथा निगम दोनों ज्ञानरूपों का सिंधु है। उसमें रमता हुआ जोगी भी उसके मार्ग को नहीं जानता–वह तो योगमत के ज्ञान के बेदों में खोया रहता है। कोई प्राणायाम योग करता है, कोई लोग (लोइ) कमल को योगसाधना द्वारा उलट लेते हैं। कोई अष्टांग योग करते रहते हैं फिर भी वे उस परम योग रस के अधीन रहते हैं। ये सारे योगी योग कराते हैं और वह निष्ठुर कठिन काल सबके घर आता है अर्थात् सभी काल कवलित होते हैं।

॥ गुफा (1)॥

यह सब जोगी जोग कराया। कठिन काल सब घर घर खाया॥
जोगी राह रीत दरसाऊँ। भिनि भिनि जोग बिधी बिधि गाऊँ॥
जोग सब्द बिधि कहौं बखानी। बूझै जोग कीन्ह सोइ जानी॥

अर्थ–मैं अब योगियों के मार्ग एवं उनकी पद्धति का वर्णन करता हूँ। भिन्न-भिन्न रूपों द्वारा मैं उनकी विधियों के अनुसार उनका गान करता हूँ। योग शब्द विधियों का मैं वर्णन करता हूँ–जिसने योग किया है, वही उसे समझ सकेगा॥

॥ कहेरा॥

जोगी राह रमक तन तारी, करत जोग जुग चारी हो।
ज्ञान जोग मिसिरित मन मैला, चढ़ि अकास नित खेला हो॥ १॥
अब तेहि राह रीति दरसाऊँ, बिधि भिनि भिनि गति गाऊँ हो।

बस तन मन रस निरमल होई, इंद्री इस्क खुद खोई हो॥ २॥
ता पर तीन तलब पचबीसा, खड़ग ज्ञान दल पीसा हो।
उनके निकट नेक नहिं जावै, थिर होइ पवन चढ़ावै हो॥ ३॥
दीदा फूल झूल दिन राती, त्रिकुटी चढ़ि येहि भाँती हो।
बिधि बायें पिंगला गति केरी, इँगला दहिने फेरी हो॥ ४॥
चंद सूर दम दम बस आवा, सुखमनि चटक चढ़ावा हो।
बंक नाल पल पल नल खोली, अति अजपा नहिं बोली हो॥ ५॥
ओहँग तत सोहँग मत जानी, पवन सब्द सँध आनी हो।
थिर मन मेरदंड चढ़ तारी, झलक जोति उँझियारी हो॥ ६॥
तत अकास आत्म बिधिजानी, लख चर अचर बखानी हो।
अंडा तत्त द्वार दरसानी, जोग ज्ञान गति बानी हो॥ ७॥
यह सब काल खेल भरमाये, सास्तर बेद भुलाये हो।
यह सब जोगि जोग बस कीन्हा, काल राह रस पीना हो॥ ८॥
वे दयाल बिधि भेद अपारा, संत चीन्ह भये न्यारा हो।
जोग ज्ञान पंडित सुनि मानै, सास्तर पढ़त पुरानै हो॥ ९॥
जैसे नीर घड़ा जल माईं, रबि प्रतिबिंब दिखाई हो।
जब लग घड़ा अकास समाना, तब लग तत दरसाना हो॥ १०॥
फूटा घड़ा अकास नसाना, रबि सूरज बिनसाना हो।
तत भयौ नास भास भइ जोती, अंध कूप हिये होती हो॥ ११॥
अंध अकास भास नहिं पावै, भूल भटक मन आवै हो।
घट बिनसै तन देंही पावै, पुनि भव माहिं समावै हो॥ १२॥
ज्ञान जोग ब्रत संजम कीन्हा, तीनि ज्ञान गति चीन्हा हो।
अंत काल जम जाल फँसाना, बहु बिधि काल चबाना हो॥ १३॥
तुलसी जोग जुगति कहि झारी, संत अगम गति न्यारी हो।
संत राह रस अगम ठिकाना, जोगी भेद न जाना हो॥ १४॥

॥ कहेरा ॥

अर्थ—योगी रमण (रमक) राह से शरीर को मुक्त (तार) कर देता है और वह चार प्रकार के योगों को करता रहता है। ज्ञान योग में मिश्रित मन निर्मल नहीं (मैला) रहता और वह शून्याकाश में चढ़कर खेलता है। अब मैं उसकी स्थिति और पद्धति (राहरीति) बतलाऊँगा (दरसाऊँ) और उसकी भिन्न-भिन्न गतियों का गान करूँगा। शरीर मन के वश में और उसका आस्वाद (रस) निर्मल हो उठता है और इन्द्रियों की संसक्ति (इश्क) को स्वयं खा जाता है॥ १-२॥

उसके ऊपर तीनों-नशे (तम, रज एवं सत्त्व) एवं पच्चीसों (तन्मात्राओं) को यह ज्ञान की तलवार पीस डालती है। ये तीन गुण एवं पच्चीस तन्यात्राएँ उनके निकट नहीं जा पातीं और वह योगी (व्यक्ति) स्थिर चित्त से वायु को मन में चढ़ाता है॥ ३॥

चित्त [दीदा (र)] रूपी पुष्प रात-दिन तिरकुटी पर चढ़कर इस प्रकार झूलता रहता है। पिंगला की गति बाएँ एवं इंगला (इड़ा) की गति दाहिने फेर लेता है॥ ४॥

सूर्य तथा चन्द्र क्षण-क्षण वश में हो जाते हैं और सुषुम्ना (सुखमनि) तीव्रगति से चढ़ा लेते हैं। बंकनाल की नल पल-पल खुली रहती है और अजपा जाप बोलना नहीं पड़ता, स्वयं होने लगता है। पवन सिंधु में आकर तत्ऽहम् की गति सोऽहम्' की हो जाती है, तालु (तारी) मेरुदण्ड पर चढ़ जाती है, मन स्थिर हो उठता है और वह दिव्य प्रकाश झलकने लगता है॥ ५, ६॥

उस आकाश को आत्म योग विधि से समझता हूँ और वहाँ-चर-अचर दोनों तत्त्वों को देखकर उनका वर्णन करता हूँ। वह पिंड (अंडा) उस तत्त्व द्वार पर दिखाई पड़ने लगता है और वाणी, ज्ञान तथा गति तीनों योगमयी हो उठती है॥ १७॥

संसार को यह काल की क्रीड़ा भ्रमित किए हुए है और वेद शास्त्रों ने सही मार्ग भुला दिया है। योगियों ने इन सम्पूर्ण भ्रमित करने वाले तत्त्वों को योग के वश में कर लिया है और काल (मृत्यु) के मार्ग का रस पी लिया है॥ १८॥

वे दयालु ब्रह्म अनेक रूपों के हैं, संत उन्हें पहचान कर स्वयं विलक्षण हो गए हैं। योग तथा ज्ञान को पंडित (विद्वान) सुनकर स्वीकार करते हैं और वे शास्त्र तथा पुराण पढ़ते रहते हैं॥ ९॥

जैसे घड़े में जल है, और उसमें सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है—जब तक घड़े में आकाश का बिम्ब स्थित है, तब तक सूर्य बिम्ब की भाँति वह परम तत्त्व दिखाई पड़ता है॥ १०॥

घड़ा फूट गया, आकाश का बिम्ब नष्ट हो गया, सूर्य का बिम्ब भी विनष्ट हो उठा-उसी प्रकार इस मानव योनि के नष्ट हो जाने पर सब अंधकूप जैसे हो उठता है। इस अंधे आकाश में कोई प्रतिबिम्ब (भास) नहीं उठता-मन चारों ओर भूलकर भटक आता है। इस शरीर रूपी घट के विनष्ट हो जाने पर यह देह अपने देही (ईश्वर) को पा जाता है और शरीर इस संसार में खो जाता है। ज्ञान योग व्रत संयम करके तीनों गतियों उद्‌भव, स्थिति एवं संहार) पहचान लिया है। अन्तकाल में, यम के जाल में यह जीव फँस जाता है और उसे काल अनेक प्रकारों से चबाता है॥

इसीलिए तुलसी साहब ने समस्त योग युक्तियाँ बताई है और उनसे जुड़े सन्तों की गति अगम्य और न्यारी है।

सन्तों का मार्ग एवं आनन्द भिन्न है, इसे योगी भी नहीं जानते॥ १४॥

॥ सोरठा॥

जोगी राह रमक तन तारी, करत जोग जुग चारी हो।
अगम अगत गति पार, जोग ज्ञान पहुँचै नहीं॥

अर्थ—रमक के मार्ग से शरीर का उद्धार करते हैं। और वे चारों युगों में योग करते हैं। अगम्य एवं अज्ञेय (अगत) के ज्ञान के उस पार (जहाँ सन्त पहुँचते हैं) योग का ज्ञान नहीं पहुँचता॥

॥ चौपाई॥

दूजा जोग कँवल षट गाऊँ। बसै तासु पर भेद बताऊँ॥
चढ़ै चक्र षट जोगी गावै। तुलसी सब्द माहिं समझावै॥
काया माहिं कँवल का वासा। कँवल कँवल कहूँ भूमि निवासा॥

अर्थ—द्वितीय योग षट्‌दल कमल के स्थान का है। इस पर जो निवास करते है मैं उनके भेदों का वर्णन करता हूँ। इस षट्‌चक्र पर चढ़कर योगी गान करता है—और तुलसी साहब कहते हैं कि वह उस शब्दों से समझाता है। शरीर के मध्य में इस कमल का वास है—भूमि पर निवास करता हुआ योगी कमल-कमल कहता रहता है।

॥ कहेरा ॥

काया कलस कंवल बिधि भाखी, परख लखी हिये आँखी हो।
भिनि भिनि जोग कँवल बिधि गाई, खुल षट भेद बताई हो॥ १॥
गुदा कर कँवल कहों दल चारी, गनपति बास बिचारी हो।
छै पखड़ी दल कँवल कहाई, बसै ब्रह्मा तेहि ठाँई हो॥ २॥
अष्ट कँवल दल नाम बसेरा, बसै बिस्नु तेहि तीरा हो।
दल बारा बिधि सिधि हिये माहीं, सिव कैलास कहाई हो॥ ३॥
सोला कंठ कँवल बिधि जानी, जगदंबा जग रानी हो।
सहस कँवल दल दीद निरंजन, घाट रोकि गल गंजन हो॥ ४॥
ये सब काल जोग रस माया, सिध जोगी सब खाया हो।
मुद्रा पाँच अवस्था चारी, तीनि ज्ञान गति धारी हो॥ ५॥
जोगी काल कलेवर कीन्हा, तप संजम ब्रत धारी हो।
कष्ट भोग फल काया पाया, चारि खानि गति चारी हो॥ ६॥
कँवल जोग जोगी गति गाया, भर्म भोगि भौ आया हो।
अब कहों संत भेद विधि सारी, जोग कँवल से न्यारी हो॥ ७॥
नौलख कँवल पार दल होई, परे चारि दल सोई हो।
ता के परे अगमगढ़ घाटी, नीर तीर गहि बाटी हो॥ ८॥
ता के परे परम गुरु स्वामी, जीव अधर घर धामी हो।
ता के परे परम पद माहीं, साहिब सिंध कहाई हो॥ ९॥
ता के परे संत घर न्यारा, अगम अगाध अपारा हो।
तुलसी सैल सुरति से कीन्हा, अगम राह रस पीना हो॥ १०॥

अर्थ—काया में कमल की स्थिति कलश की भाँति बताया है और उसको देते हृदय की आखें उससे जुड़ जाती हैं। योग सिद्धान्त के अन्तर्गत इस कमल विधि का भिन्न-भिन्न वर्णन किया गया है और षद्चक्र के द्वारों के खुलने की बात कही गई है॥ १॥

गुदा के कमल का वर्णन करता हूँ, वहाँ चार दल हैं और वहाँ गणपति (गणेश) का निवास विचारा गया है। दूसरे चक्र या केन्द्र पर छः पंखुरियों का कमल है,उस स्थान पर ब्रह्मा निवास करते हैं। २॥

तीसरे चक्र पर अष्ट पंखुरी का कमल है और उसने समीप विष्णु निवास करते हैं। हृदय चक्र पर बारह पंखरियों का कमल है, इसे कैलास कहा जाता है और यहाँ शिव निवास करते है॥ ३॥

कंठ चक्र पर सोलह पंखुरियों वाला कमल है, और जहाँ सृष्टिकी रानी जगदम्बा निवास करती हैं।

षट् चक्र सहस्त्रदल का कमल है, यहाँ निरंजन का साम्राज्य है—और आगे के घाटों को रोकर रास्ते को दुर्गम (गंजन) बना देते हैं॥ ४॥

ये समस्त गति द्वितीय काल योग की हैं—यहाँ माया से उत्पन्न योग रस को सिद्ध योगी खाते हैं, (सेवन करते हैं)। पाँच मुद्राएँ हैं, चार अवस्थाएँ है तथा तीन ज्ञान की गतियों से वे सम्पन्न हैं। काया के कष्ट भोग का फल प्राप्त किया है और तप, व्रत, संयम भी ये योगी करते हैं। इस कमल योग की गति

का ज्ञान योगियों ने किया है किन्तु भ्रमित होकर ये पुनः इसी भोग वासना से संसक्त संसार में आए हैं॥ अब मैं इन योगियों से भिन्न सन्तों की विलक्षण गतियों का वर्णन करता हूँ, जो इस कमल योगसिद्धि से भिन्न प्रकार की है॥ ५, ६-७॥

सहस्त्रार कमल के उस पर नौ लाख पंखुरियों वाला कमल है–उसके आगे चार दल का कमल है। उसके आगे अगमगढ़ की पार घाटी हैं और उसका जल तटों के हिसाब (श्रम से) बंटा है। उसके आगे, परमगुरु स्वामी (अगम्य ब्रह्म) और वह जीव की अन्तरात्मा का ही निवासी है। उसके आगे परम पद है जहाँ स्वामी का अगाध समुद्र है। उसके आगे सन्तों का विलक्षण निवास गृह जो अगम्य, अगाध एवं अपार वर्तमान कहा गया है। तुलसी साहब कहते हैं कि सन्त जन उस अगम पर्वत में सुरति समाधि करते हुए अगाध रस का पान करते हैं (योगियों की भाँति पुनः भवसागर में नहीं आते)। ४ से १० ॥

॥ सोरठा ॥

जोगी जुगति विचार, संत भेद न्यारा कहै।
करि करि जोग बयान, काल खानि भौ रस रहै॥

अर्थ–योग तथा आत्मज्ञान के अतिरिक्त ये योगी और कुछ नहीं जानते। योग का वर्णन बार-बार करते हुए काल की खानि इस सांसारिक भौतिक आनन्द में डूबे रहते हैं॥

॥ चौपाई ॥

जोग निरंजन कीन्ह पसारा। यह सब काल जाल भ्रम डारा॥
कँवल सहस्त्र समाधि लगावै। मन सोइ काल निरंजन पावै॥ १॥
अंड खंड ब्रह्मंड पसारा। ये सब जानौ मन की लारा॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस कहाये। ये सब मन मत गति उपजाये॥ २॥
मन सोइ निरंकाल है भाई। ता कर बास अकास के ठाईं॥
वा का सुनौ बास बिधि मूला। अगिनि अकास कँवल जहँ फूला॥ ३॥
तुलसी ता की बिधी बताऊँ। सब्द राह रस भेद सुनाऊँ॥ ४॥

अर्थ—योग ने निरंजन के चिन्तनका प्रसार किया और इन सबने काल जाल के भ्रम में सभी को डाल दिया। सहस्त्रार दल कमल में ये योगी समाधि लगाते है और उनका मन उसी कमल में निरंजन को प्राप्त करते हैं।

पिंड के खंड-खंड में ब्रह्मांड फैला है–इन्हें सब मन की तृष्णा समझो। ब्रह्मा, विष्णु, महेश जो भी कहे जाते हैं–ये सब मन के ही ज्ञान से उत्पन्न किये गये हैं।

वह मन ही काल की पहुँच के बाहर है, उसका निवास आकाश-स्थल में है। उसके निवास एवं विधि के तत्त्व को सुनो। पिंड में जहाँ एक अग्नि आकाश कमल खिला हुआ है। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं उसकी समझ की विधि का वर्णन करता हूँ और उसके शब्द, मार्ग, रस के भेदों को सुना रहा हूँ॥

॥ कहेरा ॥

अगिनि अकास जरत जल जाना, ता बिच कँवल फुलाना हो।
डंडी कँवल फूल नभ नारी, रज ब्रह्मा बिस्तारी हो॥ १॥
नाल वोही तुम संकर तारी, बिस्नु बिपति जग झारी हो।
मिलि तीनौ मन मरम न जाना, कीन्हे वेद पुराना हो॥ २॥

निरंकाल काल अस फाँदा, जीव जोति जग बाँधा हो।
आदि अनादि पंथ नहिं जानी, करि कुपंथ ठग ठानी हो॥ ३॥
तीरथ बरत नेम बिधि पाला, आस खानि फल डाला हो।
नर तन भटक भटक भटभेरा, बाँधा न भौजल बेड़ा हो॥ ४॥
तन सराय छूटत छिन माहीं, सेमरि सुवा पछिताई हो।
तुलसीदास चेत नर अंधा, परखि लखौ दुखदंदा हो॥ ५॥

अर्थ–जहाँ अग्नि तथा आकाश जल रहे हैं, उसके बीच एक कमल खिला हुआ है। दण्डी के ऊपर कमल है, कमल पुष्प आकाश की नाड़ी है और उस पर 'रज' का विस्तार ब्रह्मा ने किया है॥ १॥

उसी नाल ने शंकर का उद्धार किया है, संसार में विष्णु की विपत्ति को दूर किया है। तीनों ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों में मिलकर भी उस मर्म को नहीं समझा और वेद-पुराणों की रचना करते रहे॥ २॥

काल का पाश निरंकाल है (जिसका अनुमान सम्भव नहीं है) और यह जीव परमात्मा की ज्योति में बँधा है। इन्होंने आदि-अनादि के ज्ञान मार्ग को नहीं जाना और कुपंथ तैयार करके जन समुदाय को ठगने का निश्चय किया है॥ ३॥

तीर्थ, व्रत, नियम आदि विधियों को निर्दिष्ट किया तथा आशा की खानि का फल सबके सामने डाल दिया। इन्होंने इस संसार के भौजल से मुक्ति की नौका न तैयार करके मनुष्य जाति के भटकने का भटभेरा (सूखी लकड़ियों को बाँधकर अस्थिर नावें) बना दी॥ ४॥

तन रूपी यह विश्रामालय (सराय) क्षण में ही छूट जाता है, और सेमर फूल पर क्षुधित होते के प्रहार से शुकगण जैसे निरन्तर पछताते रहते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि हे अंधे मनुष्य समझो-संसार के दुःख द्वन्द्वों को परखकर मानव समाज के लिए मार्ग निर्धारित करो॥ ५॥

॥ चौपाई॥

ये सब मन का भेद बताया। मन रचि कीन्हा खेल बनाया॥
धरती गगन चंद और सूरा। निरंकाल रच मन मत मूरा॥
सोइ मन अस बस विष रस माईं। भूला भरम खानि गति जाई॥

अर्थ–मैंने ये सारे मन के भेद बताएँ और मन ही का सारा रचा तथा बनाया हुआ खेल है। पृथ्वी, आकाश, चन्द्रमा एवं सूर्य यह कालरहित मन की ही मूल रचना है। हे सखी! यही मन इस वासना रूप विषय रस में ग्रस जाता है। यह भ्रमवश अपनी मूलगति को भूल जाता है।

॥ सोरठा॥

तुलसी तरक बिचार, सार पार गति ना लखै।
यह मन बिषम बिकार, ता की गति मति सब कही॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि अनेक तर्क तथा विचारों से सिद्ध है कि इस मन की गति का पार नहीं दिखाई पड़ता, यह मन ही समस्त विषम (कष्टदायी) विकारों का कारण है, उसके ज्ञान का वर्णन मैंने अपनी मति के अनुसार पूरी तरह से किया है।

॥ छन्द॥

तुलसी मति न्यारी कहत बिचारी। जगत भिखारी जाल मई।
सुर नर मुनि नाचे कोइ न बाचे। आदि अंत सब छार छई॥ १॥

संतन सोइ जाने सुरति समाने। जिन वा घर की राह लई।
मैं उनका चेरा किया निबेरा। सुरति सैल अज अधर गई॥ २॥
मन की गति पाई सुरति छुड़ाई। रामायन घट माहिं कही।
ले लेख अलेखा सब बिधि देखा। संत चरन सत सार सही॥ ३॥
चीन्हा वह द्वारा सुरति सम्हारा। नैन निहारा पार गई।
तुलसी बिधि गाई सबै सुनाई। संत सहाई राह दई॥ ४॥
कुंजी अरु तारा खोल किवारा। निरखि निहारा सूर भई।
जाना सत नामा अगम ठिकाना। लखि असमाना तिमर गई॥ ५॥
तुलसी रस ज्ञाना माहिं बखाना। धसि असमाना अगम लई।

अर्थ—इस मन की मति, तुलसी साहब कहते हैं, कि बड़ी विलक्षण है और मैं इसे विचारपूर्वक कहता हूँ कि सम्पूर्ण संसार भिखारी की जाल बन गया है। देवता, मुनि, मनुष्य इस मन के वश में होकर नृत्य करते रहते हैं, इससे कोई बचा नहीं है और इसी मन के वशीभूत होने से मनुष्य का आदि अन्त सब जलकर राख जैसा हो उठा है॥ १॥

संत जन इस रहस्य को समझकर अपने मन को सुरति ध्यान (ज्ञान) में समाविष्ट कर लेते हैं और वे उस घर (परमात्मा) की राह पकड़ लेते हैं। मैं तो उन सबका चेला हूँ। इन सबका निपटारा किया है—और मेरा मन तो सुरति पर्वत पर स्थित अन्तरात्मा में समा गया है।। २॥

मैंने तो मन का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और उसे सुरति ज्ञान की मायासक्ति से छुड़ा लिया घट में स्थित रामायण का गान किया है। उस अलेख लेख को लेकर उसे प्रत्येक प्रकार से देखा और यही निष्कर्ष निकाला कि सन्तों का चरण ही सबका सार तत्त्व है॥ ३॥

मैं सुरति सम्हालकर, वह द्वार पहचाना और अन्तर्नेत्रों से देखकर उस पार चला गया। तुलसी साहब सभी को सुनाकर उसे विधिपूर्वक गाकर कहते हैं कि सन्तों ने ही रक्षक (सहाई) होकर मार्ग दिया॥ ८॥

कुंजी द्वारा ताला खोला, किवाड़ खोले, उस तत्त्व को निरखकर देखा और सिद्ध (सूर) हो उठा। उस 'सत्यनाम' को समझा, उसके अगम्य ठिकाने को जाना, शून्याकाश को देखा और समस्त अंधकार दूर हो गया॥ ५॥

तुलसी साहब कहते हैं कि उस रस का अनुभव मैंने ज्ञान के बीच किया है और शून्याकाश में प्रविष्ट होकर मैंने अगम्य (ब्रह्म) प्राप्त कर लिया॥ ६॥

॥ सोरठा॥

यह बिधि निरमल ज्ञान, सत मत सुरति लखाइया।
जब पाया वह ठाम, आदि अंत सोइ सुधि भई॥
कीन्हा ग्रंथ बनाइ, पाइ गाइ गति अस कही।
भई गुरन पद पार, सार पदम पद लखि रही॥

अर्थ—इस प्रकार सत्य मत के अन्तर्गत सुरति द्वारा निर्मल ज्ञान दिखाया और मुझे जब वह स्थान प्राप्त हो उठा तो मेरे आदि और अन्त की सुधि उस परमात्मा ने ली॥

मैंने ग्रन्थ रचकर उस गति को पाकर और उसे गाकर इस प्रकार कहा है। गुरु की कृपा से उस पद को पार कर लिया। उस पद कमल के सार तत्त्व को देखकर मैंने इसे प्रकार बताया है॥

॥ चौपाई ॥

आगे अगम लोक गति गाऊँ। सत्त नाम सत धाम लखाऊँ॥
जब नहिं निराकार और जोती। आदि अंत कछहू नहिं होती॥
जब दयाल सत साहिब दाता। जब की सुनौ सकल बिख्याता॥
मैं अजान कछु मरम न जानों। संत कृपा सत साखि बखानों॥
सतगुरु संध संत दरसाई। उन रज कही महूँ पुनि गाई॥
मैं बुधिहीन अचीन्ह अनारी। कीन्ही कृपा सुरति मतवारी॥

अर्थ–आगे मैं अगम्य लोक में चल रहा हूँ और 'सत्यनाम' से ढंका सत्यधाम को दिखाऊँगा (वर्णन करूँगा)। जब न निरंकार ब्रह्म था, न ज्योति थी, और कहीं भी 'आदि-अन्त' का क्रम नहीं व्यवस्थित हुआ था॥

तब दयालु, स्वामी एवं सबका दाता ब्रह्म ही था और उस समय की सारी प्रसिद्ध बातें सुनो। मैं अज्ञानी कोई रहस्य नहीं जानता था–संत की कृपा है, यह मैं सत्य की साक्षी देकर कहता हूँ।

सतगुरु के समुद्र को सन्तों ने ही दिखाया, उनके चरणरजों ने बताया और उसी की कृपा से मैंने भी कुछ गाया मैं बुद्धिहीन, अपरिचित तथा अनाड़ी मुझपर गुरुओं ने ही मतवाली सुरति भरी कृपा की है॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी मनहिं बिचारि, संत अंत गति लखि परी।
भाख्यों सरनि सिहार, सार पार जस जस भई॥
सत्त लोक सत नाम, और अनाम आगे कही।
सबहि संत ब्रत मान, मैं निकाम सरनै लई॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मन में विचार करके देखो, सन्त की भी अन्तगति दिखाई पड़ी है–उस परम तत्त्व के पार जैसे-जैसे होने लगा–मैंने उस परमात्मा की शरण में समर्पित होकर वर्णन किया॥

सत्य लोक का सत्य नाम है और जो कुछ भी अनाम है, उसे अब आगे कह रहा हूँ, सभी सन्तों के व्रत को स्वीकार करता हुआ, मैं निष्काम उसकी शरण में समर्पित हुआ॥

॥ चौपाई ॥

अब कहूँ आदि अगाध अनामी। ताकी गति मति संत बखानी॥
जो कुछ सत्त सीत उन केरी। महूँ पाइ मति निरखि निबेरी॥
तुलसी जब जोइ जस जस भाखा। आदौ बिरछ पेड़ पर साखा॥
पिरथम पुरुष अनाम अकाया। जास हिलोर भई सत माया॥
माया नाम भया इक ठौरा। सत मत नाम बँधा इक डोरा॥
सत्त लोक सत साहिब साँईं। सत्त मिले सत नाम कहाई॥
चौथा पद संतन सोइ भाखा। सो सत नाम कीन्ह अभिलाखा॥
सत्तनाम से निरगुन आया। ता को बेद ब्रह्म बतलाया॥
ता की अब मैं कहों लखाई। त्रिकुटी रावन ब्रह्म कहाई॥
माया कुमति ब्रह्म इक ठौरा। भया राम मन चहुँ दिखि दौरा॥

पाँचौ इंद्री प्रकृति पचीसा। तीनि गुनन मिलि सरगुन ईसा॥
इन्द्री पिता भरत है भाई। गुन तन कुमति संग मन माहीं॥
इच्छ सँग रँग मन मति भूला। खस परा बंद भया अस्थूला॥
ता को सब जग राम बखाना। ईस कर्म मन भर्म भुलाना॥
निराकार मन भया अकारा। ज्योति मिली गुन तीनि पसारा॥
ब्रह्मा बिस्नु भये महादेवा। इनकी उतपति मन मत भेवा॥
सास्तर बेद संस्कृत बानी। ये सब मन मत गति उतपानी॥
दस औतार जगत जग माया। यह मन और अनेक उपाया॥
ऋषी मुनी जोगीसुर ज्ञानी। मन करता कर सब मिलि मानी॥
तीरथ बरत बेद ब्यौहारा। जग भूला मन जाल पसारा॥
जो से नाम भेद नहिं जानै। मनहिं राम को नाम बखानै॥
नाम गती है अगम अपारा। ब्रह्म राम दोउ पावैं न पारा॥
निरगुन ब्रह्म राम मन होई। नाम अगम गत अगत अघोई॥
ता का पटतर मन पर लावै। ता से नाम भेद नहिं पावै॥

अर्थ–अब मैं उस आदि अगाध एवं अनाम तत्त्व रूप ब्रह्म के ज्ञान का वर्णन संत मत के अनुसार करता हूँ। जो कुछ सत्य है, वह उनका प्रभाव (सीत) है हमने भी उनका अलभ्य ज्ञान प्राप्त करके, उन्हें देख करके (अनुभव करके) निराकरण (निबेरी) किया है।

तुलसी साहब कहते हैं कि जब जिसे जैसा वह समझ में आया उसने वैसा-वैसा वर्णन किया है–आदि में उसे वृक्ष, पेड़, पत्ता, शाखाओं जैसा बताया है। वह प्रथम पुरुष (ब्रह्म) अनाम और अशरीर है, जिसकी लहरों से सतमाया निर्मित हुई है॥

माया नाम से वह एक भावना में स्थित हुई और सत्यमत नाम भी एक डोरे में बँध गया। सत्यलोक, स्वामी सत् साहब स्वामी सत से मिलने पर सतनाम से पुकारा जाने लगा॥

उसी को सन्तों ने चौथा पद (मुक्ति) के नाम से पुकारा है, वही सतनाम है, उसी की अभिलाषा की जाती है। इस सतनाम से निर्गुण की उत्पत्ति हुई है–उसको वेद ने ब्रह्म बताया है॥

अब मैं उसका दृश्य वर्णन करता हूँ। त्रिकुटी रावण और ब्रह्म दोनों कही जाती है। यहाँ माया कुमति है, ब्रह्म एक स्थान पर स्थित है–और यहीं राम रूपी मन का चारों दिशाओं में भ्रमण होता है॥

पाँच इन्द्रियाँ हैं, और उनकी पच्चीस प्रकृतियाँ हैं और उनमें तीन गुणों को मिलाकर सगुण ब्रह्म की कल्पना की गई। इन्द्रियाँ पिता है, भरत भाई है। गुण और कुमति दोनों शरीर में साथ-साथ हैं॥

इच्छा की संगवासना से मन मति के साथ वास्तविकता को भूल गया। जैसे, खस के टटरे पर बूँद फैलकर स्थूल हो उठती है। उसी को सभी 'राम' कहकर बखानते हैं। यह मन भ्रम वश ब्रह्म के धर्म (कर्म) को भूल जाता है॥

सगुण के रूप में निराकर मन साकार हो उठता है–वह ज्योति तत्त्व (ब्रह्म) इन तीनों गुणों(रज, सत्त्व, तम) में फैलकर मिल जाता है, तब उनसे ब्रह्म, विष्णु एवं शिव बनते हैं, उनकी उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के मन में मतभेद है॥

शास्त्र वेद तथा संस्कृत भाषा में सब मन एवं मतों की गतियों से उत्पन्न हैं। ब्रह्म के दसों अवतार संसार एवं सृष्टि में मायावत् है यह मन पृथक् है और ये सभी इसके उपाय हैं॥

ऋषि, मुनि, योगेश्वर एवं ज्ञानी, सबने मिलकर कर्त्तारूप मन को स्वीकार किया है, तीर्थ, व्रत, देव व्यवहार–इन सबका जाल मन ने फैला दिया और उसी में संसार भूल गया॥

जिससे नाम भेद समझ में न आए, और मन निरन्तर राम का बखान ही करता रहे–यही नाम उस अगम-अपार ब्रह्म की गति है और ब्रह्म तथा राम दोनों उसको पाने में असमर्थ हैं॥

निर्गुण ब्रह्म के मन राम है, और वह नाम अगम्य एवं गत एवं अगत (ज्ञात तथा अज्ञात) एवं सम्पूर्ण (अघोई) है। उस ब्रह्म के समानान्तर इस ब्रह्म को लाने की चेष्टा में लोग रत है। अतः वे इसके कारण नाम का रहस्य नहीं समझ पाते ॥

॥ दोहा ॥

यहिं विधि आदि अनादि, लखा भेद भिनि भिनि कहयौ।
सुत निः नाम अधार, जाना जिन अन्दर कहयौ॥

अर्थ–इस प्रकार, वह आदि एवं अनादि ब्रह्म है, मैंने उसके भेदों को देखकर भिन्न-भिन्न रूपों में बताया है। वह केवल शब्दों से सुना जाता है, निष्काम है तथा सृष्टि का आधार है। उसको वही जानता है, जिन्होंने अन्तरात्मा को बताया है, या समझा है॥

॥ छन्द ॥

है निः नामी अकथ अनामी। दस दिसि लसि सर सैल कही।
भाखा सतनामा ब्रह्म अकामा। माया मिलि मन जार लई॥ १॥
काया अस्थूला मन सहै सूला। इंद्री बस भौं खानि मई।
काया गति धारी कर्म बिचारी। भूल भटक भौ भार सही॥ २॥

अर्थ–वह निष्काम है, अकथ है, अनाम है, दसों दिशाओं में सरोवर तथा पर्वत आदि पर उसे शोभित बताया जाता है। मैंने उस निष्काम ब्रह्म को 'सत्यनाम' के रूप में बताया है, माया में मिलकर वह मन रूपी जाल को भ्रमित कर देता है॥ १॥

स्थूल शरीर में मन नाना प्रकार के कष्टों को सहता है, और वह भव की खानि इन्द्रिय के वश में होकर शरीर से संचालित कर्म जगत के साथ निर्वाह करने लगता है और इस प्रकार यह (मन) भूलता भटकता हुआ भवसागर का भार सहता रहता है॥ २॥

॥ सोरठा ॥

काया रचन बिचार, जाही से ये जग भया।
सो बिधि कहौं सँवार, बूझै जो जिन घट लखा॥

अर्थ–शरीर की रचना का सत्य यही है कि इसी से यह सृष्टि हुई है। इसका वर्णन मैंने इस विधि से सँवार कर कहा है–इसे वही बूझेगा, जिसने इस घट का मर्म समझा है।

॥ चौपाई ॥

उतपति जोनि खानि मन दीन्हा। गर्भ भीतर बालक को चीन्हा॥
उतपति कारज बीरज डीठा। यह मन बात लागि मद मीठा॥
यह कर लेखा कहों बनाई। तब जग हिरदे सत्त समाई॥
सुनौ गर्भ की बात बिचारा। मात पिता रज बीर्ज सँवारा॥
उलटा उरधमुखी दुख पावै। तन भीतर काको गोहरावै॥

भया बिकल मुख नरक समाना। जठर अगिन तन तपन जराना॥
आजिज भया बिकल बहु भारी। अति दुख में रहा बिकल दुखारी॥
तब साहिब से अरज पुकारी। बदौंछोर मोहिं लेव उबारी॥
निस दिन बँदगी करों तुम्हारी। अब मोहिं काढ़ौ महा दुखारी॥
अब तोहिं नेक न बिसरौ साँई। बार बार सुमिरौं चित लाई॥
दीन दुखी से मन नहिं लाऊँ। आठ पहर तुम्हरा गुन गाऊँ॥

अर्थ–उत्पत्ति की ही दशा में नारी योनि के भीतर ही उस ब्रह्म ने उसे मन दे दिया और इस मन ने गर्भ के भीतर ही शिशु को पहचान लिया। उत्पत्ति का कारण वीर्य है–यह बात मन को भली अवश्य लगती है॥

इसका वर्णन मैं बनाकर (व्यवस्थित करके) इस प्रकार कहता हूँ–और तभी (मेरी बात सुनने के बाद ही) हृदय में सत्य का समावेश होगा अर्थात् बात समझ में आ पाएगी॥

गर्भ की बात को विचार करते हुए सुनो–वह माता-पिता के 'रज -वीर्य' के संभोग का फल है किन्तु शिशु गर्भ में ऊर्ध्वमुखी उल्टा रहकर दु:खों को भोगता है–और वह कष्ट मुक्ति के लिए माँ के उदर में किसे बुलावे? वह वहाँ नितान्त व्याकुल एवं नरक सदृश जीवन यापन करता है। वह वहाँ जठराग्नि से उसकी शरीर की आग की तपन से तप्त रही है॥

अत्यधिक व्याकुल एवं आजीज होकर अत्यन्त पीड़ा में वह व्याकुल उस साहब (ब्रह्म) को आर्त्त होकर पुकारता है कि इस जटिल बन्धन से मुक्त करने वाले प्रभु! (बन्दिछोर) मुझे उबार लें।. मैं रात-दिन तुम्हारी बन्दगी करता रहूँगा और अब उस महादुखारी को शीघ्र मुक्त कर दें॥ हे स्वामी! अब एक क्षण के लिए आपको नहीं भूलूँगा और बार-बार चित्त लगाकर आपका स्मरण करूँगा। अब अपनी दीनता से तथा अपने दु:ख में मन न लगाकर, आठों प्रहर आपका ही गुणगान करता रहूँगा॥

॥ सोरठा ॥

इतना किया करार, जब गर्भ में बाहिर भया।
भूला सिरजनहार, तुलसी भौ जग जाल में॥

अर्थ–तुलसीसाहब कहते हैं कि जब वह गर्भ से बाहर आता है, तब उसने जितनी प्रतिज्ञा कर रखी भवजाल में फँसकर उस बनाने वाले प्रभु को वह भूल गया॥

॥ चौपाई ॥

अब बाहिर का लागा रंगा। माता मोह पिता के संगा॥
लरिकाई लट पट जग खेला। तोतरि बात मात सँग बोला॥
भाई बंद सकल परिवारा। ठुमठुम पाँव चलै तेहि लारा॥
लरिकाई ऐसी विधि खोई। तरुन भये तरुनी सँग मोही॥
मन की मौज करै रस रंगा। भूला ज्ञान भया चित भंगा॥
अब साहिब की याद बिसारी। माया मोह बँधा संसारी॥
मद में मस्त कछू नहिं सूझै। साध संत को कछु न बूझै॥
खान पान निस दिन मद माता। कामिन संग रहै रँगराता॥
जिन यह घट का साज बनाया। ताहि बिसारि जगत मन लाया॥

यह जग झूँठ सराय बसेरा। भोर गये उठि सूना डेरा॥
ऐसे या जग का ब्योहारा। जनम जुवा जस बाजी हारा॥
नेक न साहिब से मन लाया। बिरध भया तब अति दुख पाया॥
ऐसे सकल जनम गयो बीती। नेक न जानी साहिब रीती॥
अंत समय जम आनि सतावा। मुसकिल कष्ट महा दुख पावा॥
मार परै जब कौन बचावै। कठिन काल बिकराल सतावै॥

अर्थ–अब उसे बाहर का प्रभाव लगा और वह पिता के साथ मोह में पागल (माता) रो उठा। बाल्यावस्था में वह लटपटाता हुआ संसार में खेला तथा अपनी तोतली बातों में माता से बोलता रहा।

भाई, वंधु एवं समस्त परिवार के बीच वह ठुमक-ठुमक चला तथा सभी ने उसे प्यार किया। बाल्यावस्था को उसने इस प्रकार नष्ट कर दिया। और युवक होने पर तरुणियों के साथ मुग्ध हो उठा।

इस युवावस्था में मन की मौज में आनन्द की गंगा में बहता रहा, आत्मबोध नष्ट हो उठा और चित्त माया में लिप्त होने के कारण भूल ज्ञान से टूट गया। वह अब परमात्मा का याद भूल गया तथा माया के मोह में बँध कर संसारी हो उठा।

वह अपने अहम् भाव में मस्त था तथा उसे कुछ सुझाई नहीं पड़ता था। साधुओं तथा सन्तों को वह कुछ नहीं समझता था। रात-दिन वह खान पान के मद में मस्त रहता था और कामिनियों के साथ नाना प्रकार की विलास क्रीड़ाओं में मस्त रहता था।

जिसने इस शरीर की रचना करके सुन्दर स्वरूप प्रदान किया है तुन्हें भूलकर वह सांसारिक प्रपंचों में मन लगा लिया। वह संसार असत्य है सराय के बसेरे की तरह (आज है, कल नहीं), सवेरा होने पर समस्त डेरा सूना हो उठता है।

इस संसार का मिथ्यात्मक व्यवहार ऐसा ही है, जन्म रूपी जुआ में बाजी हारने जैसा, यहाँ का सारा कार्य है। अपने स्वामी ईश्वर से नेक काम भी मन नहीं लगाया और जब वृद्ध हुआ तो अत्यधिक दुःख प्राप्त हुआ।

अन्तिम समय में जब यातनाएँ मिलने लगेंगी तो कौन बचा सकता है और उस समय तो विकराल (भयंकर) कष्ट के कारण अत्यन्त दुःख प्राप्त किया॥

जब मनुष्य के ऊपर समय की मार पड़ने लगती है तो उसे कौन बचा सकता है। उस समय भंयकर काल विकराल रूप में कष्ट देता है।

॥ दोहा ॥

ऐसा नर तन पाइ के बादइ जनम गँवाई।
सो अस अंधा जग भया परै नरक में जाइ॥

अर्थ–इस प्रकार का श्रेष्ठ मनुष्य शरीर प्राप्त करके व्यक्ति व्यर्थ ही अपना जीवन नष्ट करता है। इसी के फलस्वरूप वह संसार अंधा हो उठा फलस्वरूप बाद में जाकर नरक में जा पड़ता है॥

॥ छन्द ॥

ऐसा जग भूला सहै जम सूला। धर्मराय तन त्रास दई॥
निज नाम न जाना बहु पछिताना। जिन नित काल को मार सही॥
ता से नर चेतौ छांड़ि अचेतौ। नर तन गति ये जाति बही॥
तुलसी कही साची कोउ न बाची। बिन सतसंगति पार नहीं॥

अर्थ–इस परमात्मा को संसार इस प्रकार भूलकर यम के द्वारा दिये हुए कष्टों को सहता रहता है। धर्मराज (यम) उसे नाना प्रकार के संकट देते रहते हैं॥

वह अपना नाम भी नहीं जानता और बराबर पछताता रहता है और वह प्रतिदिन काल की मार सहता रहता है।

हे मनुष्यों! इससे तो अब होश में आओ (अज्ञान को छोड़ो), मानव शरीर की यह दुर्गति होती है, जबकि वही जाति है (जो ऋषि आदि की है)। तुलसी साहब सत्य कहते हैं। यम की यातना से कोई नहीं बच पाता। अतः समझो कि बिना सत्संगति के इस भवसागर से उद्धार सम्भव नहीं है॥

॥ सोरठा ॥

काया रचन विचार, जाही से ये जग भया।
सो विधि कहौ सँवार, बूझै जो जिन घट लखा॥

अर्थ–इस शरीर रचना पर तो जरा विचार करो, इसी से यह संसार उत्पन्न हुआ है, मैं अत्यन्त सँवार-सजाकर विधिपूर्वक उसका वर्णन करूँगा जिससे कि वह जिसने पिंड के भीतर परमात्मा का अनुभव किया है, वह भलीभाँति उसे समझे॥

॥ चौपाई ॥

निः नामी निः अच्छर भाखौं। अब निज सुरति नाम से राखौं॥
ता से जीव होइ निरवारा। भवसागर से उतरै पारा॥
संत कृपा सत संगति होई। सतगुरु मिलि होइ नाम सनेही॥
अब मैं कहों आदि गति न्यारी। घट देखै सो लेइ बिचारी॥
सब गति भिन्न-भिन्न कहों भाखा। जानै जीव मिटै अभिलाखा॥
पिंड माहिं ब्रह्मंड बताऊँ। भिन्न भिन्न ता को दरसाऊँ॥
जो बाहिर सोइ पिंड दिखाई। देखा जाइ पिंड के माहीं॥
तुलसी ताहि पाइ धसि देखा। घट भीतर भिनि भिन्न बिबेका॥
जस जस संत कहा घट लेखा। तस तस तुलसी नैनन देखा॥
अब मैं या की कहों लखाई। जो घट भीतर दीन्ह दिखाई॥
तुलसि निकाम संत कर बंदा। जित जित जोओं जग सब अंधा॥
कोइ न मानै बात सत मेरी। फिरि फिरि कर्म बँधै भौ बेरी॥
भिन्न भिन्न संतन गोहरावा। काहू हिरदे चेत न आवा॥
घट में सुरति सैल जस कीन्हा। कागभसुण्ड भाखि तस दीन्हा॥
कागभसुण्ड कितहुँ नहिं भयेऊ। तुलसी सुरति सैल तन कहेऊ॥
कागभसुण्ड काया के माहीं। राम रमा मुख पैठा जाई॥
तुलसी ता की गति मति जानी। रामायन में कीन्ह बखानी॥
यह सब घट में भाखि सुनाई। अंधे जिव अंतै लै जाई॥
भरत चत्रगुन लछिमन भाई। यह घट माहिं कहेउ समझाई॥
सुमिंतरा केकई कौसिल्या। ये तन भीतर घट में मिलिया॥

सीता दसरथ राम कहाये। ये सब घट भीतर दरसाये॥
सरजू सुरति अवध दस द्वारा। ये घट भीतर देखि निहारा॥
रावन कुम्भ लंकपति राई। त्रिकुटी ब्रह्म बसे तेहि माहीं॥
रावन ब्रह्म कहा हम जोई। त्रिकुटी लंक ब्रह्म है सोई॥
मन्दोदरी भभीषन भाई। इन्द्रजीत सुत त्रिकुटी माहीं॥
ये संबाद कहा घट माहीं। रामायन घट माहिं बनाई॥
जो कोइ अंध जीव नहिं मानै। पुनि पुनि परै नरक की खानै॥
संतन की गति कोइ न जानै। पिंड माहिं ब्रह्मंड बखानै॥
उनकी गति मति कोइ कोइ जानै। बिन सतसंग नहीं पहिचानै॥
उनकी कृपा दृष्टि जब होइ। तब अदृष्ट को बूझै सोई॥
पिंड ब्रह्मंड सैल कोइ पावै। तब सतगुरु सत दया लखावै॥
अब ब्रह्माण्ड की कहों लखाई। कोइ कोइ साधू बिरले पाई॥
जो कोइ भये अधर में लीना। जिन को आया संत अकीना॥
जिन जिन सुरति सैल घट कीन्हा। ता की गति मति बिरलै चीन्हा॥
अब मैं अपनी कहौं दृढ़ाई। सुरति सैल घट माहिं लखाई॥
रावन राम सकल परिवारा। ये घट भीतर चुनि चुनि मारा॥
और अनेक कहे बहु भाँती। ये सब माया की उतपाती॥
ये मत सत्त सत्त जिन माना। उनका आवागवन नसाना॥
या में कोई भर्म जो लावै। बार-बार चौरासी पावै॥
मैं अपने अस देख बखानी। संत कृपा से महुँ पुनि जानी॥
अब ब्रह्मंड पिंड कर लेखा। भाखा जोइ निज नैनन देखा॥

अर्थ–अब मैं उस निष्कामी तथा अक्षर शून्य परम तत्त्व का वर्णन करता हूँ।अपनी सुरति ज्ञान से जुड़े नाम का वर्णन करता हूँ। जिसको समझने या साधना करने से जीव माया से मुक्त हो कर इस भवसागर से पार हो उठता है॥

संतों की कृपा से सत्संगति होती है और वह सतगुरु से मिलकर 'राम' नाम का स्नेही हो उठता है। अब मैं उस आदि ब्रह्म की विलक्षण गति का वर्णन करता हूँ जो स्वयं पिंड देखकर (उसमें स्थित ब्रह्म का) स्वयं विचार कर लेता हूँ॥

मैं जीव से सम्बद्ध सम्पूर्ण गतियों का भिन्न-भिन्न रूप से वर्णन कर रहा हूँ ताकि जीव उन्हें समझ ले और उसकी भौतिक अभिलाषाएँ समाप्त हो उठें। अब मैं पिंड में स्थित ब्रह्मांड का वर्णन करता हूँ और भिन्न-भिन्न रूप में उसे दिखाऊँगा॥

जो पिंड के बाहर है, वह पिंड के अन्तर्गत दिखाई पड़ता है, मैंने तो स्वयं समझकर सब कुछ पिंड के अन्तर्गत देखा है। तुलसी साहब कहते हैं कि उसे पाकर पिंड में प्रविष्ट होकर (अनुभूति द्वारा उसे) देखा है। इस पिंड के भीतर भिन्न-भिन्न अनेक सार विवेक हैं॥

जैसे-जैसे संतों ने पिंड (घट) के विषय में जानकारी दी है, तुलसी साहब कहते हैं कि वैसा-वैसा

मैंने उन्हें अपने नेत्रों से देखा है। अब मैं इसकी दृश्य रचना (लखाई) के बारे में कहता हूँ, जो घट के भीतर मुझे दिखाई पड़ा है॥

मैं तो निष्काम ब्रह्म (गुरु) का शिष्य हूँ। जिधर-जिधर विचार करके देखता हूँ, यह संसार अंधा ही दिखाई पड़ता है। मेरी सच्ची बात कोई नहीं मानता है और वह पुनः पुनः भवसागर में कर्मबन्धन की बेड़ी में फँसता जाता है॥

भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के सन्तों को मैंने बुलाया, और उन्हें समझाया) किन्तु किसी के हृदय में ज्ञान नहीं आया। स्वयं कागभुशुण्डि ने ऐसा बताया है कि पिंड में ही सुरति ने ज्ञान का सैल (आश्रय) बना रखा है॥

कागभुशुंडि कोई नहीं हुआ था। स्वयं तुलसी ने इस शरीर को सुरति ज्ञान का विश्राम गृह बताया है। कागभुशुण्डि श्रीराम की काया के मध्य गया और वह श्रीराम के मुख द्वारा प्रविष्ट हुआ था॥

उसके ज्ञान और उसकी बुद्धि को तुलसी ने समझा था और उसका वर्णन रामायण में किया है। इस माया संसक्त जीव को अन्त में ले जाकर यह सब (पिंड में ब्रह्मांड रहस्य) घट के भीतर ही कहकर बताया है॥

सुमित्रा, कैकेई एवं कौसल्या ये सभी इस पिंड के भीतर मिली हैं। जो सीता, दशरथ तथा राम कहे गए हैं, ये सभी घट के भीतर दिखाए गए हैं॥

सरयू नदी और सुरति रूपी अयोध्या के दसों दरवाजे, मैंने सभी को घट के भीतर निहार कर देख लिया है। कुंभकर्ण एवं लंका के स्वामी रावण ब्रह्म के पास त्रिकुटी में निवास करते हैं॥

हमने जिसे रावण कहा है वह त्रिकुटी रूपी लंका में स्थित ब्रह्म है। मंदोदरी तथा रावण का भाई विभीषण, पुत्र मेघनाद सभी इसी त्रिकुटी में हैं॥

मैं यह सब संवाद घट के बीच का कहता हूँ। रामायण तो घट के मध्य की कथा की ही बनी है। यदि कोई व्यक्ति अंधा है तो वह इसे न स्वीकार करे और न स्वीकार करने के कारण पुनः नरक में पड़ेगा॥

सन्तों की गति कोई नहीं जानता। वे इसी पिंड में ही ब्रह्मांड बखानते हैं। उनके ज्ञान और उनकी बुद्धि को कोई नहीं जानता क्योंकि बिना सत्संग के यह नहीं पहचाना जा सकता॥

जब प्रभु की कृपा होती है तभी अदृष्ट (अंधे) को सब कुछ दिखाई पड़ने लगता है। तभी कोई साधक इस पिंड में ब्रह्मांड एवं सुरति शैल पा लेता है क्योंकि तभी (पाने के क्षण ही) सतगुरु की कृपा होती है॥

अब मैं ब्रह्मांड के दृश्य का वर्णन करता हूँ जो किसी-किसी विरले संत को दिखाई पड़ता है। ये सन्त अन्तरात्मा में लीन हो जाते हैं, इन्हीं सन्तों पर विश्वास होता है॥

जिन्होंने घट की सुरति शैल पर विश्रामालय बना लिया है, उनके ज्ञान तथा उनकी मति की पहचान बिरले ही करते हैं। अब मैं घट में सुरति के शैल को दिखाकर अपनी चिन्तनगत दृढ़ता को स्पष्ट करता हूँ।

राम और रावण घट के भीतर सभी परिवार के रूप में हैं और उन्होंने इस घट के भीतर ही उनको चुन-चुन कर मारा है और रावण की भांति इसी घट में ही अनेक उत्पाती राक्षस हुए हैं (और वे भी मारे गए हैं)॥

हमारे इस सत्य मत को जिसने सत्य माना है, उनका इस लोक में आवागमन समाप्त हो उठा है। इस तथ्य में जो व्यक्ति भ्रम उत्पन्न करता है, वह बार-बार नरक की चारों योनियों में पड़ता है॥

मैंने उसे इस प्रकार स्वयं देखा है, और उन्हें मैंने सन्तों की कृपा से जाना भी है। अब इस पिंड तथा ब्रह्मांड का वर्णन वही-वही करता है–जिसको अपने नेत्रों से देख लिया है॥

॥ दोहा ॥

पिंड सैल ब्रह्मण्ड की, जस जस गति मति मोर।
जो सत मत संतन कही, देखा घट गढ़ तोर॥

अर्थ–पिंड ही ब्रह्मांड का पर्वत शिखर है, जैसी कि मेरी समझ है, सत्य के मत का जो वर्णन सन्तों ने किया है, उसे इस घट के अन्दर मैंने देखा है॥

॥ छन्द ॥

गाया घट लेखा अगम अलेखा। जिन जिन देखा सार सही॥
महुँ पुनि भाखी देखा आँखी। सूरति धसि दस द्वार गई॥ १॥
संतन जोइ गाई महुँ पुनि पाई। आदि अंत गति कहनि कही॥
जो जो घट माहीं सब दरसाई। जो रचना ब्रह्मड मई॥ २॥
जिन जिन निज जानी देख बखानी। जिन नहिं मानी भर्म सही॥
पंडित गति ज्ञानी भर्म भुलानी। भेष भेद भौ माहिं कही॥ ३॥
छत्री और ब्राह्मन बैस अपावन। सूद्र मती छर छार भई॥
का को गोहराई आदि न पाई। तुलसी सब देखा भर्म मई॥ ४॥

अर्थ–मैंने यहाँ अगम तथा न दिखाई पड़ने वाले अलक्ष्य घट के प्रकरण (लेखा) का वर्णन किया। जिन-जिन महात्माओं ने उसे देखा है (अनुभव किया है) वही उसका सही निचोड़ है। मैंने उसका पुनः आँखों से देखकर वर्णन किया है, और मेरी सुरति (ज्ञान) दसों द्वारों में प्रविष्ट होकर वहाँ पहुंची है॥ १॥

जिसे सन्तों ने गाया है (बताया है, वर्णन किया है) मैंने भी उसी को प्राप्त किया है और उसकी आदि अन्त का उस रूप में वर्णन किया है। जो-जो घट के अन्तर्गत है, मैंने सबके विषय में बताया है, यह सारी रचना ब्रह्मांडमयी है॥ २॥

जिन-जिन ने इसे जाना है, उसको देखकर वर्णित किया है–जिन्होंने नहीं माना है, वह पूरी तरह से भ्रम में हैं। पंडित तथा ज्ञानी (ज्ञान एवं पांडित्य के गर्वभ्रम में) अपने भ्रम में भुलाए रहे और ईश्वर के वेष तथा भेद को संसार (सृष्टि) के अन्तर्गत बताया (ब्रह्मांड के अन्तर्गत नहीं)॥ ३॥

क्षत्रिय तथा ब्राह्मण, वैश्य एवं शूद्र सभी की मति (ज्ञान) जलकर राख हो गई। इस मनुष्य समाज में किसको बुलावें किन्तु वे इसके मूल रहस्य का ज्ञान नहीं प्राप्त कर रखा है, तुलसी साहब कहते हैं कि सभी को मैंने भ्रम में पड़ा हुआ देखा है॥

॥ सोरठा ॥

ब्राह्मन अरु पुनि सूद्र, ये बूड़े सब उद्र को।
बैस्य बसा भौ बास, कस अकास डोरी गहै॥

अर्थ–ब्राह्मण तथा दलित ये सभी अपने पेट भरने में ही डूब गए। वैश्य का निकृष्ट स्थान पर निवास हो उठा और शून्याकाश की डोर को ये तीनों किस प्रकार पकड़ सकते हैं सम्भव नहीं हैं॥

॥ चौपाई ॥

सब ये घट की सैल बखाना। पिंड माहिं ब्रह्मंड दिखाना॥
आगे घट का भेद बताई। अब जो सुनो कहों समझाई॥ १॥
तिल परमाने लगे कपाटा। मकर तार जहँ जिव की बाटा॥
इतना भेद जानि जिन कोई। तुलसीदास साध है सोई॥ २॥
आगे अदबुद ज्ञान अपारा। पिरथम घट का कहों बिचारा॥

अर्थ–यह सब मैंने घट की यात्रा (सैल) वर्णन किया और मुझे पिंड में ही ब्रह्मांड दिखाई दिया। आगे, घट के भेदों को बताऊँगा–मैं समझाकर कहता हूँ–अब उसे सुनो॥

चित्त की चेतना के द्वार पर तिल के समान छोटा कपाट लगा हुआ है। जीव का रास्ता वहाँ मकर तार जैसा सूक्ष्म है। जिसने इतना भेद समझ लिया है–तुलसीदास कहते हैं, वही साधु है॥ २॥

आगे अपार अद्‌भुत ज्ञान है, अब इस पृथ्वी घट पर विचार कह रहा हूँ॥

॥ अर्थ घट का भेद और ठिकाना ॥

(सवाल)

१. पृथ्वी का माथा कहाँ है?
२. सुर का तेज कहाँ है?
३. चंद्र की जोति कहाँ है?
४. पानी का मूल कहाँ है?
५. कँवल का फूल कहाँ है?
६. वायु की नाभी कहाँ है?
७. गनेस की स्वाबी कहाँ है?
८. समुद्र का सोत कहाँ है?
९. आकाश का पोत कहाँ है?
१०. सुरति सहदानी कहाँ है?
११. जीव की बानी कहाँ है?
१२. जीव का नाम कहाँ है?
१३. सुरति का ठाम कहाँ है?
१४. ध्यान की सुरति कहाँ है?
१५. ज्ञान की मूरति कहाँ है?
१६. सुरति की निरति कहाँ है?
१७. सुमेर की जड़ कहाँ है?
१८. तिल भर हाड़ काया में कहाँ है?
१९. गगन का कलेजा कहाँ है?
२०. मन का मुख कहाँ है?
२१ काम का आदि कहाँ है?
२२. देही का नूर कहाँ है?
२३. बदन का पिंजर कहाँ है?
२४. सिव का ध्यान कहाँ है?
२५. बेद का भेद कहाँ है?
२६. गुनी का गुन कहाँ है?
२७. राग का रस कहाँ है?
२८. सुर का आकार कहाँ है?
२९. आकार का आदि कहाँ है?
३०. अंत की समाधि कहाँ है?
३१. माया की धुनि कहाँ है?
३२. धुनि की सुन्न कहाँ है?
३३. सुन्न का शब्द कहाँ है?
३४. ज्ञान का मूल कहाँ है?

॥ जबाब ॥

१. पृथ्वी का माथा मैनागिरी पर्वत में है।
२. सूर का तेज उदयागिरि पर्वत पर हैं।
३. चंद्र का तेज चंदागिरि पर्वत पर हैं।
४. पानी का मूल निरंजन की दीपें में है।
५. कमल का फूल अछैद्वीप में है।
६. वायु की नाभि रंभा के पेड़ में है।
७. गणेश की स्वाबी मानसरोवर में है।
८. समुद्र का स्रोत समीवृक्ष में है।
९. आकाश का पोत वाराह के माथे पर है।
१०. सुरति सहदानी शब्द में है।
११. जीव (हंस) की बानी अष्ट कमल में है–जीव अरूपी द्वादश कमल में है।
१२. जीव का नाम शून्य कमल में है।
१३. सुरति का स्थान दो दल वाले कमल में है।
१४. ध्यान की सुरति गगन के ऊपर नयन नासिका के अग्रबीच में है।
१५. ज्ञान की मूर्ति ब्रह्मांड कमल में है।

१६. सुरति की निरति साहब (परमात्मा के शब्द) में है।
१७. सुमेर की जड़ नाग के कलेजे में है।
१८. तिल भर हाड़ पाँच इन्द्रियों में है।
१९. गगन का कलेजा राग के आकार में है।
२०. मन का मुख षट्‌दल कमल में है।
२१. काम की आदि शिव (शंकर) की सुरति में है।
२२. देही का नूर हरि के पास है।
२३. बदन का पिंजर पृथ्वी के भीतर है।
२४. शिव का ध्यान हरि के शब्द कमल में है।
२५. वेद का भेद चार दल कमल में है।
२६. गुनी का गुन षटदल कमल में है।
२७. राग का रस पुरुष के शब्द में है।
२८. सुर का आकार शून्य में है।
२९. आकार का आदि अनाहत नाद में है।
३०. अन्त की समाधि ब्रह्मलोक (साहब के लोक) में है।
३१. माया की ध्वनि चर्तुदल कमल में है।
३२. ध्वनि की शून्न वे ज्ञान के मूल में है।
३३. शून्य का शब्द निरन्तर में है।
३४. ज्ञान का मूल नाम में है।

॥ सोरठा ॥

इतना देहु बताइ, जीव कहों समझाइ कै।
अगम निगम घर पाइ, तब तुलसी सब बिधि लखै॥

अर्थ—मैं जीवों को समझा कर कहता हूँ कि तुम इतने प्रश्नों का उत्तर दे दो। इस अगम्य एवं अज्ञेय का घट पाकर तुम इसे भलीभाँति देखते, तुलसीदास कहते हैं कि (इस शरीर को) इन प्रश्नों के प्रकाश में इसे भलीभांति क्यों नहीं देखते?

॥ जवाब चौपाई ॥

आगे उलटा भेद बताऊँ। अगम निगम घट भेद सुनाऊँ॥
अब या का अरथंत सुनाऊँ। घट में ठीका ठौर बताऊँ॥
जो कोई साध सैल घट कीन्हा। सुन करि अर्थ होइ लौ लीना॥

अर्थ—आगे अब मैं इसका उल्टा भेद बता रहा हूँ। इससे सम्बद्ध इसे अगम्य एवं अज्ञेय तत्त्व का मैं भेद बताऊँगा। अब मैं इसका अर्थान्तर (प्रश्नों का अर्थ) सुनाता हूँ। इसी घट में इनका उचित निवास तथा पहचान (टीका ठौर) बताता हूँ। जिस साधु ने इस पिंड (घट) में शैल (विश्रान्ति स्थली) कर ली है—इसके अर्थ को सुनकर वही उसकी समाधि में लीन हो उठेगा॥

॥ दोहा ॥

ये अस्थान बताइया, साधू सुनौ बखान।
कहै तुलसी घट भीतरे, सूरति से पहिचान॥

अर्थ—मैंने वर्णन करके इन स्थानों के विषय में बतला दिया, हे साधु जन! इस वर्णन को सुनें। तुलसी साहब कहते हैं कि इस शरीर के भीतर सुरति ज्ञान द्वारा इनकी पहचान करो।

॥ सोरठा ॥

रामायण घट सार सुरति शब्द में लखि परै।
गगन कँज कर बास ऊपर चढ़ि जिन देखिया॥

अर्थ—यह मेरी रामायण पिंड का निचोड़ तत्त्व है और इसे सुरति समाधि से ही देखा जा सकता है। सुरति में स्थित कमल दल पर निवास करते हुए उसके ऊपर चढ़कर जिन्होंने इसे देखा है (वही इसके प्रमाण हैं।)॥

॥ चौपाई ॥

अब सुनियौं ब्रह्मंडी लेखा। कोटिन परलै घट बिच देखा॥
भीतर गुफा एक जो कीन्हा। कोटि प्रलै उबार जिव लीन्हा[१]॥
सब्द निरंतर संत है भाई। गहै जीव पहुँचै जब जाई॥
घट का मथन सुरति से[१] साधै। बा को काल कभी नहिं बाँधै॥
कोटिन सूर ब्रह्मंड के माहीं। कोटिन कोटि देखि सब ठाहीं॥
घट बिचार घट ही के माहीं। ता में ब्रह्मा बिस्नु रहाई॥
सिव संकर सब घट में फंदा। घट में नदी अठारा गंडा॥
घट में देखे सात समुन्दर। जिन से जल पहुँचै नभ अंदर॥
घट में तीरथ बरत मँझारी। घट में देखा कृष्न मुरारी॥
घट में जोधा सामन्त होई। घट में राजा परजा सोई॥
घट में हिंदू तुर्क दोइ जाती। घट में कुला कर्म की पाती॥
घट में नेम दया अरु धर्मा। घट में पाप पुन्य बहु कर्मा॥
घट में डंड बंध दोउ भाई। जो कछु बाहिर सो घट माई॥
घट में बास बसन जग लागा। घट में कामिनि खेलै फागा॥
घट में षट पलास सोइ फूला। घट में लोग प्रजा झकझूला॥
घट में स्वर्ग नर्क हैं दोई। घट में जनम मरन पुनि होई॥
घट में कथा पुरान सुनावै। घट में माया करम करावै॥
घट में चोरी चोर अपारा। घट में करता सिरजनहारा॥
घट में राजा राज कराई। घट में चौकी पहरा भाई॥
घट ही में सब न्याव चुकावै। घट में रागी तान सुनावै॥
घट में नाच कूद रे भाई। घट में राग अलाप सुनाई॥
घट में साह महाजन होई। घट में सब्द सुन्न है सोई॥
घट में राजा है बलि बावन। घट में सीता रघुपति रावन॥
घट में लंका सा गढ़ भाई। घट में छानवे मेघा छाई॥
घट में बैठे पाँचौ नादा। घट में लागी सहज समाधा॥
ऊँच नीच परबत झक झाई। निस दिन झरना बहत रहाई॥
मगरमच्छ घट माहिं मँझारा। घट में बस्ती और उजारा॥
घट में सुकदेव ब्यास अरु नारद। घट में ऋषी मुनी अरु सारद॥
घट में राजा बरन कुबेरू। घट में माँडे आठ समेरू॥

---

१. मुं० दे० प्र० की पुस्तक में दूसरी चौपाई इस तरह है—"भीतर गुफा एक है भाई। उबरे जीव पार जब जाई"; और चौथी चौपाई में 'सुरति से' की जगह 'जीव कोइ' है।

कहँ लगि घट का कहौं पसारा। घट में अनेक बिधान सँवारा॥
जो सब घट कहि बरनि सुनाई। जौ जग कागद मिलै न स्याही॥

अर्थ–अब ब्रह्मांड का वृत्तान्त सुनिये। इस पिंड (घट) के बीच करोड़ों प्रलय देखा है। अपने पिंड के भीतर जो एक विशिष्ट गुफा है, उसने जीव को उन कोटि प्रलयों से बचा लिया है॥

हे भाई! शब्द (निरंकार) निरन्तर सत्य है। जीव जब वहाँ पहुँचता है तो वह उसको ग्रहण कर लेता है (उसकी रक्षा करने लगता है). इस घट का मंथन सुरति समाधि से साधो–सुरति से शब्द (निरंकार) को साधने वालों को काल कभी भी नहीं बाँध पाता॥

ब्रह्माण्ड के बीच कोटि-कोटि सूर्य हैं। इन कोटि-कोटि सूर्यों को देखकर सभी स्थिर हो जाते हैं। घट का विचार घट के मध्य ही किया जा सकता है, बाहर नहीं-जिसके अन्दर ब्रह्मा, विष्णु आदि रहा करते हैं॥

शिवशंकर तो इस घट के फंदे हैं। इस घट के अन्दर ९० नदियाँ (१८ × ५ = ९० = एक गंडा पाँच के बराबर होता है) हैं। इस घट में मैंने सात समुद्रों को देखा है, जिनका जल शून्याकाश के बीच पहुँचता है॥

इस घट में तीर्थ एवं व्रत के स्थान हैं और इसी घट में मैंने मुरारी कृष्ण को भी देखा है। इसी घट के अन्तर्गत समस्त योद्धागण एवं सामन्तगण है–लोक में दिखाई पड़ने वाले राजा प्रजा सभी घट में हैं॥ ५॥

इसी घट में हिन्दू-तुर्क (मुसलमान) दो जातियाँ हैं–इस घट में सम्पूर्ण कर्मों की पंक्तियाँ (स्थितियाँ) हैं। इसी घट में ही नियम, दया एवं धर्म हैं। इसी घट के अन्तर्गत पाप-पुण्य से संयुक्त समस्त कर्म है॥

इस घट के दो भाई है–एक दण्ड है और दूसरा बंधन है। इसलिए जो कुछ बाहर है, वही यहाँ भी है। इसी घट में ही लोगों के सारे निवास हैं,और इसी घट में नवयुवतियाँ होली खेलती हैं॥

इसी घट के अन्तर्गत छः दलों का पलास फूला हुआ है–इसी घट में ही लोग प्रजा को झकझोरते रहते हैं। इसी घट में स्वर्ग तथा नरक दोनों हैं और इसी घट में जन्म और जन्म के बाद पुनः मरण होता है॥

इसी घट के अन्दर ही साधु जन कथा-पुराण सुनाते हैं और इसी घट में ही माया नाना प्रकार के कर्मों को कराती रहती है। घट में ही चोरी करने वाले अनन्त चोर हैं। इसी घट में ही संसार का रचनाकर्त्ता सृजनहार ईश्वर भी है॥

इसी घट में राजा राज्य करता है, इसी घट में चौकी और पहरा भी है? इसी घट में ही सारे न्याय चुकाए जाते हैं इसी घट में ही राग रागिनियों का ज्ञाता (रागी) नाना प्रकार की संगीत की ताने सुनाता रहता है॥

सम्पूर्ण नाच-कूद इसी घट में है–इसी घट में ही राग तथा आलाप सुनाई पड़ता है। इसी घट में साहु तथा महाजन रहते हैं और इसी घट में ही वह शून्य शब्द भी है॥

इसी घट में राजा बलि और वामनावतार भी हैं, इसी घट में सीता, रावण तथा राम है। इसी घट में वह घट लंका भी है, इसी घट में ९६ प्रकार के मेघ छाये रहते हैं॥

इसी घट में पाँचों प्रकार के नाद स्थित हैं और इसी घट में ही सहज समाधि लगी रहती है। इसे घट में चारों वेद रह रहे हैं और इसी घट में असंख्य ब्रह्म समाविष्ट हैं॥

घट में ही सन्तों का स्वर्ग तथा पाताल हैं, इसी घट में भयंकर काल बैठा हुआ है–जो सब बाहर है, वही सब अन्दर भी है–घट का भेद घट के ही अन्दर है॥

इसी घट में सारे अड़सठ तीर्थ हैं और इसी घट में गंगा की धारा भी बहती है। इसी घट में ही लोग स्नान करते हैं और इसी घट में ही तीनों लोक समाये रहते हैं॥

घट की थाह कोई नहीं जान पाया–इसी घट में पिंड तथा ब्रह्मांड समाये हुए हैं। इसी घट में ही हाट-बाजार लगाया हुआ है–घट में ही वह दामिनि (विद्युत लेखा) है और यही मन अपने पति को प्राप्त करता है ॥

इस घट में अपार पर्वत तथा वृक्ष हैं और घट में ही विष्णु के दशावतार बैठे हुए हैं। इसी घट में हाथी और घोड़े हैं और इसी में समस्त हिरण स्थित हैं ॥

इसी घट में ऊँचे, नीचे, पर्वत, खोह (झल) और झाड़ियाँ (झाई) हैं और यहीं रात-दिन झरने बहते रहते हैं। इसी घट के अन्दर ही मगरमच्छ है–इसी घट में बस्तियाँ तथा उजाले हैं ॥

घट में ही शुकदेव, व्यास, एवं मुनि नारद हैं–इसी घट में ऋषि, मुनि एवं सरस्वती देवी रहती है। इसी घट में वरुण राजा (बरन) एवं कुबेर रहते हैं और इसी घट में आठों सुमेरु पर्वत सुशोभित (मौंडे-मण्डित) होते हैं ॥

इस घट के विस्तार का कहाँ तक वर्णन करूँ। घट में अनेक प्रकार की रचनाएँ सजाई गई हैं। उन सम्पूर्ण बातों का जो घट में स्थित है, मैं उल्लेख कर चुका हूँ। यह वर्णन इतना अधिक है कि उसके निमित्त स्याही और कागज भी कम पड़ गए हैं ॥

॥ दोहा ॥

घट भीतर जो देखिया सो भाखा विस्तार।
बेंदी भेद जनाइया तुलसी देखि विचार॥

अर्थ–घट के भीतर जो देखा, उसका मैंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। तुलसी साहब कहते है कि मैंने भेद का कारण एवं उसके अनेक भेदरूपों का अन्तर स्पष्ट कर दिया–उसे तुम देखो तथा विचार करो ॥

॥ छन्द ॥

सब ठीक बखाना घट परमाना। घट घट में सब ठाम ठई॥
बाहिर सोइ अंदर सब घट मन्दर। देखि हिये बस बास कही॥ १ ॥
बूझै कोई ज्ञानी अंतरजामी। मूरख मूढ़ न चेत भई॥
आगे पुनि गाऊँ बरनि सुनाऊँ। इन सब के अस्थान मई॥ २ ॥
तुलसी तन तारा खोलि किवारा। पैठि मँझारा सार लई॥

अर्थ–घट को प्रमाण के रूप में रखकर मैंने सारी बातें ठीक-ठीक कही हैं। घट में ही सभी के होने के ठीक-ठीक स्थान हैं। जो बाहर है, वह सब घट रूपी मन्दिर के अन्दर है, हृदय के निवास को वहाँ देखकर ये बातें कही हैं ॥ १ ॥

इसे कोई अर्न्तयामी ज्ञानी ही बूझ सकते है–मूढ़ एवं मूर्ख के मन में इसका ख्याल नहीं आता। मैं पुनः इस प्रसंग का आगे गान करके वर्णन करके सुनाता हूँ–जहाँ इनके स्थान हैं।

तुलसी साहब कहते हैं–इस शरीर के किवाड़ों के ताले को खोलो और सार तत्त्व को ग्रहण करके इसी में बैठो ॥ २ ॥

॥ सोरठा ॥

या विधि तन मन ग्यान भीतर देखा जोइ कै।
साधू करौ प्रमान भिन्न भिन्न तत मत कहा॥

अर्थ–इस प्रकार, शरीर और मन का ज्ञान मैंने घट के भीतर जाकर देखा और अब साधु जन इस भिन्न-भिन्न शरीर की कथाओं के प्रमाण हैं ॥

॥ चौपाई ॥

अब उनके अस्थान बताऊँ। भिनि भिनि ग्रंथन में समझाऊँ॥

अर्थ-अब उनका स्थान मैं बताता हूँ तथा यह भिन्न-भिन्न ग्रंथों से लेकर समझाता हूँ॥

॥ कोठों के नाम ॥

कोठा प्रथम उतेसुर नाईं। बैठे ब्रह्मा बेद पढ़ाई॥
दूसर धरम-गंध दरसाई। बैठे बिस्नू ज्ञान सुनाई॥
तीसर कोठा धुन-धर भाई। बैठे संकर जोग कराई॥
चौथा कोठा रक्तमनि गाई। बरुन बैठि जहँ राज कराई॥
हरि संग्रह पचम बतलाऊँ। आठ सुमेर बसैं तहि ठाऊँ॥
बिजै-धुंध षष्टम कहलाई। मन की कला फिरै तेहिं ठाईं॥
कोठा सतवाँ नगरा नाऊँ। अन्नदेव बैठे तेहि ठाऊँ॥
कोठा अठवाँ रुकमन ताला। जहँवाँ बैठे मदन गोपाला॥
नौवाँ कोठा गौड़ मन माली। दुरमति माया करै बिहाली॥
दसवाँ कोठा उघडू नावाँ। सहस कोटि ऊगैं तेहि ठावाँ॥
करभौनी एकादस नाऊँ। तीनि लोक में जोति समाऊँ॥
द्वादस कोठा बिषमदे गावा। सुर नर मुनि जहँ ध्यान लगावा॥
कोठा त्रयोदस मलदू द्वारे। जोगिनि चौंसठ लाख निहारे॥
चौधा कोठा गगनधर नाऊँ। लच्छ अलच्छ बैठि तेहि ठाऊँ॥
हमसुन्दर पन्द्रा कर नावाँ। बास सुगंध बसै तेहि ठावाँ॥
कोठा सोला अतिसुर नाऊँ। पाँच बजार बसै तेहि ठाऊँ॥
कोठा सत्रा सिषरचल नाऊँ। अठरा गंडा नदी तेहि ठाऊँ॥
अठरा कोठा कड़ेसुर नाऊँ। जीव को तेज बसै तेहिं ठाऊँ॥
कोठा उनीस बंकचल नाऊँ। मुरली सुहावन बजै तेहि ठाऊँ॥
बिसवाँ कोठा कुलँग कहाई। सुकृत बाजा बजै सुहाई॥
इकइस कोठा भानसुर नाऊँ। अलख निरंजन है तेहि ठाऊँ॥
बाइस कोठा धुँधेसुर नाऊँ। मन को ध्यान बसै तेहि ठाऊँ॥
तेइस कोठा तरंगी ताला। बिछई जे जग में जमजाला॥
चौबिस कोठा कंठसुर नाऊँ। सुमति बिचार बसै तेहि ठाऊँ॥
पच्चिस कोठा प्रकृति[१] नाऊँ। मल को पती बसै तेहि ठाऊँ॥
छब्बिस कोठा मुदापल नाऊँ। पवन प्रधान बसै तेहि ठाऊँ॥

१. मुं० दे० प्र० के पाठ में 'परकुटी' है।

सताइस कोठा सुताचल नाऊँ। मन अलीप बैठे तेहि ठाऊँ॥
अठाइस कोठा धरनीधर नाऊँ। माया मोह बसै तेहि ठाऊँ॥
उंतिस कोठा कमची नाऊँ। बादल मेघ उठै तेहि ठाऊँ॥
तिसवाँ कोठा निरमल नामूँ। साहिब पलँग बिछा तेहि ठामूँ॥
इकतिस कोठा करोमल नामूँ। नवो नाथ बसते तेहि ठामूँ॥
बत्तिस कोठा बनासुर नामा। नौ कुत्ते बैठे तेहि ठामा॥
तेंतिस कोठा अनधू नामूँ। जम का तेज बसै तेहि ठामूँ॥
चौंतिस कोठा जमाउत नामा। जमुना नदी बसै तेहि ठामा॥
पैंतिस कोठा सकरदू[१] सेता। कामदेव जहँ झरि झरि बहता॥
छत्तिस कोठा गनकू नामूँ। क्रोध कलेस बसै तेहि ठामूँ॥
सैंतिस कोठा अवर धुर धुंधा। बैठ कृष्न जहँ डारै फंदा॥
अरतिस कोठा बँसबल नाऊँ। चौधा कामिनि हैं तेहि ठाऊँ॥
उन्तालिस करियाधर नाऊँ। बैठे दया धरम तेहि ठाऊँ॥
चालिस कोठा किरिकोता नामूँ। सात समुद्र बसैं तेहि ठामूँ॥
इकतालिस भौरादे नामा। नवौ कुली नाग तेहि ठामा॥
बयालिस कुम्भेसुर नाऊँ। बारह कुम्भ बसैं तेहि ठाऊँ॥
तेंतालिस भगताधर नावाँ। भय और त्रास बसै तेहि ठावाँ॥
चवालिस कुसमाधर नाऊँ। चारौं बेद बसै तेहि ठाऊँ॥
पैंतालिस मायारट नाऊँ। रोग अरु दोष बसै तेहि ठाऊँ॥
छेयालीस मलया गिरि नावाँ। हंस बिहंग बसै तेहि ठावाँ॥
सैंतालीस हलासुर[२] नामा। तीरथ अरसठ हैं तेहि ठामा॥
अरतालिस कुकरंदर न्यारा। जहँ है सत्त सुकृत[३] का द्वारा॥
कोठा उंचास मरमो नाऊँ। पवन अकास उठै तेहि ठाऊँ॥
कोठा पचास घूघर नामूँ। हरि को तेज बसै तेहि ठामूँ॥
कोठा इक्यावन मजकुर नामा। सहस कँवल फूला तेहि ठामा॥
बावन कोठा जरादे नामूँ। अगिनी जरै ऊँच तेहि ठामूँ॥
त्रेपन कोठा तेराधर नामूँ। धीर गंभीर बसै तेहि ठामूँ॥
चौवन कोठा सिसंधर नावाँ। सत संतोष बसै तेहि ठावाँ॥

---

१ एक लिपि में 'सरंदू' नाम लिखा है।

२. एक लिपि में 'कोलाहर' नाम दिया है।

३. मुं० दे० प्र० की पुस्तक 'सुकृत' की जगह ''मुक्त'' है।

पचपन कोठा हिंडोला नामूँ। नारी नवो बसै तेहि ठामूँ॥
छप्पन कोठा निरधर नाऊँ। अठारा भार बसै तेहि ठाऊँ॥
सतावन कोठा कफादे नावाँ। जीव की मीच बसै तेहि ठावाँ॥
अट्ठावन सुमेरबल नावाँ। मङ्गल पुरुष चरित्तर गावाँ॥
उनसठ कोठा छैसुन्दर नाँमा। आतम रूप बसै तेहि ठामाँ॥
साठ कोठा धौलाधर नाऊँ। तीनों लोक मही तेहि ठाऊँ॥
इकसठ कोठा जैसुन्दर नामूँ। बलधर पुरुष बसै तेहि ठामूँ॥
बासठ कोठा हीरापुर नामूँ। नीर चुवै झरि झरि तेहि ठामूँ॥
त्रेसठ कोठा कलाकर नावाँ। चौथा भवन बसै तेहि ठावाँ॥
चौंसठ तिल बिक्रम कहलावै। जलथल कुम्भ बसै तेहि ठाँवै॥
पैंसठ कोठा सुरतसर नामूँ। जप तप जज्ञ करै तेहि ठामूँ॥
छासठ कोठा सिखरिचल नाऊँ। जोगी असंखन जोग कराऊँ॥
सरसठ कोठा अनन्दी भाई। जहँवाँ काल बसन नहिं पाई॥
अरसठ कोठा चितादे नाऊँ। चित का चक्र फिरै तेहि ठाऊँ॥
उन्हत्तर कोठा सनीता नाऊँ। ज्ञानी बुद्ध बसै तेहि ठाऊँ॥
सत्तर कोठा सलीका नाऊँ। सुन्न की धुन्न उठै तेहि ठाऊँ॥
इखत्तर कोठा उदाधर नाईं। जहँ जग पालक बैठि रहाई॥
बहत्तर कोठा गंजधर नाऊँ। करनी मूल बसै तेहि ठाऊँ॥
कोठा बहत्तर कहेउ बखानी। ले लख भीतर जो पहिचानी॥
यह घट देखि देखि सोइ भाखा। बूझि बूझि साधू मन राखा॥
रामायन घट कहि समझाई। काया भीतर कथि दरसाई॥
काया खोज मुक्ति जब होई। बिन खोजे सब गये बिगोई॥
काया भीतर सब की पूजा। सिव सनकादि आदि नहिं सूझा॥
बाहिर कथि कथि रहे भुलाई। काया भीतर वस्तु न पाई॥
कोठा बहत्तरि हम कहि दीन्हा। कोऊ न काया भीतर चीन्हा॥
सास्तर संसकिरत में फूले। ऋषी मुनी जोगेसुर भूले॥
या से राह घाट नहिं पाई। बहे कर्म भौजल के माईं॥

अर्थ–प्रथम कोठा उतेसुर के नाम का है–जहाँ ब्रह्मा बैठकर वेद पढ़ाते हैं। दूसरा कोठा धरम गंध है, जहाँ विष्णु बैठकर ज्ञानचर्चा सुनाते रहते हैं॥

तीसरा कोठा धनुधर है, जहाँ शंकर बैठ कर योग कराते रहते हैं। चौथा कोठा रक्तमणि कहा गया है–जहाँ वरुण बैठकर राज्य करते रहते हैं॥

पाँचवाँ कोठा 'हरिसंग्रह' है–उस स्थान पर आक सुमेर पर्वत हैं। 'विजय धुंध' छठाँ कोठा कहा जाता है, मन की सम्पूर्ण कलाएँ उस स्थान की परिक्रमा करती रहती हैं॥

सातवें कोठे का नाम नगरा है—वहाँ अन्नदेव निवास करते हैं। आठवाँ कोठा 'रुक्मनताल' है, जहाँ मदन गोपाल बैठे हैं॥

नवाँ कोठा गौड़ मनमानी है—जहाँ यह दुर्गति से माया बेहाल किए हुए है। दसवें कोठे का उघड़ू नाम है—जहाँ सहस्त्र कोटि प्रकाश उत्पन्न होता है॥

ग्यारहवें कोठे का नाम 'करमौनी है—जिसकी ज्योति तीनों लोकों में समाई रहती है। बारहवें कोठे का नाम 'विषमदेव' है—जहाँ देवता एवं मुनि ध्यान लगाए रहते हैं॥

पन्द्रहवें कोठे का नाम 'हम सुन्दर' है—जिस स्थान पर सुगंध निवास करती रहती है। सोलहवाँ कोठा। अति सुर नाम का है, जिस स्थान पर पाँच बाजारें लगती हैं।।

सत्रहवें कोठे का नाम 'सिखर जल' है—जिस स्थान पर अठरा गंडक नदी है। अट्ठारहवें कोठे का नाम कड़ेसुर है—जिस स्थान पर जीव के तेज का निवास है॥

उन्नीसवें कोठे का नाम बंक चल है, जहाँ सुहावती मुरली (निरन्तर) बजा करती है। बीसवाँ कोठा 'कुलंग' कहा जाता है—जहाँ पुष्य का सुहावना बाज बजता रहता है॥

इक्कीसवें कोठा का नाम भानसुर है, उस स्थान पर अचल निरंजना है। बाइसवें कोठे का नाम 'धुंधेसर' है। इसी स्थान पर मन का ध्यान निवास करता है॥

तेईसवाँ कोठा तरंगी ताल है, जिसने इस संसार में यम का जाल फैला रखा है। चौबीसवें कोठे का नाम कंठसुर है—जहाँ सुमति एवं सुविचार निवास करते हैं॥

पच्चीसवें कोठे का नाम प्रकृति है, वहाँ मल के पति का स्थान है। छब्बीसवें कोठे का नाम मुदापल है और प्रधान पवन वहाँ निवास करते हैं॥

सत्ताइसवें कोठे का नाम सुताचल है—अलीप (अनिलिप्त-निर्मल मन उस स्थान पर बैठा है। अट्ठाइसवें कोठे का नाम धरनीधर है—वहाँ माया मोह निवास करते हैं॥

उन्नीसवें कोठे का नाम कमची है, उस स्थान पर बादल मेघ उठा करते हैं। तीसवाँ कोठा निर्मल नाम का है—उस स्थान पर साहब का पलंग बिछा हुआ है॥

एकतीसवें कोठे का नाम करोपल है—उस स्थान पर नवों नाथ निवास करते हैं।। बत्तीसवें कोठे का नाम बकासुर है—उस स्थान पर नौ कुत्ते बैठे हैं॥

तैतीसवें कोठे का नाम अनधू है, उस स्थान पर यम के तेज का निवास है। चौंतीसवें कोठे का नाम 'जमाउत' है—उस स्थान पर यमुना नदी निवास करती है॥

पैंतीसवाँ कोठा सकरदू सेतु है, जहाँ कामदेव झर-धर कर निवास करते हैं। छत्तीसवाँ कोठे का नाम गनकू है, उस स्थान पर क्रोचन तथा क्लेश दोनों बहते हैं॥

सैंतीसवाँ कोठा, अवधधुर धुंध है, जहाँ श्रीकृष्ठा बैठकर फंदे डालते रहते हैं। अड़त्तीसवें कोठे का नाम बँसबल है, उस स्थान पर चौदह कामिनियाँ हैं॥

उन्तालिवाँ करियाघर नाम का कोठा है—जहाँ दया तथा धर्म दोनों बैठे हैं। चालसवें कोठे का नाम किरिकोता है—और उस स्थान पर सात समुद्र बहते हैं॥

एकतालिसवें कोठे का नाम भौरा दे है—जहाँ नवों कुलों के नाग निवास करते हैं। बयालिसवें का नाम कुम्भेसुर है जिस स्थान पर बारह कुम्भ निवास करते हैं॥

तैंतालिसवा भगताधर नाम का कोठा है—वहाँ भय तथा त्रास दोनों का निवास स्थान है। चौवालिसवें का नाम कुसमाधर है—जहाँ चारों वेद निवास करते हैं॥

पैंपालिसवें का नाम मायारट है—जहाँ रोग और दोष निवास करते हैं। छियालिसवें कोठे का नाम मलयागिरि है—जहाँ हंस तथा बिहंग दोनों निवास करते हैं॥

सैंतालीसवें का नाम हलासुर है—जहाँ अड़सठ तीर्थों का स्थान है। अड़तालिसवें का नाम कुकरेदर है—इस विलक्षण कोठ में सत्य एवं पुण्य निवास करते हैं॥

उनचासवाँ मरमों नाम का है–जिस स्थान पर पवन निरन्तर आकाश की ओर उठता रहता है। पचासवें कोठे का नाम घुघर है और उस स्थान पर श्रीहरि का तेज निवास करता है॥

इक्वयानवाँ कोठे का नाम मजकुर है–उस स्थान पर सहस्त्रार कमल खिला हुआ है। बावनवे कोठे का नाम जरा दे है–उस स्थान पर उच्च शिखा वाली अग्नि जलती रहती है॥

तिरपनवें कोठे का नाम तेराधर है, जहाँ धीर गम्भीर निवास किया करते हैं। चौवनवाँ कोठा सिसंदर नाम का है–उस स्थान पर सत्य तथा सन्तोष निवास करते हैं॥

पचपनवें कोठे का नाम हिंडोला है, नवों नाड़ियाँ उस स्थान पर निवास करती हैं। छप्पनवें कोठे का नाम निरधर है–जहाँ अट्ठारहों भार निवास करते हैं॥

सत्तानवें कोठे का नाम कफा दे है–जीव की मृत्यु वहाँ निवास करती है। अट्ठानवें का नाम सुमेर बल है–जहाँ मंगल नाम का पुरुष निरन्तर चरित्र गायन करता रहता है॥

उनसठवें कोठे का नाम 'छै सुन्दर' है–जहाँ स्वयं आलस्य निवास करता है। साठवाँ कोठा धौल:सुर है–तीनों लोकों की पृथ्वी वहाँ निवास करती है॥

इकसठवें कोठे का नाम जैसुन्दर है–शक्तिशाली पुरुष वहाँ निवास करते हैं। बासठवाँ कोठा हीरापुर नाम का है–वहाँ निरन्तर झर झर कर जल चूता रहता है॥

तिरसठवें कोठे का नाम कलाकर है–जिस स्थान पर चौदहों भुवन निवास करते रहते हैं। चौसठवाँ कोठा तिल विक्रम कहलाता है, उस स्थान पर जल, स्थल तथा कुम्भ तीनों का निवास है॥

पैंसठवें कोठे का नाम सुरत सर है–जहाँ सभी जप, तप एवं यज्ञ करते हैं। छियाछठवाँ कोण शिखरिचल है–जहाँ असंख्य योगी योग करते हैं॥

सरसठवाँ कोठा आनन्दी माँ का है–वहाँ काल निवास नहीं करने पाते। अड़सवें कोठे का नाम 'चिता दे' है–उस स्थान पर चित्त का चक्र निरन्तर घूमा करता है॥

उनहत्तरवें कोठे का नाम सनीता है, जहाँ ज्ञानी बुद्ध निवास किया करते हैं। सत्तरवाँ कोठा सलीका नाम का है जहाँ शून्य की धुन निरन्तर उठती रहती है॥

इकहत्तरवाँ कोठा उदाधर नाम का है, जहाँ संसार के पालन कर्त्ता ईश्वर बैठे रहते हैं। बहत्तरवें कोठे का नाम गंजधर है जिस स्थान पर मूल कर्म (करनी) बैठी रहती है॥

मैंने इस प्रकार, बहत्तर कोठों का बखान करके वर्णन किया है–जो पहचान में आए उसे हे साधुजन! तू अपने घर में (भीतर) पहचान ले। इस घट को देख-देखकर इसके विषय में वही कह सकता है–जिसने समझ-समझ कर साधुजन की रक्षा की है॥

इस प्रकार, मैंने घट रामायण कहकर समझाया है और उसे कह करके घट के भीतर दिखाया भी है॥ काया में ही इन सबको खोजकर मुक्ति मात्र करो क्योंकि बिना खोज सब विनष्ठ हो उठते ॥

शरीर (घट) के भीतर ही सबकी पूजा है–शिव-सनकादि बिना साधना एक सूझते नहीं (अत: साधना करके) उन्हें समझो। उनको बाहर मानकर कहते-कहते सब भूल गए किन्तु काया के भीतर उन्हें मूलतत्त्व (वस्तु) नहीं दिखा॥

हमने बहत्तर कोठों में उन्हें बताकर कह दिया है और किसी ने भी उन्हें शरीर के भीतर नहीं पहचाना है। विद्वान अपने संस्कृत के शास्त्र ग्रंथों में गर्व से फूले रहते है, और ऋषि, मुनि तथा योगेश्वर भी अहम्भाव में भूले हुए दिखते हैं॥

इसी कारण उन्होंने न अध्यात्म का मार्ग प्राप्त किया और न उसका कोई घाट तथा वे भवजल के बीच कर्म के भ्रम तथा अहम् में बह गए॥

॥ दोहा ॥

सत्तनाम सुरति गहै सत गुरु सरन निवास।
तुलसी तरंग तरास ज्यों लखि पहुँचे तेहिं पास॥

अर्थ–सुरति समाधि द्वारा सत्य के नाम का ग्रहण करके जो सत्गुरु की शरण में निवास करता है–जैसे तरंगों की लहरें अन्ततः उसको देखती हुई। वह सभी समुद्र–ब्रह्म के पास पहुँच जाती हैं॥

॥ छन्द ॥

घट की गति गाई भाखि सुनाई। लखि पाई पद पार कही॥
जो जो परमाना घट मठ जाना। ठाम ठिकाना ठौर मई॥ १॥
तुलसी तस देखा घट बिच लेखा। पेखा तत मत पूर जही॥
आगे जस होई भाखौं सोई। जो जो सिद्ध समाधि लई॥ २॥

अर्थ–घट के ज्ञान को गाकर तथा कहकर सुना दिया और उसे मैं उस पार पाकर देखा और उसके विषय में कहा। मैं घट के मठ का जो-जो प्रमाण, स्थान, ठिकाना ठौर जानता था (वर्णन किया)॥ १॥

तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने इस पिंड के बीच जैसा देखा था, वैसा-वैसा पूरी तरह से बता दिया। आगे उसका जो अन्य रूप होगा, उसका वैसा ही वर्णन करूँगा, जिन रूपों में सिद्धों ने समाधि में देखा है (प्राप्त किया है)–उसको भी उसी रूप में वर्णित करूँगा॥ २॥

॥ सोरठा ॥

सिध चौरासी नाम, घट भीतर सब देखिया।
ता कर कहों बखान, जस जस ठीका नाम गुन॥

अर्थ–सिद्धों के चौरासी नाम (रूप) हैं–जिन्हें मैंने घट के भीतर देखा है। उनके नाम तथा गुण जिस -जिस प्रकार से ठीक लगेंगे, मैं उनका इस प्रकार वर्णन करूँगा॥

॥ चौपाई ॥

सिध चौरासी घट में होई। ता को देखा सुरति बिलोई॥
ता कर ठौर ठिकाना भाखौं। आदि अंत ठीक कर ताकौं॥
सिद्ध सिद्ध के नाम बताओं। छानि भेद सूच्छम दरसाओं॥

अर्थ–चौरासी सिद्ध घट के भीतर हैं, जिनको मैंने सुरति समाधि में खोकर (निमग्न होकर) मैंने देखा है अब उनके ठौर तथा ठिकानों का वर्णन कर रहा हूँ और आदि से अन्त तक उसे सुधार कर भी॥

सिद्धों के सिद्ध नाम कहता हूँ, उनके भेदों को छानकर (निचोड़कर) उनके सूक्ष्म संदर्भों का भी वर्णन कर रहा हूँ॥

॥ सिद्धों के नाम ॥

१.	अजोनी	सिद्ध	१०.	जैदेव	"
२.	अजर दया	"	११.	नलमोवर	"
३.	पवनगिरि	"	१२.	परसोतम	"
४.	उचंद कँवल	"	१३.	त्रिकुटीकमल	"
५.	उदद कँवल	"	१४.	पुरुषोपत	"
६.	पेषनादार	"	१५.	नलवोती	"
७.	नालीवर	"	१६.	बाइभक्ष	"
८.	कोमार	"	१७.	नाल पाजरी	"
९.	बालागिर	"	१८.	पायापाल	"

१९. जैपाल ''
२०. अजया काल ''
२१. केदारली ''
२२. रतनागिरि ''
२३. मेलमहंत ''
२४. उदया ''
२५. झकझेला ''
२६. उषमजार ''
२७. मनउतगिरि ''
२८. सरपसोष ''
२९. जंभीर नागर ''
३०. हंस मोह ''
३१. बिराज ''
३२. ललित दया ''
३३. करुनामय ''
३४. बाष जार ''
३५. जीव भूषन ''
३६. उदीत साह ''
३७. जगतधार ''
३८. साह पाल ''
३९. परन पोष ''
४०. नौनागर ''
४१. ज्ञानपती ''
४२. साधगिरि ''
४३. नलदेव ''
४४. सहस अपढ़ ''
४५. सुकृत जीव ''
४६. ऊँच माया ''
४७. सिंह नाद ''
४८. सहज तेज ''
४९. बेरंग नाद ''
५०. फूल काज ''
५१. केदार कोठ ''
५२. सुचलेन ''
५३. मजा गुनी ''
५४. तानी गंभीर ''
५५. जगपती ''
५६. गंधर्व सूत ''
५७. रतनागिरि ''
५८. सरोज मल ''
५९. कुल कुम्भ ''
६०. पिगोभ ''
६१. गौड़ आसन ''
६२. पक्ष पती ''
६३. भाठ नाद ''
६४. गोहप माल ''
६५. नरदया ''
६६. इंद्र मनी ''
६७. हंभीर ''
६८. कहूकितोहल ''
६९. जंभीर नाद ''
७०. द्याल पती ''
७१. नैनौगार ''
७२. काल मुनी ''
७३. प्रेम मुनी ''
७४. हंस करनाग ''
७५. मल मोद ''
७६. कूर नाकर ''
७७. सुषन सरीष ''
७८. सुरति लोक ''
७९. साध बाच ''
८०. सुख बाच ''
८१. नेह नाच ''
८२. बस करन ''
८३. भय मेटन ''
८४. सुच भाव ''

॥ चौपाई ॥

चौरासी सिधि कथि बतलाई। सिधि इतने घट भीतर छाई॥
साधू कोइ करै परमाना। जिन घट के अंदर पहिचाना॥

अर्थ–चौरासी सिद्धों का कथन करके बतला दिया, यही इतने ही सिद्ध घट के भीतर स्थित (छाये) हैं। जिन्होंने घट के अन्दर पहचान कर ली है, ऐसा ही कोई साधु ही उनका प्रमाण देगा॥

॥ सोरठा ॥

चौरासी सिधि देख, घट रामायन में कहे।
अंतर काया पेखि, भिन्न भिन्न दरसाइया॥

अर्थ—चौरासी सिद्धों को घट के भीतर देखकर मैं घट रामायण में उन्हें कहता हूँ। शरीर के अन्दर इन सिद्धों को देखकर कोई अन्य इन्हें भिन्न-भिन्न ढंग से कह सकता है॥

॥ चौपाई ॥

प्रकृति पचीस कहौं अनुसारी। ये सब घट के माहिं बिचारी॥
काया भेद देखि हम चीन्हा। ता कर लच्छ भाखि सब दीन्हा॥

अर्थ—पच्चीस प्रकृति अपनी बुद्धि के अनुसार बताता हूँ। इन सभी को घट के बीच विचार करो। इनके स्वरूप भेद को देखकर हमने पहचान लिया और उनका लक्षण भी हमने बतला दिया है।

॥ सोरठा ॥

प्रकृती भेद बिचार, नाम नीक सबकी कही।
तुलसी तनहिं निहार, मन इस्थिर जब होइ जेहि॥

अर्थ—प्रकृति भेद को विचार करके उनका ठीक-ठीक नाम भी मैंने बताया है जब जिस क्षण मन स्थिर हो, उस समय उनकी ओर देखकर (उन्हें पहचानो)॥

॥ चौपाई ॥

कौन कौन प्रकृति रे भाई। ता कर घर मैं देंव बताई॥

अर्थ—हे भाई! कौन कौन प्रकृति है उनको तुम घट के भीतर आकर देखो॥

॥ प्रकृतियों के नाम ॥

१. भाव प्रकृति
२. क्रता ''
३. देंहधर ''
४. उषमजार ''
५. इद्रजै ''
६. मोहदधि ''
७. सुषम जार ''
८. मोह धन ''
९. केदार खंड ''
१०. सफाकन्द ''
११. नलदया ''
१२. उदासमुद्र ''
१३. चंचलराज ''
१४. मजा गुन ''
१५. मजा नन्द ''
१६. अभयानन्द ''
१७. चतुरदया ''
१८. कजाकोग ''
१९. उचालम्भ ''
२०. दया भवन ''
२१. ईस भोग ''
२२. कामिनि जोग ''
२३. मोहजार ''
२४. नौ जोग ''
२५. भँवर सोग ''

प्रकृतियों के नाम

१.	भाव	प्रकृति	१४.	मजा गुन	"
२.	क्रता	"	१५.	मजानन्द	"
३.	देंहधर	"	१६.	अभयानन्द	"
४.	उषमजार	"	१७.	चतुरदया	"
५.	इद्रजै	"	१८.	कजाकोग	"
६.	मोहदधि	"	१९.	उचालम्भ	"
७.	सुषम जार	"	२०.	दया भवन	"
८.	मोह धन	"	२१.	ईस भोग	"
९.	केदार खण्ड	"	२२.	कामिनि जोग	"
१०.	सफाकन्द	"	२३.	मोहजार	"
११.	नलदया	"	२४.	नौ जोग	"
१२.	उदासमुद	"	२५.	भँवर सोग	"
१३.	चंचलराज	"			

॥ चौपाई ॥

प्रकृति पचीस यही हैं साधौ। सब जीवन को इनहीं बाँधौ॥
सत्य सत्य मैं भाखों भाई। इन कर भेद कहौं समझाई॥
पच्चीसौं का घर हम भाखा। सत्य सब्द हिरदे में राखा॥
प्रकृति पचीस कहौं समझाई। मूढ़ जीव ज्ञानी होइ जाई॥

अर्थ–हे साधुजन! पच्चीस प्रकृतियाँ यही हैं–समस्त जीवों को इन्ही से बाँधों। हे भाई! मैं पूर्णत: सच-सच कह रहा हूँ। इनका भेद मैं समझा रहा हूँ॥

इन पच्चीसों के घट का हमने वर्णन किया है (इनके वर्णन के संदर्भ में) मैंने सत्य शब्द को हृदय में रखा है–मैं इन पच्चीस प्रकृतियों को समझाकर कहता हूँ, इनसे मूढ़ जीव ज्ञानी हो उठेगा ॥

॥ प्रकृति के सुभाव ॥

१.	भाव को	सुभाव	आलस निद्रा जम्हाई।
२.	क्रता को	"	काम क्रोध बिकार।
३.	देंहधर को	"	खावै पीवै सुख बिनोद।
४.	उषमजार को	"	मोर तोर निंद्रा
५.	इंद्रजै को	"	हँसै खेलै रोवै।
६.	मोहदधि को	"	मान गुमान बड़ाई प्रभुता।
७.	सुषमजार को	"	उच्चाट भय त्रास और डण्ड
८.	मोह धन को	"	सिकार उदासी जारै बारै जीव जन्त्र मन्त्र सेवा करै।
९.	केदार खंड को	"	एक काम चित्त रहै कामिनि

		सुख।
१०. सफाकन्द को	"	चोरी से राति बिराति आवै जावै।
११. नलदया को	"	होम बहुत करै और आसा लगावै।
१२. उदासमुद्र को	"	चित चंचल छगुनिया टेढ़ा चलै कर मोड़े
१३. चंचल राज को	"	खरा लेवै खरा देवै खरी बात खरा रहै
१४. मजा गुन को	"	निडर निरभय निरमोह।
१५. मजा नन्द को	"	दया धर्म पुन्य षट कर्म।
१६. अभयानन्द को	"	तीरथ बरत मठ बनावै।
१७. चतुरदया को	"	बहुत गावै बतावै नाचै नैन उलारै।
१८. कजाकोग को	"	झूठ बोलै मीठा रहै स्वारथ रत।
१९. उचालंभ को	"	ज्ञान ध्यान गुरू सब्द कुछ न रक्खै।
२०. दया-भवन को	"	नीके कपरा खाना बिछौना नीक बसिवौ।
२१. ईस-भोग को सुझाव देव पूजै	"	फूल पत्र चढ़ावै पीछे द्रब्य माँगै।
२२. कामिनि-जोग को	"	भले मनुष्यन में रहै ऊँचे संग बैठे नीचे संग न करै अच्छी बात कहै और प्रीति न तोरै।
२३. मोहजार को	"	कुबचन भाखै पहिले दे पीछे माँगै माया तकै।
२४. नौजोग को	"	तरंग बाहिर मन भरमै शोक में रहै।
२५. भँवर-जोग को	"	मीठा बोलै कौड़ी जाते प्रान जाय।

।। चौपाई ।।

देखौ संतौ प्रकृति सुभाऊ। ये सुभाव घट माहिं रहाऊ।।

अर्थ--हे सन्तों! प्रकृति के स्वभाव को देखें--ये समस्त स्वभाव घट के भीतर निवास करते हैं।

॥ सोरठा ॥

यह सुभाव घट माइँ, भिन्न भिन्न करि भाखिया।
लेखा अजब बनाइ, चीन्हें सुरति सँवारि कै॥

अर्थ–ये स्वभाव घट के भीतर हैं–मैंने इनको भिन्न-भिन्न रूप में रखकर उनका वर्णन किया है–मैंने इन्हें आश्चर्यजनक बनाकर रखा है–इन्हें सुरति समाधि में भलीभांति सँवार कर समझो॥

॥ चौपाई ॥

घट भीतर नौ नारी भाखी। सो तुलसी ने देखा आँखी॥

अर्थ–घट के भीतर मैंने नौ नाड़ियों का वर्णन किया है। उन्हें तुलसीदास ने सही-सही देखा है–

॥ नाड़ियन के नाम ॥

१.	इड़ा	नाड़ी	६.	कर जाप	नाड़ी
२.	पिंगला	”	७.	हंस-बंदनी	”
३.	सुषमना	”	८.	हरि कामिनि	“
४.	भामिनी	”	९.	बरना	”
५.	रमना	”			

नाड़ियन के नाम

१.	इड़ा	नाड़ी	६.	कर जाप	नाड़ी
२.	पिंगला	”	७.	हंस-बंदनी	”
३.	सुषमना	”	८.	हरि कामिनि	”
४.	भामिनी	”	९.	बरना	”
५.	रमना	”			

॥ पाँच इंद्रियन के नाम ॥

१.	अपान	इंद्री	४.	उदान	इंद्री
२.	प्रान	इंद्री	५.	ब्यान	”
३.	समान	”			

इंद्रियों के नाम

१.	अपान	इंद्री	४.	उदान	इंद्री
२.	प्रान	इंद्री	५.	ब्यान	”

॥ इंद्रियन के बास ॥

१.	अपान का बास	–	नाभी में है।
२.	प्रान का बास	–	मान सरोवर तट वार है।
३.	समान का बास	–	कलेजे में है।
४.	उदान का बास	–	कंठ में है।
५.	ब्यान का बास	–	सब शरीर में है।

इंद्रियों के बास

१. अपान का बास–नाभी में है।
२. प्रान का बास–मान सरोवर तट वार है।
३. समान का बास–कलेजे में है।
४. उदान का बास–कंठ में है।
५. ब्यान का बास–सब शरीर में है।

॥ सोरठा ॥

इंद्री अर्थ बिचार, नाम भेद सब भाखिया।
ठीका ठौर निहार, यह पुकार तुलसी कहा॥

अर्थ–इन्द्रियों के अर्थ पर विचार करते हुए उनके नाम और सभी भेदों का वर्णन कर दिया है। उनके ठौर-ठिकाने को देखकर तुलसी ने यह सब पुकार कर बताया है॥

॥ सोरठा ॥

यह इंद्री का किया निषेदा। मन चीन्है सोई जाने भेदा॥
या की साखि सोत सब गाई। अब सुन्नन की कहौं लखाई॥
बाइस सुन्न सोध हम लीन्हा। ताकर भिन्न भिन्न कहुँ चीन्हा॥

अर्थ–यहाँ यह घट वर्णन इन्द्रियों का निबेध है–जिसने मन को पहचान लिया है, वही भेदों को भी जानता है। इसकी साक्षी तथा उसके स्रोतों को मैंने गान किया। अब शून्य का वर्णन करता हूँ। मैंने शोध करके बाईस सून्यों को समाया है और उनकी भिन्नताओं को मैंने भिन्न-भिन्न रूप में पहचाना है॥

॥ सुन्नन के नाम ॥

१.	धुंधार	सुन्न	१२.	नौखंड	सुन्न
२.	सब्दार	"	१३.	अलख	"
३.	नौनार	"	१४.	पलक	"
४.	अजसार	"	१५.	खलक	"
५.	बिलंद	"	१६.	झलक	"
६.	सुखनंद	"	१७.	सरवाट	"
७.	अछरंद	"	१८.	दसघाट	"
८.	सबसंध	"	१९.	खिरकाट	"
९.	ब्रह्मांड	"	२०.	अजआठ	"
१०.	सबअंड	"	२१.	सतलोक	"
११.	भौभंड	"	२२.	परमोख	"

॥ शून्यों के नाम ॥

१.	धुंधार	शून्य	१२.	नौखंड	शून्य
२.	सब्दार	"	१३.	अलख	"
३.	नौनार	"	१४.	पलक	"

४.	अजसार	"	१५.	खलक	"
५.	बिलंद	"	१६.	झलक	"
६.	सुखनंद	"	१७.	सरवाट	"
७.	अछरंद	"	१८.	दसघाट	"
८.	सबसंध	"	१९.	खिरकाट	"
९.	ब्रह्मांड	"	२०.	अजआठ	"
१०.	सबअंड ब्रह्मांड	"	२१.	सतलोक	"
११.	भौभंड	"	२२.	परमोख	"

॥ सोरठा ॥

बाइस सुन बर्तमान, जानि संत कोइ परखिहै।
गगन गगन परमान, सुन्न सुन्न भिनि भिनि लखै॥

अर्थ–इस वर्तमान बाईस शून्यों को समझ कर कोई सन्त परखेगा। शून्य के लिए आकाश ही प्रमाण है और उसमें भिन्न-भिन्न रूपों में शून्य दिखाई पड़ता है॥

॥ चौपाई ॥

सुन्न बाइस कौ भाखौं लेखा। सो कोइ साधू करै बिबेका॥
भिन्न भिन्न ग्रंथन में गाई। बूझै वोही भेद जिन पाई॥
सुन्न सुन्न निज निरनै भाखा। तुलसी निरखि देखि निज आँखा॥

अर्थ–मैंने बाईस शून्य के सन्दर्भों का वर्णन किया–उसका कोई साधु ही विवेकपूर्वक उल्लेख करेगा। यद्यपि भिन्न-भिन्न ग्रंथों में शून्य का गान किया गया है किन्तु उसे वही समझेगा–जिसने उसको प्राप्त कर लिया है। मैंने शून्य का निर्णय कहा है–अपनी इस आँखों से भलीभाँति निरख करके॥

॥ सोरठा ॥

कह निरनै निरधार, सुन्न सुन्न बिधि यों कही।
सुरति उतर गई पार, सुन बाइस वर भाखिया॥

अर्थ–शून्य की शून्य विधि को इस प्रकार से निर्धारित करके मैंने बताया है। इस बाईस शून्य का वर्णन सुनकर सुरति समाधि उस पार उतर गई अर्थात् उसने मुक्ति का अनुभव किया॥

॥ चौपाई ॥

बाइस सुन का कहौं बखाना। सुन्न सुन्न का ठौर ठिकाना॥
जो जेहि सुन्न जौन अस्थाना। भाखौं जोई सुन्न जेहि नामा॥
सत्तलोक सत के तहँ राजा। रामायन में भाख समाजा॥
सत्त केत सत नाम कहइया। ता से निरगुन ब्रह्म जो भइया॥
सोला निरगुन कहि कै भाखा। भिनि भिनि भेद कहौं मैं ताका॥
एक सुन्न इक निरगुन होई। निरगुन सुन्न एक है सोई॥
निरगुन चौधा चौधा सुन्नी। पद्रा धर्म सुन्न है भिन्नी॥
सोला सुन्न निरजन नामा। रचा ताहि ब्रह्मंड समाना॥

सत्तनाम से उपजा सोई। ऐसे सोला निरगुन होई॥
यह सब पिंड ब्रह्मंड के माई। सोला निरगुन सुन्न समाई॥

अर्थ–मैं बाइस शून्यों का वर्णन करता हूँ इस शून्य के शून्य स्थान का ठौर ठिकाना इस प्रकार है। जो जहाँ है, और जिस शून्य का जो स्थान है और उस शून्य का वैसा नामकरण क्यों हुआ है–मैं उन सबका वर्णन करता हूँ॥

सत्यलोक (एक शून्य है) में सत्यभाव के राजागण हैं–उस समाज का वर्णन रामायण में किया गया है। उनकी ध्वजा सत्य की है, उनका नाम सत्यकेतु है–उन्हीं से निर्गुण ब्रह्म उद्‌भूत हुआ है॥

सोलह निरगुणों को मैंने कहकर बताया है, उनके मैं भिन्न-भिन्न भेदों का वर्णन करता हूँ।

एक शून्य है, एक निर्गुण है, एक निर्गुण शून्य है। चौदह निर्गुण हैं और चौदह शून्य हैं–पन्द्रहवाँ शून्य भिन्न-भिन्न धर्म रूप है।

सोलहवें शून्य का निरंजन नाम है–और उसको ब्रह्मांड की भाँति रचा गया है। वह सत्यनाम से ही अवतरित हुआ है–सोलह निर्गुण इसी प्रकार के ही हैं॥

ये सभी पिंड तथा ब्रह्माण्ड के मध्य हैं इस प्रकार सोलह निर्गुण शून्य में समाये हैं॥

॥ सोरठा ॥

छै सुन बाइस माँहि रहा भेद आगे कही॥
तुलसी निरखि निहार सुन बाइस चढ़ि देखिया॥

अर्थ–बाइस शून्य में इस प्रकार छः शून्य हैं,इनके भेदों को मैं आगे कहता हूँ। तुलसी साहब कहते हैं कि इन्हें खूब समझ कर देखो। इन बाइस शून्यों के पर चढ़कर इन्हें देखा है॥

॥ मंगल ॥

सुन सुन री सखि, सैन बैन पिय के कहौं।
बोलै मधुरे बोल, चोल चित्त में सहौं॥ १॥
छिन छिन रहौं पिय, पास स्वाँस कहुँ ना रुचै।
जैसे जल बिन मीन, तलफ मन के बिचै॥ २॥
सुन सखि चैन चिनाव, भाव बिधि में मिली।
छूटी तन मन आस, पास पिय के चली॥ ३॥
चौथा भवन भौ पार, सार सुन में गई।
पुनि पंद्रा के पार, सोला सही॥ ४॥
सोला लोक मँझार, तार स्तुति से चखी।
निराकार जहँ जोति, होत हिये में लखी॥ ५॥
सत्रा सुरति चलि चाल, ताल तट देखिया।
मान सरोवर घाट, हंस तहँ पेखिया॥ ६॥
एक हंस छबि तेज, कोटि रबि राजही।
सोभा भूमि अपार, सो हंस बिराजही॥ ७॥
करि हंसन सँग केल, सैल आगे चलो।

आली अगम की साख, आँख हिये की खुली॥ ८॥
सुन अठरा के माहि, जाइ निर्ख देखिया।
आतम से परे भिन्न, परमातम पेखिया॥ ९॥
सुन्न उलट उन्नीस, चेति आगे चली।
खिरकी अजब अनूप, पुरुष ता में मिली॥ १०॥
परे पुरुष पद चीन्ह, गई सुन बीस में।
सत्त पुरुष सुख धाम, सुन्न इक्कीस में॥ ११॥
गैब नगर पिय पार, सखी सतलोक ही।
चढ़ी अगमपुर धाइ, पाइ पति पै गई॥ १२॥
सत्त पुरुष की पैज, सेज पति की लई।
गई भवन के माहिं, पाइ जस जो कही॥ १३॥
बाइस सुन बर्तमान, जान कोइ लेइँगे।
कीनी जिन जिन सैल, संत सोइ कहैंगे॥ १४॥
तुलसी निज तन तूल, मूल मन में बसी।
जिन बूझा नहिं भेद, बेद भौ में फँसी॥ १५॥

अर्थ–हे सखी-सुन लो, सुन लो, मैं अपने पति (ब्रह्म) की वाणी एवं नेत्र भंगिमाओं के विषय बताती है। वह बड़ी ही मधुरवाणी बोलता है और उसकी वियोग पीड़ा चित्त में सहती रहती हूँ॥ १॥

क्षण-क्षण में प्रिय के पास रहती हूँ, अन्यत्र कहीं मेरी श्वासवृत्ति ही नहीं रुकती और मन के बीच में होते हुए उसके लिए ऐसे तड़पती रहती हूँ–जैसे जल के बिना मछली॥ २॥

हे सखी! सुनो, मेरे चित्त की शाँति, चितवन एवं आत्मीय भाववृत्ति सभी को उनसे जुड़कर मिल गई हूँ और अब तो मैं प्रिय के पास ही चल पड़ी, अतः इस शरीर एवं मन की आशा की छूट चली है॥ ३॥

चौथे भवन (संधि) को पार करके मैं मूल तत्त्व शून्य में जा पहुँची और पन्द्रहवें शून्य के उस पार सोलहवें में आ गई॥ ४॥

इस सोलहवें शून्य के मध्य मैं श्रुति के द्वारा उसका आनन्द चखा और मैंने इसी हृदय में ही ज्योति को निराकार होते देखा॥ ५॥

सत्तहवें शून्य में सुरति साधना के द्वारा चलकर मैंने उस सरोवर तट को जाकर देखा, यह मान सरोवर का और वहाँ मैंने हंस (निर्मल आत्मा) को देखा॥ ६॥

अत्यन्त जेतवान एवं छविवान एक हंस करोड़ों सूर्य की भाँति शोभित था। उस स्थल का सौन्दर्य अद्वितीय था और वह हंस वहीं विराजमान था॥ ७॥

मैं हंसों के साथ क्रीड़ा करके पर्वत शिखर के आगे चल पड़ी–हे सखी! उस अगम के साक्ष्य से हृदय की आँखें खुल गई॥ ८॥

उस अट्ठारहवें शून्य के मध्य जाकर भलीभाँति देखा तो मुझे वहाँ आत्मा से भिन्न परमात्मा दिखलाई पड़ा॥ ९॥

मैं उस अट्ठारहवें शून्य को उलटकर उन्नीसवें की ओर चली। वहाँ एक अनुपम एवं आश्चर्यजनक खिड़की दिखाई पड़ी, जिसके अन्दर वह आदिपुरुष था॥ १०॥

उसके चरणों को पहचान कर मैं आगे बीसवें शून्य में पहुँची, और आगे इक्कीसवें शून्य में आनन्द धाम सत्य पुरुष था॥ ११॥

हे सखी! उसके बाद सामने के प्रिय नगर को पारकर मैं 'सत्यलोक' पहुँची और अगमपुर पर दौड़ कर चढ़ी तथा वहाँ पति को पाकर उस तक पहुँची॥ १२॥

सत्यपुरुष को पाने की, (इस प्रकार मेरी) मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई और पति की सेज प्राप्त की। उस भवन के मध्य मैंने जो कुछ पाया, उसे वैसा ही बता दिया॥ १३॥

बाइसवाँ शून्य आगे है–उसे समझकर कोई प्राप्त करेंगे। जिन-जिन सन्तों ने यहाँ पर्वत शिखरों पर विश्राम किया है, वही उसे बताएँगे॥ १४॥

तुलसी साहब कहते हैं कि यह शरीर रूई की भाँति नश्वर है, मूलात्मा तो चित्त में निवास करती है। जिन्होंने इसके रहस्य को नहीं समझा है, वे वेद के भवजाल में फँसे है॥ १५॥

॥ सोरठा॥

स्रुति पद परम निवास, चढ़ि अकास पति पै गई।
पिय पद सुरतिबिलास, सेज बास जल जस कही॥ १॥
पिय मोरे दीनदयाल, काटि जाल न्यारी करी।
अमर बुटी अज माल, सो पियाइ मो कौ दई॥ २॥
पिय पद पूर पियास, अमी पियाइ अमर करी।
सूरति अगम निवास, महल बास अपने करी॥ ३॥

अर्थ–वेद के परम स्थलस्वरूप उस परम निवास में स्थित शून्याकाश पर चढ़कर वह पति के पास गई। प्रिय के उस निवास स्थल (पद) के सुरति विलास में जैसे-जैसे वर्णित है, तदनुसार उसने (प्रियतम की) सेज पर रही॥ १॥

मेरा पति दीन दयाल है और उसने मेरी माया की जाल को काटकर मुझे उससे अलग किया और अजपाजाप अभी माला की अमर बूटी मुझे पिला दी॥ २॥

प्रिय पद के साथ ही मेरी प्यास पूरी हुई और उसने अमृत पिलाकर अमर कर दिया। मेरा निवास सुरति समाधि के अगम महल में हो गया और अपने साथ उस महल में रख लिया॥ ३॥

॥ दोहा॥

पिय प्रभुता निज धाम, काम टहल मो कौ कही।
रही भवन के माहिं, अमल बास मो पै नहीं॥

अर्थ–उसकी प्रभुता उसके उस भवन में दिखी और उसने अपने भवन में टहल (भृत्य कर्म) के लिए कहा। मैं इस तरह उसके भवन में रही–मुझ पर माया के नशे की गंध अब लेश मात्र भी नहीं रही॥

॥ सोरठा॥

पृथ्वी पवन अकास, नीर नास सब होइँगे।
अगिन सूर अरु चंद, बँद बास पुनि पुनि नसै॥

अर्थ–पृथ्वी, आकाश, जल, वायु इन सबका विनाश होगा, अग्नि, सूर्य, चन्द्र ये सभी माया की गंध के वश (बंद) में है, सब का बार-बार विनाश होगा॥

॥ चौपाई ॥

पिय सँग अजर अमर भया बासा। आदि अंत हमरा नहिं नासा।

अर्थ–मेरा निवास प्रिय (ब्रह्म) के साथ अजर-अमर हो उठा और अब हमारा विनाश नहीं होगा॥

॥ मंगल ॥

अमर बूटी मोरे यार, प्यार पिया ने दई।
काटी जम की जाल, काल डर ना रही॥ १॥
मैं पिय मोर अनूप, रूप पिय में गई।
दरसै एकै नूर, सूर स्त्रुति से भई॥ २॥
जुगजुग अमर अहवात, साथ पिय के सखी।
जावँ न आवों हाथ, साथ पिय के पकी॥ ३॥
नौतम निरखि निहारि, सार दसवें वही।
आगे अजब अजूब, खूब खुलि कै कही॥ ४॥
पिय मोरे दीन-दयाल, चाल चीन्हा सही।
सुख सागर सुख चौज, मौज मुख से दई॥ ५॥
अंड खंड ब्रह्मंड, कोई करता नहीं।
हमार सकल पसार, सार हम से भई॥ ६॥
धरती गगन अकास, नास सब होइँगे।
अगिनि पवन जल नास, हमीं हम रहैंगे॥ ७॥
ब्रह्मा बेद नसाय, बिस्नु सिव ना बचैं।
बचै नहीं बैराट, कहनि कहौ को पचै॥ ८॥
कोई न पावै अंत, संत हम को लखै।
तुलसी बिधि बेअंत, अंत कहि को सकै॥ ९॥

अर्थ–मेरे यार, मेरे प्रिय न प्यार की मुझे अमर बूटी दी है, उन्होंने यम के जाल को काट डाला और अब काल का भी डर नहीं है॥ १॥

मेरा प्रिय और उसके साथ मैं भी अनुपम हो उठी औ पति के रूप में ही खो गई। वेद के प्रकाश में हम दोनों का प्रकाश एकमेव हो उठा और एक तरह का दिखाई पड़ता है॥ २॥

हे सखी! मेरा सौभाग्य युग-युग तक प्रिय के साथ ही अमर हो उठा। मैं, अब गमनागमन (जाँव व आँखों) के बन्धन से मुक्त हो उठी–प्रिय के साथ ही तन्मय होकर एक जैसी (परिपक्व) हो उठी हूँ॥ ३॥

नवें तत्त्व (नवम द्वार) पूरी तरह से देख करके दसवें द्वार के सार तत्त्व को बताया है–उसके आगे तो खूब आश्चर्यजनक है–मैंने खल करके उसका अत्यधिक वर्णन किया है॥ ४॥

मेरे प्यारे दीन दयाल ब्रह्म ने मेरी गति (चाल) को भलीभाँति समझकर मुझे आनन्दमयी वस्तुओं से मुक्त आनन्द स्वाद मेरे मुख को दिया है॥ ५॥

हमारा सम्पूर्ण ज्ञान विस्तार हमसे ही हुआ है, संसार में सब कहने के लिए है–पिंड, उसके तत्त्व एवं ब्रह्मांडादि किसी के विस्तार में कोई मदद नहीं करते ॥ ६ ॥

पृथ्वी, आकाश सभी का नाश होगा–अग्नि, वायु तथा जल भी नष्ट होने वाले हैं–केवल इस सृष्टि में हम ही हम बचे रहेंगे ॥ ७ ॥

ब्रह्मा, वेद, विष्णु नष्ट हो जाएँगे तथा विष्णु, शिव भी नहीं बच पाएँगे–यह सम्पूर्ण विराट (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि-शून्यादि से सर्वत्र ब्रह्मांड रूप में व्याप्त) भी नहीं बचेगा और मैं किसी (किन सन्त जी बचै) बात कहूँ ॥ ८ ॥

हमारा अन्त कोई नहीं देख पाएगा और कोई सन्त ही हमें देखेगा। तुलसी साहब कहते है कि हमारी आत्मिक सत्त अन्तहीन (बेअंत) है–उसके अन्त (समाप्ति) के विषय में कौन कह सकता है ॥ ९ ॥

॥ दोहा ॥

बाइस सुनु बर्त्तमान, सुरति छान भिनि भिनि कही।
जानै संत सुजान, जिन चढ़ि देखा भेद सब ॥

अर्थ–सुनो, इसके बाईस रूप हैं–और इस सुरति के स्थानों को भिन्न-भिन्न रूपों में समझाया गया है। इसके विषय में वही चतुर सन्तजय जानते हैं, जिन्होंने सुरति समाधि के शिखर पर चढ़कर इसके भेदों को देखा है ॥

॥ चौपाई ॥

तुलसी संत चरन बलिहारी। चढ़े अगम जिन सुरति सम्हारी ॥
लख लख जस जस भेद सुनाई। साखी सब्द ग्रंथ में गाई ॥
महुँ पुनि चरन लागि लख बोला। जस जस कृपा संत कर खोला ॥
संत चरन सूरति भइ चेरी। मति उन सब बिधि भाँति निबेरी ॥
मैं उनकी चरनन बलिहारी। मोहि सों अजान जान कियो लारी ॥
सुन्न सुन्न बाइस कर लेखा। खुलि हिये नैन सुरति से देखा ॥
और सुन्न का भाखौं लेखा। कोइ निज संत सुरति से देखा ॥
तुलसी बूझी मोर अबूझी। जो कोइ संत सैल कर सूझी ॥
मैं अपनी गति कस कस भाखी। कहैं संत जिन देखी आँखी ॥
मैं किंकर उन पर निज दासा। जिन जिन देखा अगम तमासा ॥
सोइ सोइ देखि देखि कै भाखी। नैन से देखि पेखि उर आँखी ॥
छै सुन का पुनि भेद बताऊँ। न्यारा भिन्न भिन्न दरसाऊँ ॥
कौन सुन्न में कौन निवासा। ता कर भेद कहौं परकासा ॥
प्रथम सुन्न में है निः नामी। ता की गति मति संतन जानी ॥
दूजी सुन का भाखौं लेखा। जहँवाँ सत्तनाम को देखा ॥
तीजी सुन्न सब्द एक होई। सुरति सैल कोइ संत बिलोई ॥
चौथी सुन्न कहौं समझाई। पारब्रह्म तहँ रह्यो समाई ॥
संत ताहि परमातम भाखी। सो पुनि देखा दिये की आँखी ॥

पंचम सुन का भेद बताऊँ। पूरन ब्रह्म जीव तेहि नाऊँ॥
ता को आतम बेद बखाना। जीव नाम आतम कर जाना॥
षटवीं सुनि मन तन के माईं। इन्द्री संग तास लिपटाई॥
परमहंस तेहि ब्रह्म बतावैं। नेतहि नेत बेद गोहरावै॥
सुन तेहि मन कौ ब्रह्म बखाना। ता को नाम निरंजन जाना॥
येही निरंजन जोति कहाई। ब्रह्मा बिस्नू सिव सुत है ताही॥
तिन पुनि रचा पिंड ब्रह्मंडा। सातौ दीप और नौखंडा॥
जोति निरंजन इनको जानी। ता को संतन काल बखानी॥
यह जम काल जाल जग डारा। ज्यों धीमर मछरी गहि मारा॥
दस औतार निरंजन काला। बाँधे जीव कर्म जग जाला॥
तीरथ बरत नेम अरु धरमा। कर्म भाव कहियत है रामा॥
ता की जगत जपै मन लाई। बार बार भरमै भव माहीं॥
जग सब अंद फंद नहिं बूझै। अंधा भया हिये नहिं सूझै॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैं उन सन्त चरणों की बलिहारी जाता हूँ–जो सुरति समाधि को सम्हाल कर अगम पर्वत पर चढ़े हैं। उन्होंने उसे देख-देख कर जैसे-जैसे भेदों को बताया है, साखी एवं 'सबद' द्वारा इस ग्रंथ में गाया है॥ (यहाँ साखी का अर्थ सन्तों का साक्ष्य सब शब्द का अर्थ सन्तों का वर्णन है, मेरा अपना कुछ नहीं है॥)

मैं भी उनके चरणों में लगकर और देखकर वर्णन किया है जैसे सन्तों की कृपा होती गई, रहस्य खुलता गया। मेरी मति सन्त चरणों की दासी बन गई। मति ने ही उसी भाँति लिखकर शान्ति प्राप्त की॥

मैं उन सन्तों के चरणों की बलिहारी जाता हूँ–जिन्होंने मुझ जैसे अज्ञानी को ज्ञानी बनाकर प्रभु के प्रति संसक्त बनाया। बाईस रूपों के शून्य का वर्णन करके जिन्होंने खुले नेत्रों से सुरति समाधि में देखा॥

और मैं शून्य के विषय में क्या कहूँ, किसी-किसी सन्त ने उसे अपनी सुरति समाधि में देखा है। तुलसी साहब कहते हैं–जो मुझे कभी अबूझ थी, सन्तों की कृपा से उसे समझा। यह सन्तों की ही कृपा थी कि उन्हें भी कभी दुर्नाम शिखर पर वह प्रतीत हुई होगी॥

सन्तों ने जिसे आँखों से देखकर बताया है, मैं अपनी उस गति का कैसे-कैसे वर्णन करूँ? मैं उन सन्तों का सेवक तथा दास हूँ जिन्होंने अपनी प्रज्ञा से उस अगम तमाशे को देखा है॥

किस शून्य में किसका निवास है, उनके भेदों को मैंने प्रगट रूप से कहा है। प्रथम शून्य में नि:नामी है–जिसका ज्ञान तथा जिसकी थाह सन्त ही जानते हैं॥

मैं दूसरे शून्य का वर्णन बता रहा हूँ जहाँ 'सत्य नाम' का अस्तित्व है। तीसरा शून्य एक शब्द मात्र है–जहाँ कोई-कोई सन्त सुरति समाधि में विलीन रहते हैं॥

मैं चौथे शून्य को समझाकर कहता हूँ–जहाँ पार ब्रह्म समाया रहता है। सन्तगण उसे ही परमात्मा कहते हैं–जिसको वे हृदय की आँख से देखते हैं॥

मैं पंचम शून्य का भेद बता रहा हूँ। उसका नाम पूर्णब्रह्म जीव है। वेदों ने उसे आत्मा तत्त्व कहा है–और जीव का नाम ही आत्मा है॥

छठें शून्य के विषय में सुनो, वह मन तथा तन में निरन्तर है। उसी के साथ सम्पूर्ण इन्द्रियाँ संसक्त हैं–परमहंस साधुगण उसे ही ब्रह्म कहते हैं और वेदादि उसे नेति नेति (जिसक अन्त नहीं है) कह कर बुलाते रहतें हैं॥

सुनो! उसी मन को ब्रह्म कहा गया है और उसी का नाम निरंजन जाना जाता है। निरंजन की ज्योति यही कही जाती है और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव उसके पुत्र हैं॥

उसी ने ही पिंड एवं ब्रह्मांड की रचना कर रखी है—सातों द्वीप तथा नवों खण्ड को उसी के रचे हुए हैं। इनको निरंजन रूप ज्योति समझो। सन्तों ने उन्हीं को 'काल' कहकर बखाना है॥

यम के सहायक इस काल ने संसार में (मृत्यु का) जाल डाल रखा है और जैसे निषाद या मल्लाह जाल में मछली पकड़ कर मार डालते हैं, वैसे काल भी (सबका विनाश करता है) काल ही निरंजन के दसों अवतार है और उसने जीव को सांसारिक कर्म जाल में बांध रखा है॥

तीर्थ, नियमाचरण, व्रत एवं ब्रह्म का कर्म भाव माना जाता है। जिस राम का यह संसार निरन्तर जाप करता रहता है, वह बार-बार इस भवसागर में बार-बार भ्रमित होता है॥

सारा संसार अंधा (अंद–अंध) है, उसे यह भवसागर का बंधन (फंद) सूझता नहीं, सामने रहते हुए भी उसे देख नहीं पा रहा है, वह अन्धा हो गया है॥

॥ दोहा ॥

आदि अंत का भेद कह तुलसी देखा सही।
लेखा अगम अलेख लखि अगाध अदबुद कहा॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने आदि अन्त का भेद सही-सही देखा है, उस अकथनीय और अलक्ष्य को मैंने देखा है–और उसे देखकर ही मैं उसकी अगाध एवं अद्‌भुत कथा कह रहा हूँ॥

॥ छन्द ॥

तुलसी गति गाई अगम सुनाई। सुन्न सुन्न भिन्न भिन्न कही॥
जस जस जेहि लेखा निज निज देखा। आदि अन्त गति सार भई॥
संतन गति गाई महुँ पुनि पाई। जो उतपति सब आदि भई॥
जिनही जिन जानी सबहि बखानी। तुलसी उनके लार लई॥

अर्थ–तुलसी ने अगम्य तत्त्व के ज्ञान को गाकर सुनाया और शून्य के भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन किया। अपने प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा जिसे-जिस-जिस रूप में देखा–मैंने आदि अन्त से युक्त उनके सार तत्त्व का वर्णन किया॥

जो इनकी अनादिमयी उत्पत्ति है, उसकी गति का गान सन्तों ने किया। जिन-जिन्होंने इसे समाया, उन्होंने इसका वर्णन किया है–तुलसीदास तो उनके प्रेम में डूबे हुए हैं॥

॥ सोरठा ॥

सब में कहा विचार सार पार गति पाइके।
बूझै बूझनहार जिन में चाखा अगम रस॥ १॥
तुलसी तिरन समान अगम भान घटि लखि परा।
सूझा निज घर धाम यह अनाम गति यों कही॥ २॥

अर्थ–उस सार तत्त्व के उस पार उसके ज्ञान को प्राप्त करके, सबमें उसके प्रति क्या विचार हैं–उसका वर्णन कोई बूझने वाला ही कर सकता है और विशेष कर वह जिसने उस अगम के रस के सार तत्त्व को चख लिया है॥ १॥

इस घट में वह अगम्य ज्ञान सूर्य तृण के समान दिखाई पड़ा है–उसी से यह आत्मगृह सुझाई पड़ा है, उस (सन्त ही) ने उस अनाम की गति को इस प्रकार वर्णित कर सकता है॥ २॥

॥ चौपाई ॥

नभ घट भूमी भान दिखाना। लखि लखि लखा भेद जिन जाना॥

अर्थ–आकाश में, घट में तथा भूमि में सूर्य दिखाई पड़ा–जिन्होंने इसके भेदों को जाना है–उसे बार-बार देखकर समझा है॥

॥ सोरठा ॥

घट भूमी बिच भान, जानि भेद भिन जिन कही।
सखि सुन देस बयान, रमक रीति उलटी लखी॥

अर्थ–घटाकाश की भूमि के बीच में सूर्य है–जिनके भेदों को समझकर सन्तों ने भिन्न भिन्न रूपों में कहा है। हे सखी! उस देश का वर्णन सुनों–वहाँ की व्यवस्था रीति (रमक रीति) उल्टी दिखाई पड़ती है॥

॥ कहेरा ॥

सुन हो सखी इक दिसवा। भूमी ऊगै भान।
दिसवा की उलटी रीति। साधू पालै प्रीति॥ टेक॥
मछरी गगन पर गाजा। चंदा चुनै नाम।
दिसवा उरध-मुख कुइया। गइया चुगै चाम॥ १॥
गगन उठै धधकारी। धरै सूरति ध्यान।
खम्भा न महल अटारी। प्यारी पिव धाम॥ २॥
तारा अवर नहिं पानी। बानी उठै बिन तान।
खिरकी खुली बिन द्वारे। पारे परे ठाम॥ ३॥
नइया कुटी भौ पारा। उतरै बिन दाम।
तुलसी अगम गम जानी। स्त्रुति पायो जिन नाम॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! उस एक देश (दिशा) बारे में सुनो, सूर्य पृथ्वी पर उगता है। उस देश (दिशा) की उल्टी चलन है–सन्तजन प्रीति में फँसे रहते हैं॥

आकाश में मछलियाँ उछलती रहती हैं या शोर करती रहती है चन्द्रमा केवल (राम) नाम को चुनता है। उस देश में कुएँ ऊर्धमुखी (ऊपर की तरह मुँह वाले) होते हैं और गाएँ चमड़े को खाती रहती हैं॥ १॥

गगन रह-रह कर धधक उठता है, और सुरति का धयान लगा रहता है। न खम्भा है, न महल है, न अटारी है–बिना किसी आश्रय के प्रिया अपने पति के धाम पर निवास करती है॥ २॥

नीचे (अवर) कोई तालाब (तारा) तथा जल नहीं है, और वहाँ बिना तान के वाणी उठती रहती है। बिना द्वार के खिड़की खुली हुई है और उसके आगे ही (रहने लायक) स्थान भी है॥ ३॥

सन्त नाव से उस कुटी के पार हो जाता है किन्तु कोई उतराई नहीं देनी पड़ती। तुलसी साहब कहते है कि मैंने अगम्य को समझ लिया है और वेदों में (ज्ञान के प्रकाश में) अपना नाम प्राप्त कर लिया है॥ ४॥

॥ सोरठा।

साहिबै एक अनाम, अगम धाम संतन लखा।
भखा भेद जिन जान, तिन तिन बरनि सुनाइया॥

अर्थ–स्वामी (ब्रह्म) एक है और अनाम है, उसका धाम अगम्य है, ऐसा सन्तों ने देखा है–जिन्होंने उसे जाना है–उसके स्वरूप वेद जो वर्णन किया है और बार-बार उसका वर्णन करके सुनाया भी है।

॥ चौपाई॥

अब अनाम इक साहिब न्यारा। सुन्न और महासुन्न के पारा॥
वो साहिब संतन कर प्यारा। सोइ घर संत करैं दरबारा॥
वा घर का कोई मरम न जाने। नानक दास कबीर बखाने॥
दादू और दरिया रैदासा। नाभा मीरा अगम बिलासा॥
और अनेक संत कहि गाये। जे जे अगम पंथ पद पाये॥
तुलसी मैं चरनन चित चेरा। उन रज चरनन कीन्ह निबेरा॥

अर्थ–मेरा एक साहब (पारमात्मा) अनाम और विलक्षण है वह शून्य तथा महाशून्य के भी पार स्थित है। वह स्वामी सन्तों को प्रिय है और सन्तगण उसी के घर में दरबार लगाते हैं॥

उस घर का मर्म कोई नहीं जानता, ऐसा नानक एवं कबीरदास कहते हैं। सन्त दादू, दरियादास एवं रैदास, नाभादास, मीराबाई आदि उसके अगम्य आनन्द विलास को जानते हैं॥

अनेक सन्तगण भी कह गए हैं कि जिन्होंने उसके अगम्य पद को प्राप्त कर लिया है, ऐसे अनेक सन्तगण भी कह गए हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं उनके चरणों का मन से दास हूँ और उन्हीं के चरण रजों से इस परमतत्त्व का विवेचन किया है।

॥ सोरठा॥

संत चरन निज दास, तुलसी ताहि बिचारिया।
पायौ जिन घर बास, आदि अनामी लखि कह्यौ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैं सन्त चरणों का सेवक हूँ और मैंने उन्हें मैंने अच्छी तरह से विचार कर रखा है उस आदि तथा अनादि ब्रह्म को देखकर कह रहा हूँ कि मैंने अपने आत्मस्वरूप गृह में निवास प्राप्त कर लिया है।

बरनन चार गति बैराग

॥ चौपाई॥

अब बैराग जोग गति गाऊँ। ज्ञान भक्ति भिनि भिनि दरसाऊँ॥
चारि गति बैराग बताऊँ। जोगी चारि गती गति गाऊँ॥
तीनि ज्ञान का भेद बताई। चौथा ज्ञान जगत जग माई॥
तेरा भक्ति भेद बतलाऊँ। भिन्न भिन्न कर कहि समझाऊँ॥
न्यारा भेद भाव सब केरा। जो जस जिनका भया निबेरा॥
जो जिनकी करनी जस भाँती। सो सब संतन कही सनाथी॥
मैं रज पावन उन कर चेरा। निरनय कहौं छानि इन केरा॥

अर्थ—अब मैं वैराग्य तथा योग के ज्ञान का वर्णन करता हूँ। उसी के साथ ज्ञान तथा भक्ति को भी भिन्न-भिन्न रूपों में बतलाऊँगा। वैराग्य की चार अवस्थाओं का वर्णन करूँगा और योगियों की चार गतियों का भी गान करूँगा॥

ज्ञान की तीन गतियों का भेद बतलाकर और चौथे ज्ञान को जो जगत में स्थित है—उसका वर्णन करूँगा। भक्ति के तेरह भेदों का वर्णन करूँगा और भिन्न-भिन्न करके उनके विविध रूपों का वर्णन करूँगा॥

सभी भक्ति के भेद भाव न्यारे हैं—जिनसे उनके स्वरूप का स्पष्टीकरण (निबेरा) हो सके, उसका वर्णन करूँगा। जिनका जैसा स्वरूप है और जैसा भेद है—उन सबको सन्तों ने विश्वास भाव (सनाथी) से कहा है।

मैं उन सन्तों के चरणों की पवित्र धूलि का दास हूँ, और उन्हीं का मत समझकर मैं उनका वर्णन करूँगा॥

॥ सोरठा ॥

भक्ति ग्यान और जोग, भोग भाव सब विधि कहीं।
जो जेहिं गति जस भोग, सो तस करौं विचारि कै॥

अर्थ—भक्ति ज्ञान तथा योग, भोग एवं अन्य भावों का हर प्रकार से वर्णन करूँगा। जो जिस गति एवं जिस भोग में जीवन जी रहा है, उन सबका मैं विचारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ॥

॥ प्रथम बैराग ॥

॥ चौपाई ॥

अब बैराग तीनि गति गाऊँ। भाखौं भेद भिन्न दरसाऊँ॥
बेरक्ती बैराग सुनाऊँ। ता कर चिन्ह भिन्न बतलाऊँ॥
माया मोह जगत नहिं भावै। काम रु क्रोध लोभ नहिं लावै॥
और जगत सँग रहै उदासी। जग संसार करत सब हाँसी॥
त्यागी अति संतोष समावा। भूख प्यास निद्रा न सतावा॥
और अनेक भाँति रस त्यागी। बन बसि रहै नाम अनुरागी॥
बिन सतगुरू धूरि सब जाना। संत सुरति बिन भरमै खाना॥
जो कोइ त्याग लाग मन कीन्हा। संगल दीप भोग तेहि दीन्हा॥
जो जेहि त्याग भाग जस पावा। सुरति सब्द बिन भौ में आवा॥

अर्थ—अब वैराग्य की तीन गतियों का वर्णन कर रहा हूँ और उनके भिन्न-भिन्न भेदों को दिखला रहा हूँ। 'विरक्ति' वैराग्य का वर्णन कर रहा हूँ तथा उसके भिन्न-भिन्न लक्षणों को बतला रहा हूँ॥

विरक्त सायासी को इस संसार के माया-मोह भाते नहीं और कभी काम, क्रोध एवं लोभ के वशीभूत नहीं होता। वह संसार की संसक्ति से उदासीन रहता है और सारा संसार उसकी हँसी करता रहता है।

वह त्यागी है तथा उसमें सन्तोष भाव समाया हुआ है। उसे भूख प्यास एवं निद्रा पीड़ित नहीं करते। उसने अनेक रूपों की संसक्तियों रस-वासनाओं का त्याग कर रखा है। वन में निवास करता हुआ केवल परमात्मा के नाम में अनुरक्त रहता है॥

बिना सतगुरु (परमात्मा) के वह सम्पूर्ण जगत को धूलि की भाँति समझता है—सन्तों की सुरति योग के बिना कर दर दर (खाना) भटकता रहता है।

जिस किसी ने भी त्यागपूर्वक उस परमात्मा में मन लगा दिया वह सिंघल द्वीप (सिद्ध भूमि) में निरन्तर आनन्द करता रहेगा ॥

॥ द्वितीय वैराग ॥

॥ चौपाई ॥

परम जोग बैराग बताऊँ। रहनी चाल ताहि दरसाऊँ ॥
अष्ट कँवल उलटै हिये माईं। उलटै कँवल तत्त मन लाई ॥
निस दिन तत्त मती गति राखै। पाँचो तत्त गती सोइ भाखै ॥
तब तन छूटे तत्त समाई। चारि तत्त जिव उपजै जाई ॥
फिर तन छूटै खानि समाना। सो पुनि करै जो लेइ निदाना ॥

अर्थ–परम जोग वैराग्य के विषय में बता रहा हूँ–उसकी दिनचर्या एवं आचरण (रहनी) का वर्णन करता हूँ। उसने चित्त में स्थित अष्ट कमलदल को उल्टा कर दिया है और उस उल्टे कमल से जुड़े तत्त्व में चित्त लगाए रहता है ॥

रात-दिन वह मूल तत्त्व (ब्रह्म) की गति का वर्णन करता रहता है और पाँचों तत्त्वों की गति का वह वर्णन करता रहता है ॥

उसके बाद जब उसका शरीर विनष्ट होता है तो वह परमतत्त्व में विलीन हो जाता है और वह चार तत्त्वों एवं जीव के साथ पुनः उत्पन्न होता है। इसके पश्चात् उसका चित्त भण्डार की तरह दूर जाता है–इसको वही कर सकता है–जो इसके फलों को धारण करने की आकांक्षा करता हो ॥

॥ त्रितीय बैराग ॥

॥ चौपाई ॥

त्याग बैराग कौ बरनि सुनाई। छूटै देंह खानि गति पाई ॥
जो जस त्याग भोग तन तैसा। खान पान तन पावै जैसा ॥

अर्थ–त्याग वैराग्य का मैं वर्णन करके सुनाता हूँ–उसकी देह छूटने पर इसे सम्पन्नता की गति प्राप्त होती है। उसका जैसा त्याग होगा, या जैसा भोग होगा–उसी प्रकार उसका शरीर होगा, वह अपने कर्म के अनुसार ही खान-पान तथा शरीर प्राप्त करेगा ॥

॥ चतुर्थ बैराग ॥

॥ चौपाई ॥

तन त्यागी बैरागी भाई। जो जेहि लिया देन सोइ जाई ॥
बार बार छूटै तन जाइ। छूटै तन तहँ गर्भ समाई ॥
वहि वहि देह खाइ पुनि जाई। ऐसे भर्म खानि भरमाई ॥
बिना सुरति नहिं पावै पारा। भरमै भोग परै भौ धारा ॥

अर्थ–त्वह बार-बार शरीर छोड़कर माता के गर्भ में जाता है–उसे देकर वह पुनः खाता हुआ अपना जीवन व्यतीत करता है, ऐसे भ्रम की खानि में वह भटकता रहता है। बिना सुरति ज्ञान के वह भवसागर से पार नहीं हो पाता–क्योंकि वह संसार सागर की योग धारा में बहता हुआ निगरन्तर भरमता रहता है ॥

॥ सोरठा ॥

चारौ गति वैराग सुरति लाग न्यारी रही।
सत मत गति कोइ जाग संत सरनि उबरा सोइ॥

अर्थ—ये चारों गति वैराग्य की हैं—इसमें सुरति में लगी हुई चित्तगति विलक्षण है—कोई ही सन्तमति का व्यक्ति संसार में जगता है—और सन्तों की शरण में जाकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥

॥ वरनन जोग ॥

॥ प्रथम जोग ॥

॥ चौपाई ॥

चारों गति बैराग बखाना। आगे कहौं जोग सधाना॥
पिरथम परम जोग गति गाऊँ। भिन्न भिन्न तेहि को दरसाऊँ॥
मुद्रा पाँच . अवस्था चारी। तीनि ज्ञान पुनि बानी चारी॥
सहस कँवलदल सुरति लगावैं। आतम तत्त अकास समावै॥
पुनि तन छूटि पावै नर देही। भोग भुगति पुनि भव रस लेही॥
पावै मुक्ति बास कर चीन्हा। मुक्ति भोग पुनि होइ अधीना॥

अर्थ—वैराग्य की चारों गतियों का वर्णन कर रहा हूँ। आगे योग के लक्ष्य (संधान) का वर्णन करूँगा। प्रथम परम योग की गति का गान करता हूँ। उसके भिन्न-भिन्न स्वरूपों को भी स्पष्ट करूँगा।

पाँच मुद्राएँ हैं, चार अवस्थाएँ, तीन ज्ञान हैं, तथा चार वाणियाँ हैं। सहस्र कमल दल पर जो सुरति ध्यान लगाता है, और आत्म तत्त्व के साथ जो शून्य में समा जाता (विलीन हो जाता) है। पुनः शरीर छूटने पर वह मनुष्य की देह प्राप्त करता है फिर अनेक प्रकार के भोगों एवं संसार की आनन्दमयी वासनाओं का भोग करता है। अन्त में, वह मुक्ति का निवास प्राप्त करता है, फिर मुक्ति और भोग दोनों उसके अधीन हो उठते हैं॥

द्वितीय जोग

॥ चौपाई ॥

दूजा जोग कहौं समझाई। इड़ा पिंगला सुषमनि माईं॥
बंक नाल पट मारग जाई। मन भया भिन्न सुन्न के माईं॥
देखै जोति निरखि निज नैना। तन छूटै सुपने की सैना॥
जो कछु कर्म भाव जग कीन्हा। छूटै देंह भोग फल लीन्हा॥
सुरति सब्द बिन भये अचीन्हा। ता सों हो गये जोग अधीना॥
बिन सतसंग भेद नहिं पावै। ता ते कर्म भोग भव आवै॥

अर्थ—अब मैं दूसरे योग का समझाकर वर्णन कर रहा हूँ। इसका सम्बन्ध इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना से है। बंक नाल के छः सन्धियों के मार्ग से जाता हुआ इस साधक का मन शून्य में पहुँच जाने के कारण लोकजन से भिन्न हो उठता है।

वह अपने नेत्रों से उस परम ज्योति को देखता है और उसकी मृत्यु भी स्वप्न की ही भाँति होती है। उसने संसार में जो भी कर्म तथा भावनाएँ की हैं—देह छूटने पर उसके अनुसार फल भोग प्राप्त होता है।

वह साधक सुरति ज्ञान से सर्वथा अपरिचित (अचीन्हा) रहता है इसलिए वह उसी योग के ही अधीन बना रहता है। (इसने सतसंग नहीं किया हैं) इसलिए सत्संग के बिना ज्ञान (भेद) नहीं समझ में आता–इसीलिए वह पुर्नजन्म लेकर सांसारिक कर्म भोगों में आता है।

॥ सोरठा ॥

जोग जुगुति गति गाइ, नहिं अकाय गति पायऊ।
बिन सतसंग नसाइ, सुरति सब्द चीन्हें बिना॥
ज्ञान गती कथि गाइ, जो अघाइ आगे कही।
ताहिं पाइ मति माइ, सो तुलसी सब बिधि कही॥

अर्थ–योग युक्ति (तरीकों) की गति गाकर निष्काम गति नहीं प्राप्त की जा सकती। सुरति शब्द की पहचान किए बिना तथा सत्संगति से रहित सारा जीवन नष्ट हो जाता हैं।

मैंने ज्ञान की गति का वर्णन किया है–जो साधुजनों की तृप्ति का कारण होता है उसे मैं आगे कहूँगा–हे सन्तों, उसे ज्ञान के अन्तर्गत प्राप्त करो–इसका वर्णन मैं (तुलसीदास) आगे करूँगा॥

॥ बरनन ज्ञान ॥

॥ प्रथम ज्ञान ॥

॥ चौपाई ॥

अब सुनु ज्ञान ठान गति गाऊँ। ता का भेद भाव बतलाऊँ॥
रेचक पूरक कुम्भक कहिये। ता का भेद सबै सुनि लैये॥
चारि अवस्था तन में भाखी। तुरिया तत्त चारि अभिलाखी॥
परमहंस ता की मति जाना। मन करता को ब्रह्म बखाना॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति कहाई। तुरिया चौथी भेद न पाई॥
तुरियातीत बसै वोहि पारा। सुनि पुनि है मन का ब्यौहारा॥
मनमत चलै मान मद माई। मन करता को ब्रह्म बताई॥
ता ते भौ गति मति नहिं पावै। बार-बार भौ माहिं समावै॥
सतगुरु सब्द भेद नहिं जानै। आपी आप ब्रह्म मन मानै॥
सास्तर सिंध सार बतलावै। ता ते भौजल पार न पावै॥
चीन्है संत सुरति गति न्यारी। तौ पुनि उतरै भौजल पारी॥
आपा आप पाप गति खोवै। तब सतसंग संत गति जोवै॥

अर्थ–अब ज्ञान की स्थिति (ठाम) सुनों, मैं उसकी गति का गान कर रहा हूँ और मैं उसके भेद तथा भाव की गति बतला रहा हूँ। रेचक, पूरक, कुम्भक इसे कहा जाता है और सभी भेदों को सुन लें॥

शरीर की चार अवस्थाएँ कही गई हैं–(जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति) के साथ तुरीया गति की अभिलाषा की जाती हैं। इसकी गति परमहंस ही जानते हैं तथा इस कर्त्ता मन को ही ब्रह्म कहा जाता है॥

मन की अवस्थाएँ जागृति, स्वप्न एवं सुषुप्ति कही जाती हैं–इसके चौथे भेद तुरीया को सामान्य जन नहीं प्राप्त करते। मन की अन्तिम व्यवहार दशा यह है कि वह तुरीयातीत होकर उसके उस पर निवास करता रहे॥

म.तादि को मन में विलीन करके मन के अनुसार आचरण करे तथा कर्त्ता मन को ब्रह्म समझे। इससे व्यक्ति भवसागर को भोगने की स्थिति नहीं प्राप्त करेगा किन्तु इसके विपरीत बार-बार भवसागर में भोग की गति प्राप्त करता है। जो 'सतगुरु' शब्द का अर्थ नहीं समझता, और स्वयं अपने -आप को ही ब्रह्म मानता है, शास्त्रों को ज्ञानसिन्धु का सार तत्त्व समझता है, वह इस मायाजाल (भौजल) से मुक्ति नहीं पाता ॥

जो सन्तों को पहचानता है, उनकी विलक्षण सुरति गति (ज्ञान) को जानता है, वही इस सांसारिक प्रपंचों से मुक्त होता है। आत्म ज्ञान से स्वयं जो पापमयी वृत्ति को नष्ट कर देता है, वही सत्संगति द्वारा संत गति को प्राप्त करता है ॥

॥ द्वितीय ज्ञान ॥

॥ चौपाई ॥

औरहि ज्ञान सुनौ जग केरी। बेद पुरान जाल भौ बेरी ॥
पंडित पढ़ पढ़ ज्ञान सुनावै। आदि गती गम भेद न पावै ॥
झूठी आस बास सब केरी। फिरि फिरि स्वाँस आस भौ बेरी ॥
जो जो कर्म करै सोइ पावै। बार बार भौ भटका खावै ॥
मन में मान मोट कर जानै। ता ते परै नरक की खानै ॥
भक्ती भाव भेद नहिं पावै। ऊँची जाति मान मन लावै ॥
साधु संत मन में नहिं आवै। ऊँचा ज्ञान आप ठहरावै ॥
नीचा होइ संत को जानै। संत कृपा कछु जानै आनै ॥
संतन भेद बेद से न्यारा। नीच होइ पुनि पावै सारा ॥
ऊँचा मान सदा मन राखै। सोइ सब जगत जीव कह भाखै ॥
पूजन अपनी चाल बतावै। ऐसे सकल जीव भरमावै ॥

अर्थ—संसार के अन्य ज्ञान के विषय में सुनें। वेद पुराणादि तो भवसागर के लिए बेड़ी बन्धन (बेरी) जैसे हैं। पंडित इन्हें पढ़-पढ़कर ज्ञान कहता है, और वह आदि ज्ञान की समझ और उसके भेदों को नहीं समझता ॥

आशा, वासनाएँ (वास) सब कुछ झूठ हैं—पुनः पुनः श्वास की आशा (जीवन) भवसागर के लिए बेड़ी बन्धन (बेरी) बन जाता है। जो जो कार्य करता है, उसी का फल उसे मिलता है—और वह वासना के संसार में भटकता रहता है ॥

मन की आकांक्षाओं का वह लक्षण (मोह) मान बैठता है, इसीलिए वह नरक की खान में पड़ता है। वह भक्तिभाव का रहस्य नही समझ पाता और जातियों को श्रेष्ठ मानकर उनमें मन लगाता है ॥

साधु संगति का भाव उसके मन में नहीं उत्पन्न होता और अपने ज्ञान को ही सर्वोच्च ठहराता है। वह जब लघुता के भाव से सम्पन्न होगा तो संतों को समझेगा, फिर सन्तों की कृपा से थोड़ा बहुत ज्ञान उत्पन्न होगा। संतों के भेद वेद ज्ञान से भी विलक्षण है और सब कुछ लघुता से ही व्यक्ति प्राप्त कर सकता है।

उच्च मानदण्ड सदैव ही रक्षा करते हैं और वही सम्पूर्ण संसार एवं जीवों के रूपों का निरूपण करता है। इससे भिन्न केवल अपने अनुसार अन्य पूजा आदि की विधियाँ बताते हैं, ऐसे व्यक्ति सभी के लिए भ्रम उत्पन्न करते हैं ॥

॥ सोरठा ॥

यहिं बिधि जग मत ज्ञान पंडित भूले भरम में।
वाक ज्ञान परमान संत भेद चीन्हें नहीं॥

अर्थ–इस प्रकार से सांसारिक ज्ञान है, शास्त्रकार पंडित भ्रम में भूले हुए हैं–जहाँ तक सन्तों का प्रश्न है, वे किसी तरह के भेद भाव को नहीं पहचानते। उनके लिए केवल वाक् ज्ञान (सही-सही रूपो में शब्दों का गया) ही प्रमाण है॥

॥ चौपाई ॥

अब सुनु भक्ति भाव कर लेखा। रामायन में कीन्ह बिबेका॥
भक्ति भाव नौ बरनि सुनाई। ता से भिन्न चारि पुनि भाई॥
नौ फल भाव बेद बतलावै। जो जस करै भोग तस पावै॥
नौ की राह मुक्ति नहिं पावै। दसवीं अविरल भक्ति लखावै॥
एकादस अनुपावन लेई। बार बार मुक्ती बर देई॥
भेद भक्ति कर भाखौं लेखा। इष्ट भाव मन बसै बिबेका॥
अब अभेद का भेद अभेदा। ता को परम न पावै बेदा॥
कोइ कोइ साध संत गति पाई। जिन की सूरति सब्द समाई॥
सूरति सैल करै असमाना। जोगी पंडित परम न जाना॥
परमहंस सन्यासी भाई। उन का मरम नहीं उन पाई॥
जगत जाल संसार बिचारा। उनकी गति कोइ पावै न पारा॥

अर्थ–अब भावभक्ति का वर्णन सुनें। मैंने रामायण में उसका विवेक (स्पष्ट निरूपण) किया है। मैंने नौ प्रकार के भक्तिरूपों का वर्णन करके बताया है–उनसे भिन्न चार प्रकार के और भी भक्ति भेद हैं।

वेद या शास्त्र परम्परा नवधा भक्ति के फलों के स्वरूप का वर्णन करते हैं–जो जिस प्रकार की भक्ति करता है–वह उसी प्रकार का फलभोग प्राप्त करता है। नवधा भक्ति के मार्ग पर चलने से मुक्ति नहीं मिलती। दसवीं अविरल भक्ति का मार्ग दिखाती है। एकादश भक्ति अनुपावन (आत्म शुद्धि) होती है और यह भक्ति बार-बार श्रेष्ठ मुक्ति देती है।

अब भेद भक्ति का वर्णन करता हूँ इससे इष्ट भाव के प्रति मन में विवेक उत्पन्न होता है। अब अभेद रूप अभेद भक्ति का भेद बताता हूँ उसका रहस्य वेद को भी नहीं ज्ञात है। इसका ज्ञान किसी-किसी साधु सन्त को प्राप्त होता है–इसका ज्ञान सुरति समाधि में समाविष्ट है॥

सुरति समाधि द्वारा जो शून्य (आकाश) में स्थित शिखर पर है, योगी तथा पंडितजन भी उसके मर्म को नहीं जानते। परमहंस एवं सन्यासी भी उनका रहस्य नहीं जान पाए हैं। यह बेचारा मनुष्य संसार जगत जाल में फँसा पड़ा है–उनकी गति का कोई पार नहीं पा सकता॥

॥ सोरठा ॥

तेरा भक्ति बयान, सो प्रमान संतन कही।
तुलसी तनहिं बिचारि, सुरति भेद समझै कोई॥ १॥
नौ जग माहिं पसार, दसवीं कछु कछु भिन्न है।

एकादस मुक्ति मँझार, द्वादस गति मति मुक्ति मय॥ २॥
अब अभेद गति गाइ, तेरह येहि बिधि यों कही।
ये साधन के माइँ, सुरति सब्द जा ने लखी॥ ३॥

अर्थ–सन्त तुलसी साहब कहते हैं कि उनकी भक्ति के वर्णन का प्रमाण वही है, जो संतों द्वारा किया गया है। जरा विचार करके देखो, सुरतिभेद (रूपी भक्ति) कोई समझता नहीं है॥ १॥

नवधा भक्ति का संसार में प्रचलन है, दसवीं भक्ति कुछ-कुछ भिन्य है, एकादश भक्ति के लिए वही आधार है और बारहवीं भक्ति ज्ञानमय, विवेकमयी एवं मुक्तिमयी है॥ २॥

इस अभेद भक्ति का वर्णन करके मैंने इस प्रकार तेरह भक्ति रूपों का वर्णन किया है–जिसने सुरति 'शब्द' देख लिया है, उनके लिए ये सब साधन हैं या मार्ग हैं॥ ३॥

॥ छन्द॥

चारौ बैरागा जोग समाधा। तीनि ज्ञान गति गाइ दई।
नौ चारौ भक्ती जो निज उक्ती। भाषि भेद सब गाइ कही॥
जो जिन जानी संत बखानी। चरन चेत चित लाइ लई॥ १॥
सूरति सर चेती छाँड़ि अचेती। सुरति सैल नभ माहिं लई।
फोड़ा असमाना निरखि ठिकाना। पछिम किवारी द्वार गई॥ २॥
परमातम पाया जीव छुड़ाया। पारब्रह्म पद कँवल मई।
कँवला निज फूला मिटि गया सूला। जीव गती तजि ब्रह्म भई॥ ३॥
आगे इक द्वारा अगम पसारा। सत्तलोक वोहि नाम कही।
वहँ है सतनामा ब्रह्म न जाना। वे सत साहिब अगम सही॥ ४॥
तीनों से न्यारा लोक पसारा। चौथे पद के पार वही।
जहँ है निःनामी कोउ न जानी। तीनों पट के पार रही॥ ५॥
कहौं अगम अनामी ठीक न ठामी। संतन जानी सार सही।
अंबर असमाना मही न भाना। चाँद सुरज तत तारे नहीं॥ ६॥
पानी नहिं पवना अगिनि न भवना। वेद भेद गति नाहिं लई।
ब्रह्मा नहिं बिस्ना राम न किस्ना। सिव सिद्धी नहिं पार लई॥ ७॥
निर्गुन नहिं सर्गुन नहिं अपबर्गुन। पिंड ब्रह्मंड दोउ नाहिं कही।
जोती नहिं सोती अगम न होती। पारब्रह्म की आदि नहीं॥ ८॥
नहिं कार अकारा नहिं निरकारा। सत्त नाम सत सत्त रही।
नहिं नाम अनामी तुलसी जानी। जाइ समानी सार मई॥ ९॥

अर्थ–चारों प्रकार के वैराग्य, योग, समाधि तथा तीन ज्ञानों की गतियों का वर्णन करके वतला चुका हूँ। तेरह (नौ + चार) प्रकार की भक्ति के सम्बन्ध में अपने मत आदि का वर्णन करके उनके भेदों का निरूपण किया॥

इनमें से जो इसको जान ले रहा सन्त कहा जाएगा और मैंने उसके निर्मल चरणों में चित्त को लगा लिया है॥ १॥

अज्ञानता (अचेती) का त्याग करके सुरति रूपी सरोवर का स्मरण करो (ध्यान करो) और सुरति के पार स्थित ध्यान के पर्वत शिखर के आकाश पर ध्यान लगाओ। उस आसमान को तोड़कर अपने ठिकाने को देखो और मैं पश्चिमी किवाड़े के द्वार पर पहुँचा॥ २॥

वहाँ परमात्मा मिला और इस जीवत्व के बन्धन से मुक्ति मिली और पारब्रह्म के चरण कमलमय हो उठे॥ स्व कमल पुष्पित हुआ-जन्म जन्मान्तर की पीड़ा समाप्त हो उठी और जीव के इस स्वरूप का परित्याग करके मैं ब्रह्ममय हो उठा॥ ३॥

उसके आगे अगम्य तक फैला एक द्वार मिला–उसका नाम सत्य लोक कहा गया है। वहाँ एक सत्यनाम है–जिसे ब्रह्म भी नहीं जानता–वही अगम्य 'सत साहब' हैं।। ४॥

यह लोक तीनों लोकों से विलक्षण तथा व्याप्य लोक है, और वहीं चतुर्थ पद (मोक्ष) के उस पार है, जहाँ पर अनाम (निःनामी) निवास करते हैं और जिनके विषय में कोई नहीं जानता। वे तीनों पटों (लोकों की सीमा) के पार रहते हैं॥ ५॥

न वहाँ जल है, न वायु है, न अग्नि है, न निवास गृह है और ज्ञान की गतियों का कोई स्वरूप भी नहीं है। जहाँ न ब्रह्मा हैं, न विष्णु हैं, न राम हैं, न कृष्ण हैं और शिव तथा सिद्ध भी जिसका रहस्य नहीं प्राप्त कर पाते॥ ७॥

वहाँ न निर्गुण है, न सगुण है और न वहाँ स्वर्ग का नामोनिशान है और न कहीं वहाँ पिंड या ब्रह्मांड है॥ परमात्मा की ज्योति का न वहाँ कोई स्रोत (सोती) है, वहाँ अगम या अज्ञेय भी नहीं है और पार ब्रह्म परमात्मा का आदि स्वरूप लक्षण भी नहीं है॥ ८॥

वहाँ न कोई अनाकृति है, न कोई आकृति है, न कोई निरंकार है–वहाँ केवल 'सत्य नाम-ही सही-सही स्थिति में है। तुलसी साहब जानते हैं कि वहाँ न कोई नाम है, न अनामी है वरन् वहाँ समस्त तत्त्व या महातत्त्व उस परम सारगय 'सत्य तत्त्व' में जाकर समाविष्ट हैं॥ ९॥

॥ सोरठा॥

तुलसी अगम अनाम, अगत भेद का से कहौं।
कोउ न मानै बात, संत अंत कोउ ना लखै॥ १॥
निगम न पावै बेद, नेति नेति गोहरावही।
ब्रह्म न जानै भेद सत्त, नाम निज भिन्न है॥ २॥
एक अनीह अनाम, सत सुरति जानै यही।
वे पहुँचे वोहि धाम, सो अनाम गति जिन कही॥ ३॥
तुलसी अगम बिचार, सार पार गति पद लखा।
वह अलेख का ठाम, तुलसी तरक विचारिया॥ ४॥
सुरति अटा के पार, आठ अटारी अधर में।
तुलसिदास लियौ सार, सुरति सिंध से भिनि भई॥ ५॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि वह परम तत्त्व अगम्य है, अनाम है–फिर उसे ज्ञान के भेद का वर्णन मैं कैसे करूँ सम्भव है, मेरी बातें कोई न स्वीकार करे–क्योंकि सन्तों की अन्तिम ज्ञान दशा किसी की समझ में नहीं आती॥ १॥

शास्त्रादि जिसके ज्ञान को नहीं प्राप्त कर सकते और जिसे 'नेति नेति' कहकर पुकारते हैं–जिसके, स्वरूप भेद को ब्रह्म भी नहीं जानता, यह 'सत्य' नाम स्वयं में सबसे अलग है॥ २॥

वह केवल एक है, आकांक्षा शून्य, अनाम है और जिसे सुरति के द्वारा ही जाना जाता है–वही

सुरति ध्यानी मे न ही उस धाम तक पहुँचते हैं, वह अनाम गति है--उसके विषय में ऐसा कहा गया है॥ ३॥

तुलसी साहब कहते हैं कि यह मेरा अपना अगम चिन्तन है और मैंने इसे उस परम तत्त्व के पार (शून्य पर्वत शिखर के पार) जाकर मैंने देखा है-वह अलेख्य की स्थली है-तुलसी ने उसे अपने अनुभव से विचारा (समझा) है॥ ४॥

सुरति ध्यान रूपी अटारी (अट्टालिका) के उस पार उस शून्य (अघट) में आठ अटारियाँ (अट्टालिकाएँ) हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने उनका सारतत्त्व समझा है और उसको समझने के बाद उनमें तत्मयता (भिनि गई) प्राप्त कर ली॥ ५॥

॥ चौपाई॥

आठ अटारी सुरति समानी। मंगल ठुमरी करी बखानी॥
जस जस सूरति चढ़ी अटारी। तस तस बिधि मैं भाखी सारी॥

अर्थ—सुरति आठ अटारियों (अट्टालिकाओं) में जाकर समा गई और मैं उसका वर्णन मंगल ठुमरी राग में कर रहा हूँ। जैसे-जैसे एक-एक (अटारी) अट्टालिका पर सुरति चढ़ रही है, उस-उस प्रकार से उसके मंगल का गान मैं कर रहा हूँ।

॥ मंगल॥

आठ अटारी महल, सुरति चढ़ि चाखिया।
ठुमरी माहीं भेद, भाव सब भाखिया॥ १॥
संत पंथ का अंत, साध कोइ बूझिहै।
प्यारी पुरुष मिलाप, साफ स्रुति सूझिहै॥ २॥
जस जस मारग रीति, राह समझाइया।
प्यारी अटारी माहि, जाइ सोइ गाइया॥ ३॥
मन मथ कीन्हा चूर, सूर स्रुति ले चढ़ी।
गुरु पद पद्‌म मँझार, पुरुष पैं जा खड़ी॥ ४॥
बिधि बिधि ठुमरी माहिं, गाइ तुलसी कही।
जो कोइ चीन्है भेद, संत सोई सही॥ ५॥

अर्थ—आठ अटारियों (अट्टालिकाओं) के ऊपर चढ़कर सुरति अपने प्रिय का आनन्द चख रही है। इस मंगल ठुमरी के माध्यम से उसके स्वरूप तथा दशाओं का मैं वर्णन करता हूँ॥ १॥

संत मार्ग की समाप्ति का मर्म कोई ही संत बूझेगा। प्रिय आत्मा एवं पुरुष ब्रह्म का मिलन वेदों में साफ-साफ दिखाई पड़ता है॥ २॥

जैसा-जैसा वहाँ तक पहुँचने का मार्ग है और उनके परस्पर मिलने की रीति है, मैं उसे समझा रहा हूँ। प्रिया (आत्मा) प्रिय (ब्रह्म) की अटारी में है वहीं जाकर मैं गान करता हूँ॥

कामदेव को पूरी तरह नष्ट करके चूर्णकर दिया और श्रुति के सूर (आत्म तत्त्व) को लेकर मैं अट्टालिका के ऊपर चढ़ चली। गुरु के चरण कमल के मध्य होकर मैं अपने प्रिय पुरुष (आराध्य परमात्मा) के चरणों में जाकर खड़ी हो गई॥ ५॥

तुलसी साहब कहते है अनेक प्रकार की ठुमरियों में इसे गाकर बताया है-जो इन भिन्न-भिन्न ठुमरियों के भेद पहचान ले वही सन्त है॥ ५॥

॥ सोरठा ॥

ठींका ठुमरी माँहि आठ अटारी अधर की।
सूरति पदम विलास विधि बयालीस पद मिली॥

अर्थ–इस ठीका ठुमरी राग द्वारा अन्तरात्मा (अधर) की आठ अट्टारियों का वर्णन कर रहा हूँ। सुरति द्वारा प्रिय के चरणों में विलास करती हुई मैं विधिवत् बयालीस तत्त्वों से मैं मिली॥

॥ ठुमरी १ ॥

अली अटकी सुरति अटारी। मन हटकर हारा री॥ टेक॥
यह अँग संग भंग ले लटकी। सूली स्वर्ग नर्क भौ भटकी।
दीन्ही सतगुरु घट की तारी। चटकी मति फटक फटा री॥ १॥
ये ले लार पार स्त्रुति सटकी। निरखि अलख आदि घटघट की।
हकलख लागी बिरह करारी। हिये खटकी कसक कटारी॥ २॥
नौलख खेल कला ज्यों नट की। सूरति सहस कँवल झर भटकी॥
लीला सिखर निकर नित न्यारी। दधि मटुकी घिरत मठारी॥ ३॥
तुलसी तोल कही तिल तट की। भड़ धुनि ररंकार रस रट की॥
ये दस रस बस सुरति सँवारी। पिउ पट की खोलि किवारी॥ ४॥

अर्थ–हमारी सखी अभी सुरति की अटारी में ही फँसी हुई है, वहाँ से हटकर मन हार बैठा है. सुरति लोक में अन्य तत्त्वों को साथ-साथ लेकर मैं लटकी रही–स्वर्ग, नरक, भवसागर की पीड़ा (सूली) में भटकती रही। सत्गुरु ने इस पिंड के दरवाजे पर ताली लगा दी और उस दरवाजे की आवाज सुनते है–हमारी चेतना जाग्रत (फटक) हो उठी॥ १॥

अलक्ष्य ब्रह्म जो मूलरूप में आदि से ही घट-घट में स्थित है, उसे देखकर यह मेरी ज्ञान चेतना आनन्दपूर्वक मुझे लेकर उसके पास पहुँच गई–एकाएक (हकलक) मुझे उसे पाने के लिए तीक्ष्ण वियोग जागृत हो उठा और हृदय में जैसे कसक भरी कटारी खटक (घुस गई या लग गई–या हिल गई) गई हो॥ २॥

मैं सुरति ज्ञान के स्रहस्रार कमल दल में एकाएक ऐसी भटक गई मानो नट कला के नौलख खेलों में भटक गया हो। शून्य शिखर की लीला नित्य विलक्षण है–जैसे दही से भरी हुई मटकी में ऊपर छाँछ क्षण-क्षण अपने आप उतर आता हो॥ ३॥

एक तिल जैसे स्थान वाले तट की कोई तुलना (तोल)नहीं है और उसमें अनाहत नाद के 'रंकार' ध्वनि की रसमयी रटन शुरू हो उठी। फिर पति (ब्रह्म) के कक्ष की किवाड़े खोलकर मैंने दस रसों के वश में होकर सुरति ध्यान (आलिंगनादि का आनन्द) सँवार लिया॥ ४॥

॥ ठुमरी २ ॥

मँझरी पिय झाँकि निहारी। सखि सतगुरु की बलिहारी॥
दीन्हे दृग सुरति सँवारी। चीन्हा पद पुरुष अपारी॥ १॥
चली गगन गुफा नभ न्यारी। जहँ चंद न सूर सिहारी॥
तुलसी पिय सेज सँवारी। पौढ़ी पलँगा सुख भारी॥ २॥

अर्थ–हे सखि! मझली नायिका ने पति (ब्रह्म) को झाँक कर देख लिया, यह गुरु की ही कृपा का

फल है। सुरति ध्यान को सँवार कर उसने आँखें बन्द कर ली और उस अनन्य ब्रह्म (अपारी पुरुष) का स्थान पहचान लिया॥ १॥

उस शून्याकाश की न्यारी गुफा में वह चल पड़ी जहाँ न चन्द्रमा है, न सूर्य है—न कोई अन्य (सिहारी) है। तुलसी साहब कहते हैं कि वहाँ प्रिय (ब्रह्म) की सेज सजी हुई बिछी है—और वह आत्मा पलँग पर अत्यन्त आनन्द के साथ लेट गई (पौढ़ी) ॥ २॥

॥ ठुमरी ३॥

सलिता जिमि सिंध सिधारी। सूरति रत सब्द बिचारी॥
जहँ सुन्न न सुन्नी न्यारी। मत मीन महासुन पारी।। १॥
नहिं गुन निर्गुन मत झारी। निज नाम निअच्छर भारी॥
जहँ पिंड ब्रह्मंड न तारी। तुलसी जहँ सुरति हमारी॥ २॥

अर्थ—जैसे सरिताएँ सिन्धु के लिए प्रस्थान करती है—उसी प्रकार सुरति रत साधक अनादि शब्द की ओर चलता है। जहाँ न शून्याकाश है और न शून्यसाधक चित्त, यह मन रूपी मछली उस महाशून्य रूपी सरोवर में जा पड़ी (पारी)॥ १॥

जहाँ न गुण है, न निर्गुण है और सारे मतवाद भी वहाँ नहीं हैं—और वहाँ उसका (ब्रह्म का) अपना नाम बिना अक्षर का है। जहाँ न पिंड है, न ब्रह्मांड है न ज्ञान की किवाड़ों को बंद किये हुए ताली है—तुलसी साहब कहते हैं कि वहाँ हमारी सुरति निवास करती है॥ २॥

॥ ठुमरी ४॥

ए अली आदि अंत अधिकारी। पिय प्यारी प्रीति दुलारी॥
हम कीन्हा खेल पसारी। सब रचना रीति हमारी॥ १॥
करता नहिं काल पसारी। हम अगम पुरुष की नारी॥
ठुमरी सोइ संत बिचारी। तुलसी नित नीच निहारी॥ २॥

अर्थ—हे सखी! यह नायिका (पत्नी), आत्मा प्रिय (ब्रह्म) को अति प्रिय है, उसके आदि अन्त की स्वामिनी है और अत्यन्त प्रेम के कारण उसके लिए दुलारी बनी हुई है। हमारे सारा खेल खुला फैला है और खेल की रचना और दूसरे की नहीं, मेरी ही है॥ १॥

इस खेल का कर्त्ता चारों ओर फैला हुआ काल नहीं है मैं तो उस अगम पुरुष (ब्रह्म) की पत्नी हूँ। (जिस पर किसी अन्य का प्रभाव नहीं है)। संतों की इस आनन्दमंगलमयी ठुमरी को सुनकर तुलसी साहब सदैव अपने को छोटा (तुच्छ, नीच) समझते रहते हैं॥ २॥

॥ ठुमरी ५॥

ए गुइयाँ पिय हम हम पिय एकी। कोइ फरक न जानौ नेकी॥
कोइ बूझै संत बिबेकी। जोइ अगम निगम नहिं लेखी॥ १॥
जिन अटल अटारी पेखी। पिय रूप न रेख अदेखी॥
कोइ कंथ न पंथ न भेषी। तुलसी सब मारग छेकी॥ २॥

अर्थ—हे साथिन (गुइयाँ)! प्रिय में मयी और मैं प्रियमयी बनकर एक हो उठी हूँ और हममें तथा उनमें (आत्मा तथा ब्रह्म में) कोई जरा भी (नेकी) अन्तर न समझो। इस वास्तविकता को कोई बिबेकवान् सन्त ही समझ सकता है—जिसने अगम एवं निगम में निरूपति ब्रह्म को न समझकर आत्मब्रह्म को समझा हो॥ १॥

जिन सन्तों ने इस शून्याकाश की अटल अट्टालियाओं को देख लिया है और रूप तथा लक्षणों (रेख) से हीन ब्रह्म को हृदय में अपने को तन्मय कर दिया है, वह न कोई कंथ (कथा-शास्त्र) कहता है और न किसी पंथ (ज्ञानमार्ग) को जानता है और न वह वेषभूषा (सन्तों जैसी) धारण करता है, वही उस ब्रह्म के समस्त मार्गों में आत्म चित्त को साक्षात्कृत करके बैठा है॥ २॥

॥ सोरठा॥

ठुमरी ठौर ठिकान, अगम भान स्त्रुति पद लखा।
चखा अमर रस ज्ञान, पार पुरुष पद में मिली॥ १॥
पिया भवन के माइँ, जाइ जोइ जस जस कही।
रही पुरुष पद छाइ, लई आदि अपने गई॥ २॥

अर्थ–उसका ठौर ठिकाना ठुमरी ही है और उसी भाव में श्रुतियों ने निर्दिष्ट अगम्य सूर्य का स्थान देखा है। इसी के माध्यम से उन्होंने उस ब्रह्म के अगम ज्ञान रस का स्वाद चखा है और मैं (आत्मा) उस लोक (पार) में जाकर पुरुष (ब्रह्म) से मिल गई॥ १॥

मैंने जो-जो और जैसा-जैसा कहा है, उसका अनुसरण करने पर ब्रह्म भवन में प्रवेश हो जाता है। उसी भावना एवं प्रक्रिया से पुरुष (ब्रह्म) के चरणों पर (आत्मा) स्थिर हो उठती है और उस आदि तत्त्व को अंगीकार करके आत्ममयी हो उठती है॥ २॥

॥ दोहा॥

पुरुष पदम सम सोइ, तुलसी सूरति लखि चली।
ज्यों सलिता जल धार, लार सुरति सब्दै मिली॥

अर्थ–पुरुष (ब्रह्म) के चरणों सदृश स्थल पर स्थिर होकर तुलसी साहब कहते हैं कि सुरति ध्यान में उन्हें देखकर उनके सन्निध्य के लिए आत्मा चल निकली। जैसे सरिता की जलधारा समुद्र के लिए स्वत– चल पड़ती है–ठीक वैसे ही अत्यन्त संसक्ति के साथ सुरति शब्द में मिल गई।।

॥ सोरठा॥

हम पिय पिय हम एक, लखि विवेक संतन कही।
भई अगम रस भेष, देखा दृग पिय एक होइ॥ १॥
हमरा सकल पसार, वार पार हमहीं कही।
संत चरन की लार, आदि अंत तुलसी भई॥ २॥

अर्थ–मैं (आत्मा) और प्रियतम (ब्रह्म) एक हैं और ब्रह्म तथा प्रियतम एकमेव। यह चित्त की अगम्य रसमयी भेष रचना अब तृप्तिमयी हो उठी है और प्रिय से एकमयी होकर मुझ अनन्य प्रेमिका ने प्रिय और मैं की एकमयता की दृष्टि से एक दूसरे को देखा॥ १॥

अपने आत्मिक सम्मिलन की बात बार-बार मैं ही कहती हूँ, यह लोक के उस पार है। इसकी दृष्टि से सन्त चरणों के प्रति संसक्ति (लार) तुलसी साहब कहते हैं कि आदि अन्तमयी एक हो उठी है॥ २॥

॥ दोहा॥

निरखा आदि अनादि, साधि सुरति हिये नैन से।
करै कोइ संत बिचार, लखि द्रुवीन स्त्रुति सैल से॥

अर्थ—सुरति रूपी दूरवीन की सहायता से शून्य शिखर पर चढ़कर मैंने उस आदि रूप अनादि तत्त्व को हृदय रूपी नेत्रों से समाधि के क्षणों में साध कर देखा।

॥ चौपाई ॥

तुलसी निरखि देखि निज नैना। कोइ कोइ संत परखिहै बैना॥
जो कोइ संत अगम गति गाई। चरन टेकि पुनि महूँ सुनाई॥
अब जीवन का कहौं निबेरा। जा से मिटै भरम बस बेरा॥
जब या मुक्ति जीव की होई। मुक्ति जानि सतगुरु पद सेई॥
सतगुरु संत कंज में बासा। सुरति लाइ जो चढ़ै अकासा॥
स्याम कंज लीला गिरि सोई। तिल परिमान जानि जन कोई॥
छिन छिन मन को तहाँ लगावै। एक पलक छूटन नहिं पावै॥
स्रुति ठहरानी रहै अकासा। तिल खिरकी में निस दिन वासा॥
गगन द्वार दीसै इक तारा। अनहद नाद सुनै झनकारा॥
अनहद सुनै गुनै नहिं भाई। सूरति ठीक ठहर जब जाई॥
चूवै अमृत पिवै अघाई। पीवत पीवत मन छकि जाई॥
सूरति साथ संघ ठहराई। तब मन थिरता सूरति पाई॥
सूरति ठहरि द्वार जिन पकरा। मन अपंग होइ मानौ जकरा॥
चमकै बीज गगन के माईं। जबकि उजास पास रहै छाईं॥

अर्थ—तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने भली भांति निरखकर उस तत्त्व को अपनी हृदय-रूपी आँखों से देखा है—कोई-कोई ही सन्त मेरी इस वाणी को समझेगा॥ जो कोई सन्त की गति का गान करता है, उसी के स्वर में स्वर मिलाकर मैंने भी चरण टेक कर (उस ब्रह्म के प्रति) मैंने (महूँ) भी उस सत्त्व को सुनाया है॥

अब मैं जीवन के वर्णन का निपटारा करता हूँ—जिससे कि भ्रमवश स्थित चित्त का बन्धन (घेरा) समाप्त हो उठे। जब इस जीव की मुक्ति होगी—मुक्ति को समझकर साधक गुरुचरणों की सेवा करेगा। सत्गुरु (ब्रह्म) का निवास सहस्त्रार कमल में है, और जो साधक सुरति साधना द्वारा उस शून्याकाश तक पहुँचता है वहीं उसे श्याम कमल लीला शिखर दिखाई पड़ता है—कोई-कोई ही सन्त जन उसके तिल जैसे होने की प्रमाण गति को पहचानता है। वह साधक उस तिल जैसे तत्त्व पर क्षण-क्षण मन को लगाए रहता है और एक पल के लिए वह ध्यान छूटने नहीं पाता॥

समस्त श्रुतियाँ उस आकाश में ठहरी रहती हैं और तिल की खिड़की में उनका निरन्तर निवास बना रहता है। शून्याकाश के द्वार पर एक तारा दिखाई पड़ता है—और निरन्तर (अनाहत नाद की झंकार सुनाई पड़ती है। हे भाई! अनाहत सुनाई पड़ती है किन्तु समझ में नहीं आती और जब भलीभाँति सुरति समाधि ठहर जाती है, तब अमृत का निरन्तर स्राव होने लगता है और साधक तृप्त होकर उसका पान करता है और उसका पान करते-करते मन सर्वथा परितृप्त हो उठता है॥

वह साधक सुरति के साथ आनन्द सिंधु में ठहर जाता है और तब साधक का स्थिर सुरति प्राप्त करता है।

सुरति में स्थिर होकर जिन्होंने उस अगम्य के द्वार को पकड़ रखा है—उसका मन उसी में विलुप्त हो उठता है, अपंग (जड़) की भाँति जकड़ उठता है। उस आकाश में हे सखी! विद्युत चमकती रहती है और पास में उजाला छाया रहता है।

॥ चौपाई ॥

जस जस सुरति सरकि सत द्वारा। तस तस बढ़त जात उँजियारा॥
सेत स्याम स्रुति सैल समानी। झरि झरि चुवै कूप से पानी॥
मन इस्थिर अस अमी अघाना। तत्त पाँच रँग बिधी बखाना॥
स्याही सुरख सपेदी होई। जरद जाति जंगाली सोई॥
तिल्ली ताल तरंग बखानी। मोहन मुरली बजै सुहानी॥
मुरली नाद साध मन सोवा। विष रस बादि बिधी सब खोवा॥
खिरकी तिल भरि सुरति समाई। मन तत देखि रहै टक लाई॥[१]
जब उजास घट भीतर आवा। तत्त तेज और जोति दिखावा॥
जैसे मंदिर दीप किवारा। ऐसे जोति होत उँजियारा॥
जोति उजास फाटि पुनि गयऊ। अंदर चंद तेज अस भयऊ॥
देखै तत सोइ मनहि रहाई। पुनि चंदा देखै घट माई॥
चंद्र उजास तेज भया भाई। फूला चंद चाँदनी छाई॥
सूरति देखि रहै ठहराई। ज्यों उजियास बढ़त जिमि जाई॥
ज्यों ज्यों सुरति चढ़ि चलि गयऊ। सेता ठौर ठाम लखि लयऊ॥
देख सैल ब्रह्मण्ड समाई। तारा अनेक अकास दिखाई॥
महि अरु गगन देखि उर माई। और अनेकन बात दिखाई॥
कछु कछु दिवस सैल अस कीन्हा। ऊगा भान तेज को चीन्हा॥
तारा चंद्र तेज मिटि गयऊ। जिमि मध्यान भान घट भयऊ॥
ज्यों दोपहर गगन रबि छाई। तैसे उजास भया घट माई॥
ता के मधि में निरखि निहारा। घट में देखा अगम पसारा॥
सात दीप पिरथी नौ खण्डा। गगन अकास सकल ब्रह्मंडा॥
समुँदर सात प्राग पद बेनी। गंगा जमुना सरसुतौ बहिनी॥
औरै नदी अठारा गंडा। ये सब निरखि परा ब्रह्मंडा॥
चारौ खानि जीव निज होई। अंडज पिंडज उषमज सोई॥
अस्थावर चर अचर दिखाई। यह सब देखा घट के माई॥

अर्थ–जैसे-जैसे सुरति समाधि सुरति द्वार की ओर से सरक 'सत्य' द्वार की ओर आती है, वैसे-वैसे उजाला बढ़ता जाता है। श्वेत और श्याम रूप में स्थित सुरति शून्य शिखर में समा उठती है, तब ऐसा अनुभव होता है कि झर-झर झरता हुआ औंधे कुएँ का जल बरस रहा है।

इस अमृत से तृप्त होकर मन स्थिर है। संसार का पाँच तत्त्वों में रंग जाना विधि का विधान है–ये स्याह रंग, लाल श्वेत पीला तथा हरा हैं। तिल जैसे ब्रह्मद्वार पर स्थित सरोवर की लहरों का वर्णन कर

---

१. मुं० दे० प्र० के पाठ में "टक लाई" की जगह "टकराई" है।

रहा हूँ, जहाँ मोहन श्रीकृष्ण की आनन्ददायिनी मुरली बजती रहती है। मुरली की ध्वनि साधु जनों के मन का विश्राम करने लगती है और वासना के विषय रसों के विपरीत सभी विधाता के रंग में खो जाते हैं। तिल की खिड़की सुरति में विलीन हो उठती है और मैं उस रूप को देखकर एकटक टकटकी लगाए रखता है।

वह उजाला जब पिंड के भीतर आता है, वह तत्त्व को तेज और परम ज्योति दिखलाने लगता है। जैसे मंदिर का दीपक, ठीक उसी प्रकार इस ज्योति से सर्वत्र उजाला हो उठता है॥ एक क्षण के लिए इस ज्योति का प्रकाश फूट पड़ता है, फिर शरीर के अन्त:करण में चन्द्रमा जैसी ज्योति निखर आती है। फिर साधक, मन में स्थित उस तत्त्व को देखता रहता है, और उसके बाद घट के भीतर वह चन्द्रमा देखता रहता है॥

चन्द्रमा का उजाला तेजमय प्रकाश में बदल जाता है–और चारों तरफ चन्द्रमा खिल उठता है और उसकी चाँदनी छा उठती है। उस उजाले को देखती हुई सुरति भी एक क्षण के लिए ठहर जाती है और तब ऐसा लगता है मानो उजाला बढ़ता जा रहा हो॥ ज्यों-ज्यों सुरति आगे चढ़कर चलती जाती है वह चाँदनी की उज्ज्वलता का सार ठौर-ठामों (स्थानों) पर देख लेती है॥

वह उज्ज्वल पर्वत शिखर देखकर ब्रह्मांड में समा जाती है–जहाँ आकाश में अनेक तारागण दिखाई पड़ते हैं। हृदय में ही पृथ्वी तथा आकाश को देखो तथा अन्य अनेक बातें भी यहाँ दिखाई पड़ती है॥ कुछ दिनों तक वह पर्वत शिखर इसी प्रकार रहता है और तब सूर्य का उदय होता है किन्तु उस सूर्य के प्रकाश को कौन पहचानता है। सूर्य का तेज व्याप्त होने पर तारा समूह तथा चन्द्रमा का प्रकाश का समय मिट जाता है, ठीक उसी तरह घट के भीतर सूर्य का प्रकाश है।

जैसे दोपहर में सूर्य आकाश में व्याप्त हो उठता है वैसा ही, प्रकाश घट के भीतर हो उठता है–उस मध्य में अच्छी तरह निरख और निहार कर मैंने इस पिंड में अगम्य ईश्वर का प्रसार देखा है।

सात द्वीप एवं नौ खंडों वाली पृथ्वी–आकाश, अन्तरिक्ष तथा समस्त ब्रह्मांड में यह व्याप्त है। सात समुद्र यहाँ है, प्रयाग (प्राग) और त्रिवेणी (त्रेनी) है, साथ में, गंगा, यमुना तथा प्रवाहित सरस्वती भी तथा नब्बे (अठारह गंडा) नदियाँ, ये सभी पिंड में (ब्रह्मांड के परे) दिखाई पड़ी।

चारों प्रकार के जीव समूह–अंडज, पिंडज, उष्मजआदि तथा 'स्थावर, चर, अचर आदि सभी घट के भीतर ही दिखाई पड़े।

॥ चौपाई ॥

भिनि भिनि जीवन कर बिस्तारा। चारि लाख चौरासी धारा॥
और पहार नार बहुतेरा। जो ब्रह्मंड में जीव बसेरा॥
कछु कछु दिवस सैल अस कीन्हा। तीनि लोक भीतर में चीन्हा॥
जो जग घट घट माहिं समाना। घट घट जग जिव माहिं जहाना॥
ऐसे कइ दिन बीति सिराने। एक दिवस गये अधर ठिकाने॥
परदा दूसर फोड़ि उड़ानी। सुरति सुहागिनि भइ अगमानी॥
सबद सिंध में जाइ सिरानी। अगम द्वार खिरकी नियरानी॥
चढ़ि गइ सूरति अगम ठिकाना। हिये लखि नैना पुरुष पुराना॥
ता में पैठि अधर में देखा। रोम रोम ब्रह्मंड का लेखा॥
अंड अनेक अंत कछु नाहीं। पिंड ब्रह्मांड देखि हिये माहीं॥
जहँ सतगुरु पूरन पद बासी। पदम माहिं सतलोक निवासी॥

सेत बरन वह सेतइ साँईं। वहँ संतन ने सुरति समाई॥
सत्तहि लोक अलोक सुहेला। जहँवाँ सुरति करै निज केला॥
सूरति संत करै कोइ सैला। चौथा पद सत नाम दुहेला॥
परदा तीसर फोड़ि समानी। पिंड ब्रह्मांड नहीं अस्थानी॥
जहँवाँ अगम अगाधि अघाई। जहँ की सत गति संतन पाई॥
महुँ उन तार लार लरकाई। उन सँग टहल करत नित जाई॥
महुँ पुनि चीन्ह लीन्ह वह धामा। बरनि न जाइ अगमपुर ठामा॥
निः नामी वह स्वामी अनामी। तुलसी सुरति सैल तहँ थामी॥
जो कोइ पूछै तेहि कर लेखा। कस कस भाखौं रूप न रेखा॥
तुलसी नैन सैन हिये हेरा। संत बिना नहिं होइ निबेरा॥
निज नैना देखा हिये आँखी। जस जस तुलसी कहि कहि भाखी॥

अर्थ–भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवन रूपों का विस्तार अर्थात् चार लाख चौरासी हजार प्रकार के जीवों साथ में, अनेक पहाड़ और अनेकों नालें (नार) आदि जिसमें ब्रह्मांड के जीवों का निवास है (मैंने देखा।)।

अनेक दिनों तक पर्वत शिखर पर इस प्रकार रहकर अपने पिंड के भीतर स्थित तीनों लोकों को पहचाना जो संसार घट-घट के भीतर समाया हुआ है, वही घट-घट का स्थित जीव सृष्टि (जहान) में भी है।

इस प्रकार कुछ दिन यहाँ व्यतीत हुए फिर एक दिन मैं अन्तर-तल (अधर) के स्थान पर पहुँचा। द्वार पर स्थित दूसरा पर्दा फट कर उड़ गया और तब सौभाग्यती सुरति का आगमन हुआ। (सबद) समुद्र में जाकर खो गया फिर अगम द्वार की खिड़की समीप आई। सुरति समाधि अपने निवास स्थली पर चढ़ गई और हृदय के नेत्रों से अपने उस पूर्व साथी पुरुष (ब्रह्म) को देखा। वहाँ बैठकर उसने अन्तस्तल में रोम-रोम में ब्रह्मांड देखा।

अनेक लोक (पिंड) दिखाई पड़े–जिनके अन्त नहीं हैं और अपने हृदय में अनेकों पिंड एवं ब्रह्मांड देखे–वहाँ पूर्ण पद निवासी सतगुरु (ब्रह्म) और उसके सहस्त्रार कमल में 'सत्य लोक' निवास करता दिखाई पड़ा॥

स्वामी ब्रह्म भी श्वेत वर्ण के है और वह सत्य लोक भी श्वेत वर्ण का है और वहीं संत गण सुरति ध्यान में डूबे हुए दिखाई पड़े। इस सत्यलोक का आलोक बड़ा ही सुहावना (सुहेला) था जहाँ सुरति स्वयं क्रीड़ा में लीन थी। कोई विरला साधु ही सुरति में क्रीड़ा (केलि-क्रीड़ा-केला) करता है। उसके पश्चात् चौथे लोक का नाम 'सत लोक' है–जो नितान्त दुर्लभ है।

इसके पश्चात् तीसरे पर्दे को फाड़कर उसके आगे घुसी (समानी)। वहाँ न पिंड था, न ब्रह्मांड था, न कोई स्थान विशेष ही)। यहाँ अगम्य अगाध, पूर्ण परितृप्त हैं–जिसकी थाह केवल संतों ने प्राप्त की है) मैंने भी, उनकी संसक्ति में अपनी संसक्ति लगा दी (तरकाई) और नित्य प्रति उनके साथ जाकर सेवा टहल करने लगा। मैंने उन्हीं के साथ उस धाम (लोक) की पहचान कर ली। उस अगम नगरी के स्थानों का वर्णन नहीं किया जा सकता।

वहाँ स्थित स्वामी निःनामी तथा अनामी है–तुलसी साहब कहते हैं कि यह सुरति ध्यान का पर्वत शिखर वहीं ठहरा है। उसके विषय में जो जैसा पूछता है–वही उसका सार्थक संदर्भ है–मैं किस-किस रूप में उसके रूप तथा लक्षणों का वर्णन करूँ। तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने हृदय की आँखों से जिस प्रकार का उसे देखा है, उसी-उसी प्रकार कह कर वर्णन करता हूँ॥

॥ सोरठा ॥

पिंड माँहिं ब्रह्मंड, ताहि पार पद तेहि लखा।
तुलसी तेहि की लार, खोलि तीनि पट भिनि भई॥ १ ॥
तुलसी संत अनकूल, कँवल फूल ता में धसी।
लसी जाइ सत मूल, फँसी पाइ सतगुरु सरन॥ २ ॥
खुलि गये अगम किवार, लील सिखर के पार होइ।
गिरा गगन के पार, पाइ सैल अस बिधि कही॥ ३ ॥
अंडा फूट अकास, होइ निरास सूरति चली।
अगम गली निज पाइ, तहँ आसन तुलसी कियौ॥ ४ ॥
हिरदे हरष समाइ, पाइ ताहि गति कस कही।
कोइ कोइ संत समाय, ताही तें गति तस भई॥ ५ ॥

अर्थ–पिंड (घट) के भीतर ही ब्रह्मांड है और उसके पार जाकर ब्रह्म का निवास देखा। तुलसी साहब कहते हैं कि उसकी संसक्ति में तीनों पटों को खोलकर मैं भिन्न स्वरूप का साधु हो गया॥ १ ॥

सन्तों की अनुकूलता तथा सद्‌गुरु की शरण पाकर मैं सहस्त्रार कमल के मध्य जाकर विलीन हो गया और उस 'सत्य' तत्त्व के मूल में जाकर संसक्त होकर फँस गया॥ २ ॥

फिर इसके बाद तो उस अगम के कपाट खुल गए और तब लीला शिखर के पार होकर पृथ्वी तथा आकाश के उस पार शून्य शिखर को प्राप्त करके इस प्रकार कह रहा हूँ।

तुलसी साहब कहते हैं कि ब्रह्मांड (अंडा) आकाश में फूट गया और इसे देखकर सुरति निराश होकर चल पड़ी और आगे एक अगम्य गली पाकर उसने वहाँ आसन जमा लिया॥ ४ ॥

उसे पाकर, उसकी गति का वर्णन कैसे किया जा सकता है, हृदय में हर्ष समाया हुआ है। कोई-कोई सन्त उस अगम गली में प्रवेश करता है उसमें प्रवेश करते ही उसकी दशा तन्मयी (ब्रह्ममयी) हो उठती है॥ ५ ॥

॥ छन्द ॥

तीनों पट बाहिर कहुँ नहिं जाहिर। अगम अगत की राह लई॥
खोला वह द्वारा अगम पसारा। सतगुरु पुर के पार गई॥ १ ॥
सतलोक दुहेला कीन्ही सैला। अगम अकेला लार भई॥
ता से पद न्यारा निरखि निहारा। तासु अनामी नाम नहीं॥ २ ॥
फूला निज कँवला सूरति सम्हला। नील सिखर तन तार लई॥
अंडा निज फूटा दस दिस टूटा। छूटि सुरति असमान गई॥ ३ ॥
तुलसी तन सैला घट बिच खेला। संतकृपा से राह लई॥
ब्रह्मंड न पिंडा नहिं नौ खंडा। रबि चंदा तहँ तार नहीं॥ ४ ॥
पानी नहिं पवना अगिन न भवना। गगन गिरा के पार भई॥
देखा सत्त सैला अगम अकेला। सूरति केला सब्द मई॥ ५ ॥
तुलसी मत पाई संत लखाई। पास समाई गाइ कही॥ ६ ॥

अर्थ–तीनों पटों के बाहर कुछ भी जाहिर (स्पष्ट) नहीं होता–साधक केवल अगम्य एवं अज्ञेय की राह पकड़ लेता है। जैसे ही, साधक ने वह द्वार (चौथा द्वार) खोला–चारों ओर अगम्य ही प्रसरित पसरा फैला हुए दिखाई पड़ता है–सतगुरु पुर के पार आत्मा चली गई॥ १॥

दुर्लभ सत्यलोक में एक पर्वत शिखर है। वह अगम्य अकेला वहीं आत्मभूत तन्मय है–इसलिए उसका स्थान विलक्षण है, अच्छी तरह से मूक साधक को देखा–वह अनाम है, कोई उसका नाम नहीं है॥ २॥

अगने ही कमल दल वह तन्मय होकर आनन्दित है, सुरति ज्ञान से सम्हला हुआ है और अपने चित्त का तारतम्य (एकतानता) नील शून्य शिखर से जोड़े हुए है। उसका ब्रह्मांड फूट पड़ा, समस्त दसों दिशाएँ टूट चलीं और सुरति बन्धन से छूटकर शून्याकाश में विलीन हो गई॥ ३॥

उस ब्रह्म का शून्य शिखर इस शरीर पिंड के बीच क्रीड़ा करता दिखा और संतों की कृपा से मैंने सन्मार्ग पकड़ा। फिर वहाँ न ब्रह्मांड है, न पिंड है, न नौ खण्ड (लोक) हैं। वहाँ सूर्य, चन्द्रमा एवं तारे भी नहीं हैं। ४॥

न वहाँ जल है, वायु है,न अग्नि है, न पृथ्वी (भवन) है, न आकाश है। और आकाश शब्द के पार जाकर स्थित हो उठा। तुलसी साहब कहते है कि इस प्रकार की अनुभूति पाकर मैंने सन्तों को दिखाया–वह मेरे पास आकर समानिष्ट हो उठी और मैंने उसे इस प्रकार से गाकर सुनाया॥ ५॥

॥ सोरठा॥

तुलसी निरखि निहारि, नैन पार निज देखि कै।
यह अदेख की बात, जिन अदृष्टि हिरदे लखा॥ १॥
तुलसी तुच्छ अबूझ, जबै सूझ सूरति लखी।
अलख खलक के पार, निः अच्छर वो है सही॥ २॥
संत चरन पद धूर, तुलसी कूर कारज कियौ।
लिया अगम पद मूर, सूर सन्त अपना कियौ॥ ३॥
मैं उनकी बलिहार, लार लागि पारै कियौ।
चौथा पद निज सार, सो लखाइ संतन दियौ॥ ४॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने उसे भलीभाँति समझकर निहारकर और अपने नेत्रों के उस पार देखकर उस अदृश्य मूल तत्त्व की चर्चा की है। उस अदृश्य को मैंने हृदय में देखा था ॥ १॥

तुलसी साहब कहते हैं कि उस अत्यन्त सूक्ष्म एवं अज्ञेय को जब सुरति ध्यान साधा, तब सूझ पड़ा। इस संसार के उस पार, अलक्ष्य रूप वह निश्चय रूप से अक्षर शून्य हैं अर्थात् उसे अक्षरों में नहीं बाँधा जा सकता॥ २॥

तुलसी साहब कहते हैं कि मैं तो सन्त चरणों के पग की धूलि हूँ–मैंने उस अगम पद के मूल तत्त्व को अपना लिया और दिव्य दृष्टि वाले साधक सिद्धों (सूर सन्त) को अपना बना लिया॥ ३॥

मैं उनकी बलिहारी जाता हूँ–जिन्होंने उस ब्रह्म की संसक्ति से सम्बद्ध होकर संसार सागर को पार कर लिया है। मेरी संत साधना का सार तत्त्व वह चतुर्थ पद है–जिसको मैंने सन्तों को दिखा दिया॥ ४॥

भेद पिंड और ब्रह्मांड का

॥ चौपाई॥

तुलसी मैं अति नीच निकामा। मैं अनाथ गति बूझि न जाना॥
मैं अति कुटिल कूर कुबिचारी। सत सत संत सरनि निरबारी॥

अ॰ मैं अपना औगुन भाखी। निरनय जी की कोइ नहिं राखी॥
अपनी चाल गती गुन गाऊँ। मोहिं सों अधम और नहिं नाऊँ॥
संत दयाल दीन-हितकारी। मोरे औगुन नाहिं बिचारी॥
संत सरल चित सब सुखकारी। मो को पकरि हाथ निरबारी॥
कहँ लगि उनके गुन गति गाऊँ। मोर अचेत लखी नहिं काहू॥
मोरी तपन ताप निज हेरा। तुलसी नीच का कीन्ह निबेरा॥
कोटिन जिभ्या जो मुख होई। तौ मैं बरनि सकौं नहिं सोई॥
कोटिन कल्प-बृच्छ जो होई। तौ सरवर पावै नहिं कोई॥
तिनकी तीनि लोक रज पावन। कस बरनौं मोरे मन भावन।।
तिन कौ भेद बेद नहिं पावै। वोहू नेति नेति गोहरावै॥
दस औतार और तिरदेवा। वोहु न उनको पावै भेवा॥
कहँ लग कहौं संत गति न्यारी। मोरी मति गति नाहिं बिचारी॥
तीनि लोक का पटतर लाऊँ। उन सम तुलसी कहा दिखाऊँ॥
मैं मत त्राहि त्राहि करि भाखी। ऐसी कौन बताऊँ साखी।।
संतन की गति कस कस गाऊँ। अस कोइ देखि परै नहिं ठाऊँ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैं अत्यन्त तुच्छ तथा निकम्मा हूँ। सदा मैं अनाथ रहा हूँ और इस संसार की गति की मुझसे समझ नहीं है। मैं अत्यन्त कुटिल, क्रूर और ना समझ हूँ किन्तु मुझे अनेकानेक संतों की शरण ने विवेक दिया (निखारी) है॥

मैं अपने अवगुणों का वर्णन कर दिया है और हृदय (जी) के किसी निर्णय (निरनय) को (छिपाकर) नहीं रखा है। मैं अपने व्यवहार एवं समझ का वर्णन कर रहा हूँ–(इस संसार में) मुझसे अधम और कोई नहीं है॥

सन्तजन तो अत्यन्त दयालु एवं दीनों के हितैषी होते हैं–वे मेरे अवगुणों पर विचार नहीं करेंगे। संत जन अत्यन्त सरस चित्त के तथा सभी के लिए सुखदायी होते हैं–उन्होंने मेरा हाथ थाम कर मुझे विवेक दिया है॥

कहाँ तक मैं उनके गुणों और विवेक का वर्णन करूँ। किसी ने भी मेरी अज्ञनता (उनके अतिरिक्त) नहीं देखी। उन्होंने मेरी पीड़ा और मेरे कष्टों को समझा-बूझा और तुलसी साहब कहते है कि उन्होंने इस तुच्छ दास को संकट मुक्त किया॥

यदि मेरे मुख में कोटि-कोटि जीभें होतीं तो भी उनके उपकार का मैं वर्णन नहीं कर सकता। यदि कोटि-कोटि कल्पवृक्ष भी हो तो भी वे उस (ज्ञान) सरोवर को नहीं प्राप्त कर सकते॥

तीनों लोकों में इन संतों की चरण रज पवित्र है–उनका वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ क्योंकि मेरा मन तो संसक्तियों से भरा (भावन) है। उनकी समझ वेद आदि भी नहीं पा सकते और वे भी नेति नेति कहकर पुकारते रहते हैं॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीनों (त्रिदेवा) तथा विष्णु के दशावतार वे भी उनका भेद नहीं पा सकते हैं। मैं कहाँ तक संतों की विलक्षण गति का वर्णन करूँ–मेरी बुद्धि उसकी गति का विचार नहीं कर सकती॥

तुलसी साहब कहते हैं कि मैं तीनों लोकों के सादृश्यों को इकट्ठा भी कर दूँ तो सन्तों के सदृश कैसे दिखाऊँगा। मैं और मेरी बुद्धि त्राहि-त्राहि करके कह रही है कि उनकी साक्षी (प्रमाण-समता) के लिए

ऐसी किस वस्तु को बताऊँ (समझ में नहीं आती)। सन्तों के व्यवहार का मैं कैसे-कैसे वर्णन करूँ ऐसी वस्तु किसी स्थान पर कहीं भी नहीं दिखाई पड़ती ॥

॥ छन्द ॥

मोरी मति नीची माहुर सींची। संत चरन के लार भई।।
करमन कर मैली बिष रस पेली। संत चरन चित जाइ बसी ॥ १ ॥
मति महा अति रंका मन निः संका। बिष रस कस की धार मई ॥
कहँ लग गोहराऊँ अंत न पाऊँ। संत चरन की लार लसी ॥ २ ॥
दरसन पाये करम नसाये। पाप पुन्य सब छार भई ॥
मोहिं निरमल कीन्हा दयानिनि चीन्हा। ऐसे सिंध दरियाव मई ॥ ३ ॥
तिनकी रज पावन तुलसी अपावन। मो से अधम को धाम दई ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मेरी बुद्धि निकृष्ट है और वह विष से सींची हुई है और वह सन्तों के चरणों में संसक्त (लार) हो उठी है। कर्मवासनाओं से मैली तथा विषय वासनाओं से रौंदी हुई संतों के चरणों में अत्यन्त प्रेमपूर्वक जाकर बसगई है ॥ १ ॥

मेरा यह निःशंकित मन अत्यन्त रंक है और विषय वासनाओं के रस में फँसी हुई धारामयी है। कहाँ तक उसको बुलाऊँ (बुलाकर सुधारूँ) इसका अन्त नहीं मिलता–मेरी संसक्ति तो संतचरणों में लग चुकी है ॥ २ ॥

संतों का मुझे दर्शन मिला, कर्म जाल नष्ट हो चला और पाप-पुण्य सब जलकर राखमय हो उठे ॥ दयानिधि सन्त ने मुझे पहचाना और मुझे निर्मल बना दिया जैसे कोई समुद्र (संत) स्वयं नदीमय (मै साधक) हो उठे, मेरी स्थिति जैसी हो रही ॥ ३ ॥

तुलसी साहब कहते हैं कि सन्तों की पावन चरणरज ने मुझ जैसे अपवित्र को मुक्तिलोक प्रदान किया ॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी नीच निहार, संत सरन न्यारा किया।
महुँ पुनि उतरौं पार, संत चरन रज धूरि धर।।

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि इस पापी को देखकर संतों की शरणागति ने इसे विलक्षण बना दिया। (उनकी कृपा से) मैं पुनः उनकी चरण रज को सिर पर रखकर मैं इस भवसागर के उस पार उतरा ॥

॥ दोहा ॥

तुलसी मन निरमल भयौ, सूरति सार सुधार ॥
संत चरन किरपा भई, उतरौ भौजल पार ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि सुरति तत्त्व को सुधार कर मेरा मन निर्मल हो उठा है। सन्त के चरणों की यह कृपा है मैं अब भवसागर से पार उतर गया हूँ ॥

॥ सोरठा ।

घट रामायन सार, ये अगार गति यों कही।
बूझै बूझनहार, बिन सतगुरु पावै नहीं ॥

अर्थ–घट रामायण के सार तत्त्व के रूप में उस अगली गति का वर्णन इस प्रकार किया है। कोई बूझने वाला ही इसे बूझ सकता है, किन्तु वह भी बिना सतगुरु के नहीं समझ सकता॥

॥ दोहा ॥

सतगुरु चरन निवास, निस दिन सूरति बसि रही।
संत चरन अभिलाष, पल छिन छिन छूटै नहीं॥ १ ॥
घट रामायन माहिं, अर्थ भेद अंदर सही।
रावन लंका राम, यह अकाम गति ना कही॥ २ ॥

अर्थ–सतगुरु के चरणों में निवास करते हुए प्रतिदिन सुरति ध्यान में चित्त बस रहा है और इस प्रकार, सन्तों के चरणों की अभिलाषा एक दल और एक क्षण के लिए भी नहीं छूट पाती॥ १ ॥

घट रामायण के अन्तर्गत सम्पूर्ण अर्थ तथा उसका रहस्य घट के अन्तर्गत है और वही ठीक भी है। रावण, लंका एवं राम सभी उसके अन्दर ही है–यह समझ कामना रहित है और उसकी गति का वर्णन नहीं किया जा सकता॥ २ ॥

॥ सोरठा ॥

दसरथ सीता नाहिं, भरत सत्रगुन ना कह्यौ।
ये निरखौ घट माहिं, बाहिर गति मति भरम है॥ १ ॥
घट रामायन माहिं, घट बिधि गति मति सब कही।
परखै परम निवास, यह अकास अंदर मई॥ २ ॥

अर्थ–सीता तथा दशरथ बाहर नहीं है, भरत शत्रुघ्न भी बाहर नहीं कहे गए है। इन सबको घट में ही देखो, इनके पिंड के बाहर होने की गति बुद्धि का भ्रम है॥ १ ॥

घट रामायण के अन्तर्गत मैंने पिंड (घट) की विधि, ज्ञान तथा समझ सबके विषय में बताया है ताकि साधक इस घटाकाश में स्थित उनके रमणीक निवास को समझ सके॥ २ ॥

॥ चौपाई ॥

रावन राम भेद समझाई। रामायन सब घट बिधि गाई॥
संत की गति अगत अगोई। अगम निगम घर सुरति समोई॥
संत गती गति बेद न जाना। सिम्रित सास्तर और पुराना॥
पंडित भेष भक्त और ज्ञानी। जोगी परमहंस नहिं जानी॥
स्त्रावग तुरक तोल नहिं पाया। भरमे सबहि काल गोहराया॥

अर्थ–रामायण में घट विधि के रूप में गाकर मैंने रावण तथा राम का भेद समझाया है। संतों की गति अगम एवं स्पष्ट (अगोई) है। उनका अगम-निगममय घर सुरति ज्ञान में ही समाया हुआ है॥

सिद्ध (गती) सन्त का भेद वेद नहीं जानता–स्मृति (सम्रित) शास्त्र और पुराण भी नहीं समझते, नाना प्रकार के वेष धारण करने वाले पंडित, भक्त और ज्ञानी योगी, परमहंस भी नहीं जानते–जैन श्रावक, तुर्क भी उसे तौल नहीं पाते (मूल्यांकन नहीं कर पाते) वे सभी भ्रम में भ्रमण करते रहते हैं और अन्त में काल (मृत्यु) उन्हें बुला लेती है।

॥ दोहा ॥

पंडित ज्ञानी भेष, यह अदेश गति ना लखी।
स्त्रावग तूरक न देख, सत सार अंदर चखी॥

अर्थ–पंडित, ज्ञानी, आडम्बर वेषधारी आदि इस अदेख (घट रामायण) की गति के अर्थ को नहीं जानते। इस घट के भीतर चलने वाली प्रक्रिया और मूलतत्त्व को स्त्रावक (जैन) एवं तुर्क भी नहीं देख पाते॥

॥ चौपाई ॥

ये सब भूल भाव गति गाई। तन भीतर काहू नहिं पाई॥
ये तन भीतर संतन देखा। यह अदेख गति कहौं अलेखा॥
गंगा जमुना और त्रिबेनी। तन भीतर ब्रह्मण्ड की सैनी॥
पृथ्वी पवन गगन अकासा। यह सब देखे घटहि निवासा॥
पाँच तत्त जल अगिनि समाना। पिंड माहिं ब्रह्मंड बखाना॥
रबि चंदा तारागन होई। और अनेक बिधान समोई॥
बाहिर भर्म भेद गति गावैं। पाहन पानी से लौ लावैं॥
तीरथ बरत जो चारौ धामा। यह सब पाप पुन्य निज कामा॥
पूरब पच्छिम फिर फिरि धावैं। सत्त पुरुष की राह न पावैं॥
सत्त पुरुष सत नाम कहाई। वह अनाम गति संतन पाई॥
सत्त नाम से निर्गुन आया। यह सब भेद संत बतलाया॥
पाँच नाम निरगुन के जाना। निरगुन निराकार निरबाना॥
और निरंजन है धर्मराई। ऐसे पाँच नाम गति गाई॥
सोई ब्रह्म परचंड कहाई। ता को जपै जगत मन लाई॥
दस औतार ब्रह्म कर होई। ता को कहिये निरगुन सोई॥
तिन पुनि रचा पिंड ब्रह्मंडा। सात दीप पृथ्वी नौ खंडा॥
सब जग ब्रह्म ब्रह्म करि गाई। आदि अन्त की राह न पाई॥
यह गति मति बिधि मैं पुनि भाखा। कोई जगत न सूझी आँखा॥
यह विधि सत मति भेद बताई। काहू के परतीत न आई॥
कासी पंडित और अचारी। जोगी परमहंस ब्रह्मचारी॥
कहै तुलसी कोइ भेद न पाया। यह सब भाव भेद भरमाया॥

अर्थ–मैंने इन सब मूल भावों की गति का गान किया–जिसे मन के भीतर (इन) किसी ने भी नहीं प्राप्त किया है। इस शरीर के भीतर इसे सन्तों ने देखा है। इस अदेख की अलक्ष्य गति का मैं वर्णन करता हूँ॥

गंगा, यमुना और त्रिवेणी–इस शरीर के भीतर (इड़ा, पिंगला, सुषम्ना के रूप में) इस शरीर के भीतर ब्रह्मांड की सरणि में हैं। पृथ्वी, पवन, गगन और आकाश इनका निवास मैंने घट के अन्दर ही देखा है॥

पाँचों तत्त्व जल और अग्नि की ही भाँति पिंड के ही भीतर वैसे ही हैं, जैसे ब्रह्मांड में। यहीं सृष्टि की ही भाँति सूर्य, चन्द्रमा एवं तारागण हैं–तथा अन्य सृष्टि विधान भी यहाँ समाए हुए हैं॥

बाह्य संसार के भ्रम तथा भेद की गति सभी गाते हैं और वहाँ साधुजन पत्थर (मूर्तिपूजा) एवं जल (स्नान, तर्पणादि) में अपनी धार्मिक निष्ठा लगाते हैं॥ तीर्थ, व्रत और चारों धाम में सब पाप-पुण्य की अपनी कल्पना है॥

पूरब, पश्चिम में परिक्रमाएँ करके पुनः पुनः जाते हैं–किन्तु ये सब सत्य पुरुष का मार्ग नहीं पाते हैं। सत्य पुरुष-सत्य नाम से जाना जाता है (कहा जाता है) और उसका कोई नाम नहीं होता (अनाम) ऐसी अवस्था इन सन्तों ने प्राप्त कर ली है॥

इन सारे भेदों को सन्तों ने बताया है–सत्य नाम से ही निर्गुण का प्राकट्य होता है। इस निर्गुण के पाँच नाम है–निर्गुण, निराकार, निर्वाण, निरंजन और धर्मराज–इस प्रकार से उसके पाँच नाम हैं॥

वही व्यापक (प्रचंड) ब्रह्म है, जिसमें संसार अपना मन लगाकर गान करता है। इस ब्रह्म के दस अवतार होते हैं–उसी को निर्गुण ब्रह्म कहा जाता है॥

उसी ने इस पिंड और ब्रह्मांड तथा सात द्वीप, पृथ्वी एवं नौ खण्डों की रचना की है। उसी को सारा संसार ब्रह्म है, ब्रह्म है कहकर गान करता है, किन्तु उसके आदि अन्त का मार्ग कोई नहीं जानता॥

अपने ज्ञान और अपनी बुद्धि तथा विधि द्वारा मैंने उसका वर्णन किया है–सम्भव है, यह किसी के विश्वास का विषय न बने। काशी के विद्वान् पंडित और धर्माचरण से सम्बद्ध विद्वान योगी, परमहंस तथा ब्रह्मचारी आदि ने उसका रहस्य नही प्राप्त किया है। तुलसी साहब कहते हैं कि इन सबने तो उस ब्रह्म के स्वरूप तथा भेद के विषय में निरन्तर लोगों को भरमाया है॥

हाल काशी का

॥ दोहा ॥

तुलसी ग्रन्थ पसार, कासी नगर सगरे भई।
पंडित ज्ञानी भेष, जैन तुरक सब मिलि कही॥ १॥
तुलसी बाम्हन साध, गंगाजी पार रहतु है।
निंदत सिम्रित बेद, यह अभेद गति कहतु है॥ २॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हमारे ग्रन्थ का प्रचार (प्रसार) काशी नगरी में चारों तरफ हुआ और पंडित, ज्ञानी, भेष, जैन, तुर्क इन सभी ने मिलकर कहा॥ १॥

एक तुलसी नाम का साधु ब्राह्मण है, गंगा नदी के उस पार रहता है–वेद स्मृतियों की निन्दा करता रहता है और (ब्रह्म की) रहस्यमयी गति का वर्णन करता है॥ २॥

॥ चौपाई ॥

सब पंडित मिलि मता उठाई। या को करिये कौन उपाई॥
नैनू नाम इक पंडित भारी। तेहि पंडित मिलि सोच बिचारी॥
तुलसी नाम इक साध कहाये। जिन सब नेम अचार उठाये॥
ग्रंथ बनाइ कीन्ह एक भाषा। तीरथ बरत एक नहिं राखा॥
वा कौ भेद भाव सब लीजै। केहि बिधि ज्ञान समझ तेहि कीजै॥
स्यामा समझ एक बतलाई। रहन पास कोइ ताहि बुलाई॥
पंडित एक कहीं समझाई। रहन अहीर सोइ भाखि सुनाई॥

नाम जानि इक ह्रिदे अहीरा। निसि दिन आवै हमरे तीरा॥
सुनै कथा पुनि सेवा करई। गत दिवस बस पासै परई॥
नैनू मिलि सब बाम्हन भाई। तिनि पुनि ह्रिदे अहीर बुलाई॥
सब पंडित अस पूछन लाई। कौन ज्ञान यह कहत गुसाँई॥
वेद भेद मरजाद उठावै। सिम्रित सास्तर ना ठहरावै॥
गंगा जमुना अन्तर मानै। है परतच्छ ताहि नहिं जानै॥
पूजा पत्री और अचारा। तिरथ बरत कहै झूठ पसारा॥
राम रहीम एक नहिं, मानै। यह कछु ठौर और कछु ठानै॥

अर्थ–सभी पंडितों ने मिल कर यह तय किया कि इसके लिए क्या उपाय किया जाए। नैनू नाम के एक बड़े पंडित थे–उन्होंने उन पंडितों के साथ मिलकर सोच विचार किया॥

तुलसी नाम के एक साधु कहे जाते हैं जिन्होंने सारे नियमों तथा आचरणों को समाप्त सा कर दिया है (उठाये)। यह सब एक ग्रन्थ बनाकर किया है और उन्होंने तीर्थों एवं व्रतादि एक भी तत्त्व की रक्षा नहीं की है॥

उनके इस प्रकरण में सारे रहस्य (भेदभाव) लें और उनका ज्ञान किस प्रकार का है, उसे समझकर उसके लिए निर्णय लीजिए॥ हे स्वामा! मैं एक समझदारी की बात कहता हूँ–उसे समझो, उनके पास जो कोई रहता हो, उसे बुलवा लीजिए॥

एक पंडित ने समझाकर कहा कि–एक अहीर उनके पास रहता है, उसी को आने के लिए कहकर बुलाओ। हृदय अहीर का नाम जानकर–जो रात-दिन पास आता था। वह मुझसे कथाएँ सुनता था और फिर वह सेवा में तत्पर रहता था और रातदिन हमारे पास ही पड़ा रहता था।

नैनू और समस्त ब्राह्मण बन्धु मिलकर उन्होंने फिर उस हृदय अहीर को बुलवाया। समस्त पंडित इस प्रकार पूछने लगे कि यह (तुलसीदास गोस्वामी) किस ज्ञान की बात करता है।

उनकी बातें सुनकर हृदय ने उत्तर दिया यह गोस्वामी वेदों के भेद की मर्यादा को समाप्त करके (उठावें) स्मृति एवं शास्त्र ज्ञान को नकारते हैं। वे गंगा और यमुना के अन्तर को मानते हैं और जो लोकधर्म प्रत्यक्षतः दिखाई पड़ता है (मूर्तिपूजा, तर्पण आदि) उनको महत्त्व नहीं देते॥

पूजा-पत्री तथा अन्य आचरण एवं तीर्थ-व्रतादि को मिथ्या प्रसार कहते हैं। राम तथा रहीम दोनों में से किसी को भी नहीं मानते हैं और वे कुछ देर तक परम्परा से हटकर कुछ अन्य बातें कहते हैं।

॥ दोहा॥

दीन्हा ह्रिदे जवाब, साफ बात बिधि यों कही।
गति सत संत अपार, पंडित बिधि जानै नहीं॥

अर्थ–हृदय ने इस प्रकार का उत्तर दिया और सारी बातें साफ-साफ इस प्रकार कह दी। उन संत का ज्ञान अनन्त है, पंडित जन तो किसी विधि से उसे नहीं जान सकते॥

॥ चौपाई॥

ह्रिदे अहीर ज्वाब अस दीन्हा। संत गती कोइ बिरले चीन्हा॥
मैं तौ अपढ़ जाति अज्ञाना। तुम पंडित पढ़े बेद पुराना॥
संतन की गति कहाँ बुझाई। तुमहुँ ने बेद भेद नहिं पाई॥
पढ़ि पढ़ि पंडित पचि पचि हारी। बेद न भेद संत गति न्यारी॥

अर्थ–हृदय अहीर ने उत्तर दिया कि सन्तों की गति कोई विरला ही पहचानता है–मैं तो अपढ़ एवं अज्ञानी जाति का हूँ और आप लोग पंडित (ज्ञानी) हैं और वेद-पुराण पढ़ते रहते हैं ॥

यदि आप लोग कहें तो मैं सन्तों की दशा का वर्णन करूँ, आप लोग उनकी गति की जानकारी वेदों द्वारा नहीं प्राप्त कर सकते। पंडित जन पढ़-पढ़कर और कर्म-कर करके हार गए किन्तु सन्तों की न्यारी गति का भेद वेदों ने नहीं दिया ॥

॥ सोरठा ॥

नैनू कहै बिचार, यह निकाम कस भाखेऊ।
यह जड़ जाति गँवार, बेदन सों न्यारी कहै ॥

अर्थ–नैनू पण्डित उस पर विचार करते हुए कहते हैं कि यह जड़ जाति का गँवार निष्काम तत्त्व को कैसे बता सकेगा, (यह तो इसकी मूर्खता है कि) कि इसे वह वेदों से विलक्षण कह रहा है ॥

॥ चौपाई ॥

नैनू सुनि पुनि मारनि धाये। पंडित और अनेक बुलाये ॥
सब से कहै सुनौ तुम ज्ञाना। यह अहीर कस करत बखाना ॥
सब पंडित मिलि यह बिधि ठानी। या की करौ प्रान की हानी ॥
यह सब मिलि कर मता उठाई। हिरदे ऊपर लात चलाई ॥

अर्थ–नैनू पण्डित यह सुनकर उसे मारने दौड़े और अनेक पंडितों को बुला लिया। उन्होंने सभी से कहा कि तुम इसके ज्ञान को सुनो–यह अहीर उसका कैसे वर्णन कर रहा है। सब पंडितों ने इसे सुनकर, ऐसा निश्चय किया कि इसके प्राण की हानि करो (मार डालो) ॥ यह सुनकर ऐसा करने का सभी ने निश्चय किया और हृदय अहीर के ऊपर लात चला दिए ॥

॥ सोरठा ॥

तुरक तकी इक स्वार, जात हते दरबार को।
घोड़ा फेरि निहार, यह बिबाद कैसे भई ॥

अर्थ–एक तुर्क मीर तकी नामक घुड़सवार (स्वार) दरबार के लिए जा रहे थे। उन्होंने घोड़े को फेरकर देखा कि यह विवाद क्यों घटित हुआ ॥

॥ चौपाई ॥

सेख तकी इक तुरुक सवारा। ते पुनि जात हते दरबारा ॥
सुन करि बात बाग उन मोड़ा। फेरि लगाम कीन्ह उन घोड़ा ॥
सेख तकी पूछी पुनि बाता। तैं कहु कौन कौन सी जाता ॥
केहि कारन यह झगरा होई। सो सब भेद कहौ बिधि सोई ॥

अर्थ–शेख तकी नामक एक सवार तुर्क जो वे उस समय राज दरबार में जा रहे थे, उन्होंने यह बात सुनकर घोड़े की लगाम रोकी और लगाम को फिराकर घोड़ा उनकी ओर मोड़ दिया ॥

तब शेख तकी ने उनसे यह बात पूँछी–तुम बताओ, किस-किस जाति के हो। किस कारणवश यह झगड़ा हो रहा है–यह सारा रहस्य मुझे बताओ ॥

॥ सोरठा ॥

नैनू निरखि पुकार, सेख तकी को देखि कर।
ये का कहत गँवार, बिधि कुरान मानै नहीं॥

अर्थ–शेख तकी को देखकर नैनू ने पुकार कर कहा, यह गँवार क्या कह रहा है, यह कुरान शरीफ़ की व्यवस्था नहीं स्वीकार करता॥

॥ चौपाई ॥

नैनू कहै सुनौ मेहरबाना। बेद कितेब न मानै पुराना॥
राम रहीम एक नहिं मानै। पंडित काजी झूठ बखानै॥

अर्थ–नैनू पंडित ने कहा, हे मेहरबान? सुनें, यह वेद, शास्त्र एवं पुराणों को नहीं मानता। यह राम तथा रहीम दोनों में से एक को भी नहीं मानता तथा पंडित एवं काजी दोनों को झूठ कहता है॥

॥ सोरठा ॥

हिरदे कही बिचारि, सेख तकी जो तुरक से।
तुम बूझौ दिल माहिं, खुदा एक सब में कहौ॥

अर्थ–हृदय अहीर ने अत्यन्त विचारपूर्वक उन शेख तकी तुर्क से कहा कि आप दिल से समझकर बताइए–सभी ने खुदा को एक ही कहा है॥

॥ चौपाई ॥

हिरदै कहै तकी सुनु सेखा। सब में कहौ खुदा है एका॥
गाय मार बकरी तुम खइया। येहि किताब में कह्या गुसँइयाँ॥
सब में नूर मुहम्मद केरा। काटि गला पुनि पैहौ बैरा॥
येही कितेब कुरान बखाना। जिन्दा को मुरदा करि जाना॥
सोई मुसलमान है भाई। नवी नाम हर दम लौ लाई॥
रोजा कर कर खून बिचारा। ये गुनाह नहिं बक्सनहारा॥
झूठा रोजा झूठ निवाजा। झूठा अल्ला करै अवाजा॥
वा साहिब की राह न पाई। सब जहान में रहा समाई॥

अर्थ–हृदय अहीर ने कहा कि हे शेख तकी सुनें, कहते हैं, सभी में खुदा एक हैं। तुम गाय और बकरी मारकर खाते हो, किस पुस्तक में ईश्वर द्वारा यह कहा गया है। सभी जीवों में मुहम्मद साहब पैगम्बर का नूर (प्रकाश) है–उनका गला काटकर, उनका क्रोध ही प्राप्त करोगे।

क्या यही शास्त्र और कुरान में कहा गया है कि जीवित को मुर्दा मानकर समझो। मुसलमान वही है–जो निरन्तर नबी के नाम की लौ लगाए रहता है। रोजा रख रखकर रक्तपात पर कभी विचार लिया है, इस गुनाह (अपराध) को कोई क्षमा करने वाला नहीं है॥ रोजा भी झूँठा है– नमाज भी झूँठा है और 'अल्ला हो-अल्ला हो' की लगाई वाली आवाज भी झूँठी है। उस साहब (स्वामी – ईश्वर) की कोई राह नहीं पाया है–वह सारे संसार में समाया हुआ है॥

॥ सोरठा॥

सेख तकी सुन बात, ज्वाब स्वाल बोले नहीं।
धर्मा जैनी जाति, संग बात कीन्ही सही॥

अर्थ–शेख तकी उस बात को सुनकर उसके जवाब एवं सवाल (उत्तर तथा प्रश्न) के संदर्भ में कुछ नहीं बोले–साथ में धर्मा नाम के जैनी पंडित थे, उन्होंने बातें कहीं॥

॥ चौपाई॥

धर्मा नाम जाति इक जैनी। उन सब सुनी हमारी कहनी॥
धर्मा स्त्रावग कहै बिचारी। जैन मता है सब से भारी॥
ये मति आदि साध नहिं जानै। तैं मत झूठा बाद बखानै॥
चौबीसों तीर्थंकर जानी। आदि नाथ हैं हमरे स्वामी॥
तिनकी आदि कहा तुम जानौ। नाहक बेगुन बादि बखानौ॥

अर्थ–धर्मा नाम का एक जैन धर्ममतावलम्बी थे। उसने हमारी बातचीत सुनी। श्रावक धर्मी विचारपूर्वक बोले, कि जैन मत सर्वश्रेष्ठ है। जो धार्मिक मत साधुओं का आदि रूप नहीं जानता, वह मत झूठे सिद्धान्तों का वर्णन करता है। चौबीसों तीर्थंकरों को समझो और हमारे स्वामी तो आदि नाथ हैं। उनके आदि उपदेश (कहा) तुम समझो निरर्थक बिना तत्त्व के सिद्धान्तों को बता रहे हो॥

॥ सोरठा॥

हिदे कहै सुनु बात, जैन मता पुनि सब कहौं।
सुनौ भेद बिख्यात, आदि अंत सब समझि कैं॥

अर्थ–हृदय अहीरने कहा मेरी बातें सुनों, जैन धर्म के विषय में मैं पुनः सच कहता हूँ, इसके विज्ञान भेद को, इसके आदि अन्त को समझकर सुनो॥

॥ चौपाई॥

हिरदै कहै सुनौ हो भाई। आदि नाथ की आदि सुनाई॥
जो तुम सुनौ कहौं बिधि नाना। हम सब कहैं सुनौ दै काना॥
प्रथम जुगल्या धर्म बिचारी। आई छींक भये सुत नारी॥
होते छींक प्रान तेहि जाई। कन्या पुत्र भये तेहि ठाई॥
ता पीछे कुलंकर की बाता। चित दे सुनौ कहौं बिख्याता॥
चौधा कुलंकर भेद बखाना। ता में नभ राजा इक जाना॥
मुरा देबि देहिं भाखौं भेवा। जाकर ऋषभराय भये देवा॥
भागवत कहै ताहि अवतारा। तिन का सुनौ आदि निरबारा॥
ता ने तप कीन्हौ निरबाना। मुक्ति पाइ पुनि काल समाना॥
ऐसे भये और चौबीसा। पुनि पुनि आये मुक्ति पद ईसा॥
ता में प्रथम ऋषबदेव होई। भाखा तिन जग थापा सोई॥
आगे भेद न उनहूँ जाना। यह सुन सार भेद निरबाना॥

जग थापा पुनि धर्म चलाई। आदि पुरान में देखौ भाई॥
कह नौकार जाए बतलाई। जाकी विधी कहौं समझाई॥
जाप भेद मैं कहौं पुकारी। दिल अपने में लेउ बिचारी॥
अरिहँत सिन्द्ध भाखि बिधि नामा। अरियानं उज्झान जाना॥
लोये सर्व साध को कीन्हा। ये नौकार मन्त्र उन लीन्हा॥
सुनि धरमा तब चकृत भयऊ। सब बरतंत जैन कौ कहेऊ॥

अर्थ–हृदय ने कहा, हे भाई? सुनो, आदि नाथ की आदिकथा मैं सुनाता हूँ। यदि तुम उसे सुनना चाहते हो तो मैं उसे नाना विधियों से कहता हूँ। (इस कथा को) हम सब कहते हैं, हृदय से ध्यान लगाकार सुनो॥

प्रथम 'जुगल्या' धर्म पर विचार करता हूँ। छींक आई और उससे चार बच्चे पैदा हुए। छींक आते ही उसके प्राण विनष्ट हो उठे और उस स्थल पर कन्या तथा पुत्र हुए। उसके पीछे कुलंकर की बातें कहता हूँ। लोक में प्रसिद्ध कथा को चित्त लगाकर सुनो।।

मैं चौथे कुलंकर की बात कहता हूँ–उसमें नभ नामक एक राजा था। उसको मुरा देवी ने सारा ज्ञान रहस्य बताया–जिसके ऋषभ राय हुए। भागवत में ऋषभराय अवतार बताए गए हैं–उनके विषय में मूल निराकरण सुनें। उन्होंने तपस्या करके निर्वाण प्राप्त किया और मुक्ति पाकर वह काल में समाहित हो उठे। इसी प्रकार अन्य चौबीस तीर्थंकर हुए और वे मुक्त होकर बार-बार ईश्वर में विलीन हुए॥

इन समस्त तीर्थंकरों में सर्वप्रथम ऋषभदेव हुए–उन्होंने जिस मत का उपदेश दिया, वही संसार में स्थापित हुआ। उसके आगे उन्होंने भी भेद नहीं समझा–तुम उस निर्वाण भेद के सार तत्त्वों को सुनो। उन्होंने जैन धर्म चलाकर संसार में उसकी स्थापना की। हे भाई! इसे जाकर आदि पुराण में पढ़ो।

उन्होंने नौ प्रकार के जापों की चर्चा की है–उनकी विधियाँ मैं समझाकर कहता हूँ। मैं जापभेदों के विषय में पुकार कर कहता हूँ, आप इसे अपने दिल में विचार लें।

अरिहंत, सिद्ध तथा विधिपूर्वक नामों का कथन करके अरियान, उज्झान लुप्त (लोए) एवं सर्व साध–आदि नौकार मंत्र उन्होंने बतलाया था?

इसे सुनकर धर्मा जैनी चकित हो उठा कि इसने तो जैन मत का सारा वृत्तान्त बता दिया।

॥ दोहा ॥

सुनिधर्मा यह भेद ये अभेद कछु दीन कहै।
जैन मत समझाइ ये अकाय कछु अगम हैं॥

अर्थ–धर्मा ने इस भेदों को सुनकर कहा ये भेद अभेद्य हैं–जैनमत के अन्तर्गत ये वैचारिक (अकाय) तथा अगम्य मत हैं (इस हृदय अहीर को कैसे ज्ञात हुआ)।

॥ चौपाई ॥

सेख तकी पंडित भये एका। धर्मा धर्म कि बाँधी टेका॥
ये. तीनों तुलसी पै आये। हिरदे ऊपर बाँह चढ़ाये॥
और अनेक मूरख बहुतेरे। कोइ सूधे कोइ चलैं अनेरे।।
हिरदे अहीर चले सब झारी। जहँ तुलसी ने कुटी सँवारी॥
हिरदे अहीर साथ झख भारी। तब तुलसी ने मता बिचारी॥

सब चलि आये कुटी के पासा। जब तुलसी मन कियौ हुलासा॥
उठि के चरन गहे सब केरे। कीन्ही दया दीन तन हेरे॥
बाम्हन पंडित धर्मा जैनी। सेख तकी से कीन्ही सैनी॥
नैनू पंडित सैन सँवारा। धर्मा हिये उठै जस झारा॥
यह दोनों मिलि मता बिचारी। सेख तकी को आगे डारी॥
नैनू नोक टोक इक झारा। यह इनके हैं गुरू बिचारा॥
पूछे भेद कहैं निरवारा। इन कस भाखा झूठ पसारा॥

अर्थ–शेख तकी और पंडित एक हो गए और धर्मा ने धर्म की टेक बाँध ली। ये तीनों तुलसी साहब के पास गए इनके हृदय उद्विग्न थे और बाहें चढ़ी हुई थीं॥ उनके साथ और अनेक मूर्ख जन थे–कोई सीधे चलता था को कोई टेढ़े चलता था। हृदय अहीर के साथ सब एक हो चले और वहाँ आए, जहाँ तुलसी ने अपनी कुटी सँवार रखी थी॥

हृदय अहीर के साथ बड़ी भीड़ थी, तब तुलसी साहब ने मन-ही-मन विचार किया। सब उनकी कुटी के पास चलकर आए तब तुलसी ने मन में आनन्द प्रगट किया॥ उन्होंने उठकर सबके चरणों में प्रणाम किया (स्पर्श किया) और कहा कि आप सब इस दीन की ओर देखकर दया करें॥

ब्राहमण, पंडित, जैनी धर्मा और शेख तकी की ओर देखा। नैनू पंडित ने नेत्रों से इशारा किया और धर्मा जैनी के हृदय में आग की लपट जैसी उठ पड़ीं॥ उन दोनों ने मन में विचार करके शेख तकी को आगे कर दिया।

नैनू पंडित ने पहले नोक झोंक शुरू कर दी–ये बेचार के इनके (हृदय अहीर के) गुरु हैं। इनसे ज्ञान के भेदों की बात आप पूछिये ये इसका निराकरण करेंगे और आप इनसे पूछे कि इन्होंने इस प्रकार असत्य का प्रसार क्यों किया है।

॥ सोरठा ॥

हिरदै कहै निहोर, स्वामी तुलसी विधि सुनौ।
मैं कछु कही न और, ये अबूझ बूझी नहीं॥

अर्थ–हृदय अहीर ने सम्बोधित करके कहा कि हे स्वामी तुलसी साहब? इसे विधिपूर्वक सुनें–मैंने अपनी तरफ से कोई नई बात नहीं कही (आपकी ही बातें बताई) किन्तु उस अबूझ वाणी को ये सब समझ नहीं पाए॥

॥ चौपाई ॥

हिरदे कहै सुनौ हो स्वामी। मैं कछु कही रीति गति ज्ञानी॥
नैनू पंडित कहै बिचारी। इन सब ज्ञान कही गति न्यारी॥
इन सब धर्म कर्म जग पेला। अस कस ज्ञान कहै यह चेला॥
इन सब बेद कितेब उठावा। जौगी जैन नहीं ठहरावा॥
और अनेक बात नहिं मानै। अस कह मन्त्र सुनायौ कानै॥
तब तुलसी सुनि आदर कीन्हा। प्रीति भाव उठि आसन दीन्हा॥
दीन बिधी सब अपनी गाई। चरन परसि कै सीस चढ़ाई॥
मैं अनाथ हौं तुम्हरौ बारा। छिमा करौ मैं दास तुम्हारा॥

मैं औगुन की खानि अपारा। तुम गुन सीतल अपरम्पारा॥
तुम पंडित मैं अपढ़ अयाना। करौ दया तुम कृपानिधाना॥
ये हिरदे कछु ज्ञान न पावा। औगुन ज्ञान जो तुम्हें सुनावा॥
सीतल भये धीर तब आई। सुनि अस बचन बैठि भुँइ माई॥

अर्थ–हृदय अहीर ने कहा, हे स्वामी सुनें, मैंने ज्ञानियों की रीति के अनुसार ही कुछ बातें कही हैं। नैनू पंडित ने विचार कर कहा कि इन सबने ज्ञान की विलक्षण गति कही है। इस व्यक्ति ने तो धर्म, कर्म को संसार से नष्ट कर दिया–यह कैसा ज्ञान है, जिसे आपका यह शिष्य (हृदय अहीर) कहता है। इसने सम्पूर्ण वेदों, पुराणों आदि को निरर्थक बताया है तथा योगी एवं जैनियों का अस्तित्व ही नकार दिया है॥ यह धर्म की अनेक बातों को नहीं मानता ऐसा कहकर उन्हें (हृदय अहीर का) ज्ञानमंत्र सुनाया॥

यह सुनकर, तुलसी साहब ने नैनू पंडित का अत्यन्त आदर किया और प्रीतिभाव से उठकर उन्हें बैठने के लिए आसन दिया। उन्होंने नैनू पंडित से अपनी दीनता का वर्णन किया और उनके चरणों का स्पर्श करके उसे अपने सिर पर रख लिया।

मैं तो अनाथ हूँ–मुझे आपका ही आधार है–आप क्षमा करें मैं तो आपका दास हूँ॥ मैं अपार अवगुणों का भंडार हूँ और अपरम्पार शीतल गुणों के (भंडार) हो। आप पंडित ज्ञानी हैं और मैं अपढ़ और अज्ञानी हूँ–आप कृपा निधान हैं तुम मुझपर दया करों। इस हृदय ने किसी भी प्रकार के ज्ञान को नही प्राप्त किया है जो इसने आपको सुनाया है वह पूर्णतः दोष भरा (अवगुण) ज्ञान है॥

इसे सुनकर वे लोग शीतल (शान्त) हुए और उनमें धैर्य (सहजता) आया और इन बातों को सुनकर वे सभी भूमि पर बैठ गए॥

॥ सोरठा ॥

तकी तुरक कह बात तुलसी सुनियो भेद अब।
सब हृदय विख्यात जो गुनाह इनने कियो॥

अर्थ–तुर्क तकी ने यह बात कही कि हे तुलसी साहब! सारा रहस्य अब सुनो, जो पाप इस हृदय अहीर ने किया है, वह सबको ज्ञात है।

॥ चौपाई ॥

सेख तकी जब बचन सुनाई। तुलसी सुनियौ चित्त लगाई॥
हिरदे कुफर बात सब कीन्हा। रोजा निमाज मेटि सब दीन्हा॥
और कितेब कुरान उठाये। खुदा नबी कर खोज मिटाये॥

अर्थ–शेख तकी ने जब यह बात सुनाई तो तुलसी ने ध्यान देकर बात सुनी। हृदय अहीर ने कुफ्र की बातें की तथा रोजा तथा नमाज़ आदि सबको झूँठा कह दिया। उन्होंने धार्मिक पुस्तकों और कुरान को उठा (समाप्त घोषित कर) दिया और खुदा एवं नबी (ईश्वर के दूत) का अस्तित्व मिटा डाला॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी तकी विचार, सब सँवारि विधि मैं कहौं।
कहुँ कुरान निरधार, जो किताब भाखी सबै॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने सब को सँवार कर विधिपूर्वक बातें कही हैं। कहीं कुरान निराधार थोड़े है–उसका किताब में वर्णन तो सभी ने किया है॥

॥ सम्बाद्द साथ तकी मियाँ के ॥

॥ चौपाई ॥

तुलसी कहै तकी सों बाता। या का तकी सुनौ बिख्याता॥
चौधा तबक कुरान बताया। और चौबीस पीर पुनि गाया॥
फजल मुहम्मद कीन्ह जहाना। आब ताब पट अबर निदाना॥
सुनौ तकी कहुँ खोज न पावै। कहा किताब ज्वाब नहिं आवै॥
काजी मुल्ला पढ़े कुराना। खुदा खुदा कहे खोज न जाना॥
कोलि कितेब देखिये भाई। खुदा आदि कहौ कहँ से आई॥
खुद खुदाइ कर कहैं कुराना। खुद खुदाई का मरम न जाना॥
ये खुदाइ ना कहिये भाई। ये तौ खुद खुदाइ की छाँहीं॥
जहँ खुदाइ रहता है साँई। उस खुदाइ का अंत न पाई॥
तकी खुदा तुम एक बतावो। खुद खुदाइ का खोज लगावो॥

अर्थ–तुलसीदास शेख तकी से अपनी बात कहते हैं, हे शेख तकी! इस विख्यात तथ्य को आप सुनें। कुरान ने चौदह तबक (आधार स्थल) बताया है और फिर चौबीस पीरों के विषय में गाया है।

मुहम्मद साहब की कृपा ने यह सृष्टि बनाई, सूर्य तथा आकाश उन्हीं के बनाए हैं। भिन्न-भिन्न चौदह तबक (आधार स्थल) बतलाए गए हैं और उनके अलग-अलग पीर भी दिखाए गए हैं॥

किस तबक में किस नबी (ईश्वर के दूत) का निवास है। हे शेख तकी उस ईमान हक्क के विषय में कहिये॥

जहाँ वह स्वामी खुदा रहता है, उस खुदा का कोई अन्त नहीं पाता। हे तकी! तुम खुदा को एक बता रहे हो और स्वयं उस खुदा की खोज लगाओ।

अल्लाह ने अपने मुख एवं जुबान से जो कुछ कहा उससे किताब कुरान (धर्मग्रन्थ) बना। भाई पैगाम्बर ने यह स्पष्ट किया कि सारा संसार उसकी खिलकत (सृष्टि) है। ॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी तकी तलास, खुदा बास कहु कहँ हता।
नहिं जब जिमीं अकास, कोइ किताब स्वाँसा नहीं॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे तकी खोजो, कि खुदा की निवास स्थली कहाँ हैं। इस समय वह कहाँ था, जब कोई धर्म ग्रन्थ नहीं था, न पृथ्वी थी न आकाश था और न वायु थी।

॥ दोहा ॥

मंसूरमियाँ पश्तो कहै तकी बूझ दिल माहँ।
खुद खुदाइ की राह का खुदा खोज नहिं पाइ॥

अर्थ–मंसूर मियाँ पश्तों में यह बात समझाते हैं तू इसे दिल से समझो। स्वयं खुदा भी खुदा की तराह की खोज नहीं कर पाता॥

॥ तुलसी साहब बाच ॥

॥ दोहा ॥

तकी तोल जाना नहीं, कहौ कुरान की बात।
दिल दरियाप्त अपने करो, जो कुरान बिख्यात ॥ १ ॥
खुदा चून बेचून है, अस अस कहत कुरान।
बिन जुबान अल्ला मियाँ, कस कस किया बखान ॥ २ ॥
अल्ला अलिफ जुबान, बिना बदन जाहिर नहीं।
जुबाँ बदन के माहिँ, तौ बेचूँ कहना नहीं ॥ ३ ॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते है हे शेख तकी उस निर्णय को जानते नहीं और कुरान की बातें करते हो। जो कुरान में विख्यात (सुप्रसिद्ध) है, उस तत्त्व की खोज अपने दिल में करो ॥ १ ॥

ऐसा कुरान कैसे कह सकता है– अल्ला मियाँ ने बिना जुबान के ईश्वर (खुदा) स्वयं कुछ कह सुन नहीं सकता।

कैसा-कैसा वर्णन कर दिया है, यह समझ में नहीं आता। कैसा ऐसा कैसा कर दिया है, समझ में नहीं आता ॥ २ ॥

अलिफ अल्ला की वाणी बिन मुख के कैसे प्रकाश में आई–अगर मुख में जुबान नहीं है तो कहने का क्या आधार है ॥ ३ ॥

॥ चौपाई ॥

तकी मियाँ हक बोल सुनावौ। अल्ला तौ बेचून बतावौ ॥
उनके बदन जुवाँ नहिं भाई। कैसे कितेब कुरान बनाई ॥
कागद स्याही कस लिख मारा। बिन जुबान कैसे बिस्तारा ॥
अल्ला मियाँ कितेब बनाई। कहौ जुबाँ बिन कैसे गाई ॥
ये तौ दिल बिच साँच न आवै। तुलसी तकी बोल नहिं भावै ॥
बिन जुबान मुख कहा कुराना। अल्ला के नहिं बदन जुबाना ॥
चूँ बेचून नमून न ज्वाबा। सुनौ तकी म्याँ कहै किताबा ॥
वहि कितेब कह खुदा जुबाना। अल्ला मुख से भये कुराना ॥
जो जुबान नहिं उनके भाई। तौ कस कहे कुरान बनाई ॥
या की तकी तोल बतलावौ। दिल में समझ बूझ समझावौ ॥
दिल और रूह राह बतलैयै। तब कुरान का गाना गैयै ॥
रूह रकान असमान ठिकाना। केहि बिधि गई राह पहिचाना ॥
सो घर का म्याँ भेद बतावौ। चौथा तबक तोल समझावौ ॥
सुनकर तकी तका नहिं बोला। मुख भया बंद जुबाँ नहिं खोला ॥
तुलसी कहै कहौ कस भाई। जा से दिल बिच होइ निसाई ॥
सुनकर तकी ज्वाब अस दीन्हा। मुरसिद मियाँ मरम हम चीन्हा ॥

तुलसी तकी दीन जब देखा। तब भाखा बिधि भेद बिसेखा॥
साँची महजित तन को जाना। जा में चौधा तबक समाना॥
मक्का भिस्त हज्ज येहि माई। मुल्ला काजी राह न पाई॥
मुहम्मद नूर जानि सब केरा। दोजख भिस्त में किया बसेरा॥
नूर नबी ने सब का कीन्हा। तुम हलाल बकरी कस कीन्हा॥
गुनहगार दोजख की रीती। करौ खून ये बहुत अनीती॥
जो महजित उन आप बनाई। सो हलाल करि कै तुम खाई॥
मिट्टी महजित कबर बनाई। झूठा हक ईमान बताई॥
साँची महजित तन मन साईं। खिलकत खुदा खलक के माईं॥
नूर नबी सब माहिं बिराजा। जाकी हर दम उठै अवाजा॥
नूर नबी सब माहिं बिचारा। तब दोजख से होइहै न्यारा॥
नासुत मलकुत जबरुत भाई। लाहुत राह नबी की पाई॥
लामुकाम रब साहिब साँई। वाको खोज भिस्त तब पाई॥
सेख तकी तक थक रहे भाई। ज्वाब स्वाल मुख से नहिं आई॥

अर्थ–हे शेख मियाँ। हक के विषय में बोलकर बताओ। अल्ला मियाँ को बेचून कहते हो। उनके न मुख है, न जुबान है–उन्होंने कितेब (धर्मग्रन्थ) और कुरान कैसे बनाया॥

उन्होंने कागज पर स्याही से कैसे लिख डाला, और बिना जुबान के उसका कैसे वर्णन करके विस्तार किया। यदि अल्ला मियाँ ने कितेब (धर्मग्रन्थ) बनाया है तो बताओ कि बिन जुबान के कैसे गाया॥

यह बात तो दिल में सच्ची तरह से उतरती नहीं–तुलसी साहब कहते हैं किमेरे इस प्रश्न पर तकी मियाँ बोल नहीं पा रहे थे। यदि अल्ला मियाँ के न मुख है, न जुबान तो बिना जुबान के उन्होंने कुरान कैसे कहा?

चून, बेचून और नमून का कोई जवाब नहीं है। हे तकी मियाँ, सुनो, यह किताबें बताती हैं। उसी कितेब (धर्मग्रन्थ) को खुदा की जुबान कहा जाता है और यह भी कहा जाता है कि अल्ला मियाँ के मुख से कुरान निकला था। हे भाई! यदि उनके पास जुबान नहीं है, तो उन्होंने कुरान कैसे कहा था। हे तकी मियाँ! इसका रहस्य समझाइये।

दिल और आला की राह भी बतलाइये तब समझकर कुरान की आयतें गायें। आत्मा रकान (नियंत्रक) आसमान पर रहती है। यह किस तरह अपने राह से आसमान तक गई क्या आपने इसे जाना है? हे मियाँ! उस घर का आप भेद बताइये चौदह तबकों (पृथ्वी और सृष्टि) का तोल (मानदण्ड) भी बतलाएँ॥

इसे सुनकर, तकी ने तुलसी साहब को देखा किन्तु बोल नहीं सके–मुँह बन्द हो उठा, जुबान नहीं खुली। तुलसी साहब ने प्रश्न किया कि हे भाई! कुछ कहो न, जिससे दिल को कुछ शान्ति मिल जाएँ। उसे सुनकर तकी ने इस प्रकार जबाब दिया। हे मियाँ इस मुरशीद (पथ प्रदर्शक) ने आपके रहस्य को पहचान किया है–तुलसी साहब ने जब तकी मियाँ को असहाय की तरह देखा तब उन्होंने विशेष रूप की विधियों का वर्णन किया।

हे मियाँ! इस शरीर को ही सच्ची मस्जिद समझो, इसी में उसके चौदह तबके समाए हुए हैं। मक्का, हज, स्वर्ग सभी इसी में हैं। इसके भेद की राह मुल्ला काजी आदि नहीं पा सके। सबको

मुहम्मद साहब ने प्रकाश समझकर स्वर्ग तथा पृथ्वी दोनों पर अपना निवास बनाया। उस नबी (ईश्वर के दूत) ने सबको नूर दिया फिर तुमने बकरी को उससे अलग समझकर क्यों उसका हलाल किया॥ इ नरक के ये गुनहगार है–तुम रक्तपात करते हो, यह बड़ी अनीति है।

जिस (शरीर रूपी) मस्जिद को ईश्वर ने स्वयं बनाई है, उस (बकरे के शरीर) को हलाल करके तुम खा जाते हो। तुम झूठे ईमान और अधिकार से प्रेरित मृत (मिट्टी) की शरीर (मस्जिद) को का बनाते हो।

इस स्वामी की सच्ची मस्जिद यही तक मन है और उसी के द्वारा खुदा इस संसार के बीच खिलकत (आनन्दित) है। समस्त नूर एवं नबी उसी में विराजमान हैं--जब तक ऐसा नहीं समझोगे उ इस संसार से अलग कहते रहोगे।

नासुत (संसार), मलकुत (देवलोक) जबरूत (स्वर्गलोक) तथा लाहुत (मृत्युलोक) इ चारो ने यहीं ही नबी (ईश्वर के दूत) की राह पाई थी।

वह स्वामी (मालिक) बिना मुकाम का है (सब जगह है, कोई निश्चित स्थान उसका मुकाम नह है) उसी की खोज से तुम स्वर्ग की खोज पा सकते हो।

इतनी बातें सुनकर मियाँ शेख तकी पूरी तरह से थक रहे और उनके मुख से प्रश्न एवं उत्तर दोन नहीं निकल रहे थे॥

॥ पश्तो १ ॥

खोल देखो रे किताबें, आद अव्वल कौन था (म्याँ)।
नहिं जमीं असमान खिलकत, खुद खुदा तब था कहाँ॥ १ ॥
कुफल खोले रे कुराना, मूल म्याना भेद का।
था कलम स्याही न कागज, और न था आदम मियाँ॥ २ ॥
नहिं मुहम्मद रब न रे जब, नहिं पैयम्बर पीर थे।
नहिं नबी का नाम निसबत, भिश्त दोजख नहिं रचे॥ ३ ॥
काजी मुल्ला रे बेहोशो, खोज करो दिल्दार का।
मन मुआ मनसूर जब से, आशिक जो चश्मे यार का॥ ४ ॥

अर्थ–हे मियाँ शास्त्र की पुस्तकों को खोल कर देखो, सबसे पहले कौन था? उस समय न पृथ्वी थी, न आसमान था तब उस समय खुदा कहाँ था॥ १ ॥

कुरान के कुफल के (रहस्य) को खोलो, उस मूल म्याना (तत्त्व) का रहस्य क्या था। उस सम न कलम थी, न स्याही थी, न कागज था, और न कोई मनुष्य था॥ २ ॥

न मुहम्मद साहब रब (स्वामी) थे, न पैगम्बर और पीर थे, न नबी का निश्वत (अस्तित्व) ना था। न स्वर्ग तथा पृथ्वी लोक रचा गया था॥ ३ ॥

हे ना समझ (बेहोशो) काजी-मुल्ला, उस दिलदार (ईश्वर) की खोज करो-जब से वह मुआ म चश्मे यार (सर्वदर्शक ईश्वर का) मंसूर बना॥ ४ ॥

॥ पश्तो २ ॥

यह खुदा ना है रे कुदरत, खुद खुदा कोइ और है (म्याँ)।
जिन खुदा को तख्त बख्शा, वह सकस कहो कौन है॥ १ ॥
दिल दिया और रूह रोशन, है हसन तन हुस्न को।

अब तबक चौथा दिये हैं, आदि खुदा को जानिये॥ २॥
कुल जहाँ आलम है कुन से, पट अबर अल्ला से है।
यह हर इक ना कोइ किसी पै, भेद दोस्ती दिल मिलै॥ ३॥
महरम मियाँ मनसूर आशिक, वह है बेचूँ बेनमूँ।
यह किताबों में नहीं है, खुद खुदा का राज है॥ ४॥

अर्थ–हे मियाँ! यह खुदा स्वयं कुदरत (प्रकृति) नहीं है–स्वयं खुदा (ईश्वर) इससे भिन्न कोई अन्य और है। जिन खुदा को आदि शक्ति ने संसार का अधिक सौंप दिया, बताओ वह शख्श कौन है?

जिसने सबको दिल दिया, आत्मा को प्रकाश दिया, इस शरीर को सौन्दर्य प्रदान किया, जिसने चौदह तबकों की आकाश के नीचे की धरती को प्रदान किया, उस आदि खुदा को समझें॥ २॥

यह सम्पूर्ण संसार ईश्वर के मुँह से निकलने वाले शब्दों से सम्बद्ध है और इस सारे संसार का नियंत्रण उसी ईश्वर से ही जुड़ा है यहाँ कोई किसी का नहीं है और दिल मिलने के बाद ही एक दूसरे से लोग जुड़ जाते हैं।

लोग राजदार हैं, उनके दिल की बातें मालूम नहीं होतीं और उनका प्रिय भी विलक्षण है और वह ईश्वर तो बड़ा विलक्षण तथा सारे मन की बातें समझ लेता है। ये बातें किसी धर्मग्रन्थ में नहीं लिखी गई हैं--यह ईश्वर का प्राकृतिक रहस्य है।

॥ पश्तो ३ ॥

ऐन अन्दर चश्म को रे, खोल देखो कौन है (म्याँ)।
कुल खलक आलम इसम बिच, दिल हिये में खसम है॥ १॥
नहिं किताबों में रे है कुछ, कुल कुरानै छूँछ है।
वह पिया आलम की आँखियाँ, और कहीं नहिं पूछ ले॥ २॥
हस्न है रे हंस जा से, हुस्न तन बिच में रहा।
भूल अपनी आद अव्वल, कट मरे मन मौज में॥ ३॥
होश गाफिल है रे दोजख, दिल दिया नहिं यार को।
बूझ बिल-आखिर खराबो, इश्क ज्यों मनसूर हो॥ ४॥

अर्थ–हे मियाँ! ऐन (आँखों) के अन्दर अपने चश्म (नेत्र शक्ति) को खोल देखो। सम्पूर्ण सृष्टि में उसका आलम (संसार) इसके बीच स्थित है और उसके दिल में उसका खसम (स्वामी) स्थित है॥ २॥

हे मियाँ! इन कुरान जैसी किताबों में यह कुछ भी नहीं है और सारी कुरानें इस दृष्टि से खाली पड़ी हैं॥ यदि कोई (सिद्ध साधक मिल जाए) मिल जाए तो उससे पूछो तो वह बताएगा कि वह ईश्वर आलम (सृष्टि) की आँखों में ही है॥ २॥

हे हंस (आत्म) जिससे हुस्न (सौन्दर्य) बरकरार है और इस शरीर के बीच में हुश्न (सौन्दर्य) बरकरार है तू आदि मूल आदिम स्थिति को भूल रहा है और मन की मौज में कटकर रहा है॥ ३॥

हे गाफिल (बेखबर) तुझे (इस नरक का होश नहीं है और उस परमात्मा रूपी यार को अभी तक अपना दिल नहीं दिया है। अब अन्तिम समय की स्थिति के बारे में समझो–तुम्हारा प्रेम अब कैसे मनसूर (एक साधक का नाम) हो॥

॥ पश्तो ४॥

देख कुछ नहिं इस जहाँ में, सब फना हो जायँगे (म्याँ)।
रहै रब का नाम मरदो, लोग लशकर कूँच है॥ १॥
चार दिन खूबी खलक में, अन्त मरना इक है (म्याँ)।
ज्यों धुएँ का मेघडम्बर, कुल मिटै इक पलक में॥ २॥
तन को देखो आशिको, बस खून चमड़ी हाड़ है।
जब निकल जावै पवन, तब गांड़ मिट्टी में मियाँ ॥ ३॥
यार अजीजों ने कफन में, बाँध धरा ताबूत पर।
जोरू अम्मा कुल कुटम सब, मनसूर तन मन झूठ है (म्याँ)॥ ४॥

अर्थ–हे तकी मियाँ? देखो इस जगत में कुछ भी स्वामी नहीं है और एक दिन सब कुछ गायब हो जाएँगे। हे पुरुषों! केवल रब (परमेश्वर) का ही नाम बचेगा और यहाँ सारे मनुष्य और उनके समूह कूच कर जाएँगे॥ १॥

इस संसार की खूबी केवल चार दिनों तक के लिए ही है, और अन्त में एकमात्र मृत्यु ही शेष है। जैसे, धुएँ के बादल की घटाएँ एक ही पल में सारी की सारी नष्ट हो उठती हैं॥ २॥

हे प्रेमियों! इस शरीर की तरफ देखो, इसमें केवल इसमें खून है, चमड़ी और हड्डियाँ ही हैं और इस शरीर से जब वायु निकल जाती है तो हे मियाँ! इसे मिट्टी में गाड़ देते हैं॥ ३॥

मंसूर कहते हैं कि हे यार अपने साथियों में फिर कफन में बाँधकर उसे ताबूत पर रखा और फिर पत्नी, माँ, परिवार, कुटुम्ब, शरीर, मन आदि सभी झूँठे हो उठते हैं॥ ४॥

॥ पश्तो ५ ॥

खोज मुरशिद रे मुरीदो, राह रोशन यार को (म्याँ)।
रूह मेहर मुरशिद के दसतों, दिल फिजल दिलदार में॥ १॥
रूह चढ़ावौ रे अबर को, हो खबर उस यार को।
लावै जब रब राह चीन्है, फल में लखै इसरार को॥ २॥
कुफल खोले रे अधर के रूह से फोड़ असमान म्याँ।
जान मलकूत नासूत को, जबरूत की कर कदर म्याँ॥ ३॥
जा मिलै लाहूत रे जब, होश हो हाहूत का।
लौ लगी जो ला के अन्दर, रब मिले मनसूर को॥ ४॥

अर्थ–हे मुरीदों (शिष्यों) मुरशिद (गुरु) की रोशनी भरी राह को खोजो। उस दिलदार की आत्मा प्रकाश है, मुरशिद (पथ-प्रदर्शक गुरु) के दस्त हैं और उस दिलदार में दिल फजल (कृपा) है।

उस परमात्मा के प्रति अपनी आत्मा समर्पित करो जिससे उस साथी को इस बात की खबर हो जाए और जब उसे रब (परमेश्वर) मार्ग पर ले आए तो वह मार्ग पहचान कर उस इसरार (परमेश्वर) को फल भर में देख ले॥ २॥

हे शेख तकी मियाँ! वह अन्तरात्मा के कुफर (धर्म के प्रति दुर्भाव) खोले और आत्मा से शून्याकाश को फोड़ दे॥ तुम इस प्रकार मलकूत (देवलोक) तथा नासूत (मृत्युलोक) को समझो और जबरूत की इज्जत करो॥ ३॥

जब साधक को हाहूत (स्वर्गलोक) का होश हो तब वह लाहूत (मृत्यु लोक) परमात्मा से जाकर मिल जाए। मंसूर साहब कहते हैं कि यदि अल्ला के आनन्द की लौ लगी है, तो निश्चित ही रब (परमेश्वर) उसे मिल जाएगा॥ ।।४॥

॥ दोहा॥

रब्ब राह लौ लाह में, खुदा खोज दिल माह।
रब खोदाइ से अलग है, खुद खुदाय तेहि नावँ॥ १॥
बूझौ खोज किताब में, सब कुरान कुल झार।
कर तलास काजी सुनौ, कहि मनसूर पुकार॥ २॥

अर्थ–'रब' की ओर जाने वाले मार्ग पर लौ लगाकर दिल के अन्दर खुदा की खोज करो। यह रब (परमात्मा) खुदाई से अलग है और खुदा तो स्वयं उसे के अन्दर हैं॥ १॥

मंसूर पुकार कर कहते हैं कि मेरी बात सुनो ईश्वर को पुस्तकों में खोजो खोजकर समझो, कुरान में भी अच्छी तरह ठोंकपीट कर समझ लो उसके बाद उसकी इनसे अलग तलाश करो॥ २॥

॥ सोरठा॥

तुलसी तकी निहार, कहि पुकार मनसूर ने।
मुरसिद खोज बिचार, बन मुरीद मुरसिद मिलै॥

अर्थ–तुलसी साहब तकी शेख को पुकार कर कहते हैं कि मन में अच्छी तरह देखो विचारपूर्वक धर्मगुरु की खोज करो, मन के मुताबिक वह धर्मगुरु मिलेगा।

॥ चौपाई॥

तुलसी कहै तकी सुन बाता। खुद खुदाइ मालिक है दाता॥
उनका खोज खुदा नहिं पाया। नहिं कितेब लिखने में आया॥
काजी मुल्ला खोज न पावै। दे दे बाँग खुदा गोहरावै॥
अब खुदाइ का खोज बताओं। खुदा राह और भिस्त लखाओं॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे तकी! मेरी बातें सुनो, खुदा स्वयं स्वामी और दाता दोनों है। उस मूल खुदा की खोज खुदा भी करके नहीं प्राप्त कर सका है, और लिखी हुई धर्म की पुस्तकों में कहीं भी पढ़ने में नहीं आया है॥ अब मैं आपको खुदा की खोज बताता हूँ और स्वयं आपको खुदा का मार्ग तथा स्वर्ग को दिखाता हूँ।

॥ रेखता॥

अजब अनार दो भिस्त के द्वार पै।
लखै दुरवेस फक्कीर प्यारा॥ १॥
ऐन के अधर दोउ चस्म के बीच में।
खसम को खोज जहँ झलक तारा॥ २॥
उसी बिच फकत खुद खुदा का तखत है।
सिस्त से देख जहँ भिस्त सारा॥ ३॥

तुलसी तत मत मुरसिद के हाथ है।
मुरीद दिल रूह दोजख नियारा॥ ४॥

अर्थ–स्वर्ग के द्वार पर दो आश्चर्यजनक अनार हैं– जिसे प्रभु के प्यारे फकीर एव दरवेश देखते हैं॥

ऐनक के नीचे दोनों चश्मों के बीच, उस स्वामी को खोजो, वहाँ (स्वत:) एक तारा झलक रहा है॥

उसी के बीच में फकत स्वयं खुदा का तख्त है, उसे भिस्त से देखो जहाँ सम्पूर्ण स्वर्ग है॥ ३॥

तुलसीसाहब कहते हैं कि यह मत मुरशिद (धर्मगुरु) के हाथों में है और ईश्वर के मुरीद के दिल और आत्मा दोनों इस जगत से भिन्न हैं॥ ४॥

॥ सोरठा॥

तुलसी भिस्त मिलाप, खुदा खोज येहि बिधि मिलै।
चौधा तबक निवास, कहौ कुरान किस बिधि कहै॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि आत्मा और स्वर्ग के मिलन में खुदा को खोजो, वह इस प्रकार प्राप्त हो सकता है, उस खुदा का निवास तो चौदह तबको (पृथ्वी की पर्तों) में है–बताइए वह कुरान द्वारा किस प्रकार पाया जा सकता है?

॥ चौपाई॥

तुलसी तबक तरक पहिचानौ। तब मियाँ तकी भिस्त को जानौ।।
बिन मुरसिद पावै नहिं घाटा। ये सब समझ खोज ले घाटा॥
सुनकर तकी बहुत भये दीना। बन्दा गुनहगाह नहिं चीन्हा॥
चरन पकड़ पुनि सीस गिरावा। तुम फकीर हम मरम न पावा॥
तुम खुदाई की जाति अजाती। हम इनके सँग भये सँगाती॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे शेख तकी! पहले 'तबक' का मर्म समझो, तब स्वर्ग को समझो। बिना मुरशिद (गुरु ....) के साधक किनारा नहीं प्राप्त कर सकता–यह परमात्मक की खोज के मार्ग पर आने से होता है॥

इसे सुनकर तकी मियाँ बड़े दुखी हुए, और बोले, यह बन्दा! गुनहगार है क्योंकि आपको पहचान नहीं सका। उन्होंने तुलसी साहब के चरणों को पकड़ कर अपना सिर उस पर गिरा दिया और बोले, आप सिद्ध फकीर है, मैं आपका मर्म नहीं समझ सका। आप स्वयं अज्ञेय खुदा की जाति के फकीर है, मैं तो इन सबका साथी बनकर आपके पास आया था॥

॥ दोहा॥

तकी कहै तुलसी मियाँ, तुम गुरु पीर हमार।
गुनह बक्स अपना करौ, बंदा तकी तुम्हार॥ १॥
तकी दीन तुलसी लखा, पका दीन मत माइँ।
झका तका अपनी तरफ, गुनहगार तुम पाइँ॥ २॥
तकी तबक जाना नहीं, नबी नूर नहिं पाइ।
भिस्त दोजख में तुम रहे, कैसे मिलै खुदाइ॥ ३॥

अर्थ–तब तकी ने कहा कि तुलसी साहब आप हमारे गुरु और पीर हैं। मेरी गलतियों को क्षमा करके मुझे अपना बना लें और यह बंदा तकी अब आपका है॥ १॥

तुलसी साहब ने जब तकी को उस दुखी अवस्था में देखा समझा कि यह पूरी तरह से मेरे मतों मे पक गया है। तब बोले कि तुम अपने को गुहगार पाते हो, अब इससे ऐसा लगता कि तुमने अपनी तरफ से (मन के अन्दर) झाँका और देखा है, आत्मालोचन किया है॥ २॥

तुलसी साहब कहते हैं कि हे तकी! तुमने तबक (सृष्टि की परतें) नहीं समझा और नबी (धर्मगुरु) तथा नूर को भी नहीं प्राप्त किया है–स्वर्ग समझ कर इसनरक में तुम रहते रहे, तुम्हें खुदा कैसे मिल सकते हैं॥ ३॥

॥ रेखता नसीहत ॥

तुलसी तबक जाना नहीं, बेहोस गाफिल हो रहा।
जिस ने तुझे पैदा किया, उस यार को चीन्हा नहीं॥ १॥
नाहक अदम दम खोवता, मुरसिद पकड़ नहिं डूबही।
तुलसी खलक कुल ख्याल है, आसिक मुहब्बत कर सही॥ २॥
खोजो मुहम्मद दिल-रहम, जिस इस्म से आलम हुआ।
तुलसी नबी निरखै नहीं, जहँ लग मुसल्लम है नहीं॥ ३॥
रब रूह मरहम ना हुआ, रब देख अंदर है सही।
तुलसी तकी बूझा नहीं, जग में जिया तो क्या हुआ॥ ४॥
गन्दा नजिस क्यों हो रहा, इस जक्त में रहना नहीं।
अरे ऐ तकी तल्लास कर, तुलसी फना होना सही॥ ५॥
चारो चसम को खोल कर, देखो जुलम जालिम वही।
जबरील को तैंना लखा, तुलसी खबर खोजा नहीं॥ ६॥
रोजा निमाज हर दम किया, उस यार को दिल ना दिया।
खोजा नहीं अपना पिया, तुलसी तकी दोजख लिया॥ ७॥
नासूत मलकूत जबरूत हैं, लाहूत लौ तैं ना लिया।
हाहूत हिये खोजा नहीं, ला में रबी जीता पिया॥ ८॥
तुलसी तकी तालिम दिया, हर दम गुनह बंदा हुआ।
मुरसिद मुरीदी दस्त है, पावै तकी अपना किया॥ ९॥
तुलसी रहम राजी हुआ, तोला तकी अपना किया।
दिया दस्त दरदी जान कै, तुलसी तकी मुरसिद हुआ॥ १०॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे शेख तकी तुमने तबक (सृष्टि) नहीं समझा और अपने गर्व में बराबर बेहोश तथा गाफिल (भ्रमग्रस्त) होता रहा। जिसने तुम्हें जन्म दिया है, इस दोस्त ईश्वर को तुमने पहचाना नहीं॥

॥ दोहा ॥

तकी दीन तुलसी लखा, दीन्हा पंथ लखाइ।
सुरति सैल असमान कर, चढ़े गगन को धाइ॥

अर्थ–तुलसी साहब ने तकी को दुखी देखकर उस निर्गुण ब्रह्म का मार्ग दिखा दिया। वे सुरति से जुड़कर पर्वत शिखर पर जाकर शून्य पर दौड़कर चढ़ गये॥

॥ चौपाई ॥

तकी दीन गति. गाइ सुनाई। दीन्हा सूरति पंथ लखाई॥

अर्थ–दीन सेख तकी के मार्ग को गाकर सुनाया और उसे सुरति का मार्ग दिखला दिया।

॥ सरन में आना तकी मियाँ का ॥

॥ दोहा ॥

तकी दस्त दोउ जोड़ि कै, करि सलाम सिर टेक।
नेक नजर अपनी करौ, बन्दा तकी निहाल॥

अर्थ–तकी मियाँ दोनों हाथों को जोड़कर तथा नमस्कार करते हुए शिर टेक कर बोले कि यह बन्दा तकी निहाल हो चुका है, अब आप मेरे ऊपर कृपा करें॥

॥ चौपाई ॥

नेक निहाला नजर निहारौ। तुलसी बंदा तकी सम्हारौ॥
हमरा गुनह माफ सब कीजै। फजल करौ फिर अज्ञा दीजै॥
चले तकी मारग को जाई। कासी नगरी पहुंचे आई॥

अर्थ–थौड़ी देर के लिए तकी को निहाल करते हुए तुलसी साहब ने शेख तकी को सम्हाला। तकी कहने लगे हे स्वामी जी! हमारी गलतियों को आप क्षमा करें–अब मुझे आज्ञा देकर मुझ पर फजल (कृपा) करे। शेख तकी अपने मार्ग की ओर चल पड़े और धीरे-धीरे काशी नगरी में पहुँच गए॥

॥ दोहा ॥

चले तकी मारग गये, बीच बजार मँझार।
कर्मा पल्लीवाल की, गये दुकान के पास॥

अर्थ–शेख तकी उस मार्ग से चलते हुए काशी के बीच बाजार में पहुँचे और कर्मा पालीवाल की दुकान पर गए॥

सम्बाद जैनियों के साथ

॥ चौपाई ॥

कर्मचंद इक पल्लीवाला। स्रावग जैन धर्म मत पाला॥
सो करै बनिज बजाजी कौरा। ताहि दुकान बाग तेहि मोरा॥
कर्मचंद ने कीन्ह सलामा। आदर बहुत कीन्ह सनमाना॥
सेख तकी कहै सुन रे भाई। कहौं फकीर अक खुदा गुसाई॥
ता को सब बरतंत सुनावा। कर्मकंद तुलसी ढिंग आवा॥
कर्मचंद और धर्मा जैनी। सब पूछी पुनि हमरी कहेनी॥
कौन धर्म यह साध कहावा। जैन को धर्म मर्म जिन पावा॥
धर्मचंद और कर्मा जैनी। थापी उन निज अपनी कहेनी॥

अर्थ—कर्मचन्द नामके एक पालीवाल जाति वाले थे और उन्होंने श्रावग जैन मत स्वीकार कर रखा था। वह बनियागीरी था और केवल बजाजी (कपड़े की दुकानदारी) करता था। उसकी दूकान मेरी उस बाग में थी।

कर्मचंद ने मुझे देखकर सलाम किया और उन्होंने अति आदरपूर्वक मेरा सम्मान भी किया। शेख तकी ने उनसे कहा कि हे भाई सुनो! उसे मैं फकीर कहूँ बाकि (अक) मालिक ही कहूँ।

उन कर्मचन्द को तकी मिया ने सारा वृत्तान्त सुनाया, उसे सुनकर कर्मचंद तुलसी साहब के पास आए। कर्मचंद और धर्मा दोनों जैनियों ने मिलकर सारे कथनों के विषय में पूछा॥ किस धर्म मे सम्बद्ध यह साधु कहा जाता है, जैन धर्म का रहस्य किसने जाना है। उन धर्मचन्द तथा कर्मा जैनी ने मिलकर तुलसी साहब से अपनी (जैन धर्म के सिद्धान्त की) बातें रखी॥

॥ प्रश्न तुलसी साहिब ॥

कहि तुलसी तुम मर्म बताओ। जैन धर्म का भेद सुनाओ॥

अर्थ—तुलसी साहब ने पूछा, कि आप अपना रहस्य बतलाएँ और जैनधर्म के मर्म के विषय में भी बतलाएँ।

॥ उत्तर कर्मचंद और धर्मा ॥

कर्मचंद और बोले धर्मा। होइ मुक्ति जब काटै कर्मा॥
तप कर संजम बन को जावै। हरी त्याग कर जीव बचावै॥
टाटक ध्यान जपै नौकारा। जब या जीव को होइ उबारा॥
कोसिस ऐसी कठिन अपारा। काटै कर्म जीव निरबारा॥
तीर्थंकर चौबीसो जाना। कर्म काटि पहुँचे निरबाना॥

अर्थ—धर्मा एवं कर्मचन्द साथ-साथ बोले, मुक्ति तब मिलती है, जब व्यक्ति कर्म संसक्ति को नष्ट कर डाले॥ तप के संयम बरत कर व्यक्ति बन में जाए और विष्णु (ब्रह्म) को त्यागकर मनुष्य में निहित जीवत्व की रक्षा करे॥

तुरन्त नौ प्रकार के ध्यानों में अपनी साधना लगा दे, तभी इस जीव का उद्धार सम्भव है। इसी के द्वारा कठिन तपस्या करके एवं कर्म बन्धन को काटकर अपने को मुक्त करना चाहिए।

तीर्थंकर चौबीस हो गए हैं—जिन्होंने कर्मबंधन काट कर निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया है।

॥ सोरठा ॥

धर्मा कही जनाइ, जैन धर्म संजम बिधी।
तुलसी सुनौ समाइ, तब पुनि फिरि आगे कहों॥

अर्थ—धर्मा ने सारे जैन धर्म के मर्म को बताते हुए समस्त धर्म एवं संयम विधि बतलाई। वे बोले, हे तुलसी साहब, भली भाँति सुन लो, तब इसके बाद आगे पूछना॥

॥ प्रश्न तुलसी साहिब ॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी पूछै ताइ, भेद कहो निरबान को।
तुम कस पायौ जाइ, सो देखी अपनी कहौ॥

अर्थ–तुलसी साहब धर्मा से पूछा, कि तुम निर्वाण के भेदों के विषय में बताओ। उसे जानकर तुमने किस तरह देखा है और जिसे देखा है, उससे जुड़े अनुभवों के बारे में बताओ॥

॥ चौपाई ॥

तुम देखी अपनी बतलावौ। करनी और और की गावौ॥
साँची करनी अपनी भाई। तुम कुछ और और की गाई॥
तीर्थङ्कर पहुँचे निरबाना। कर्म काटि वे जाइ समाना॥
तुम तेहि करनी भाखि सुनाई। हाथ कहा कहौ तुम्हरे आई॥
जीवत मिले देखिये आँखी। ता की करनी कह कर भाखी॥
खावै भूख जाइ पुनि ताही। ऐसी बात कहौ समझाई॥
अब जो तुरत तलब सो पावै। तब तुलसी की प्यास बुझावै॥
तुम तौ कही जुगन की बानी। देखौं अबै सुनौं जो कानी॥
देखौं अबै तो मन पतियावै। ऐसी तत्त बात मन भावै॥
ये सब कही सुनी हम जानी। मुए मुक्ति की करौं बखानी॥
मुए पर कोइ आवै न भाई। जीवत में केहु पहुँचि न पाई॥
ता की खबरं साँच कस आई। सो धर्मा तुम कहौ सुनाई॥
ये तौ अंध अंध कर लेखा। मानौं जो जोइ नैनन देखा॥

अर्थ–तुम अपनी देखी हुई बतलाओ, करनी किसी ने की है, तुम दूसरे बनकर उसे गा रहे हो। हे भाई! अपनी सच्ची आध्यात्मिक करनी बताओ, तुम तो दूसरे हो और दूसरे की करनी गाते हो॥

तुमने तीर्थंकरों की करनी मुझे कहकर सुना दी–उस करनी की समझ तुम्हें कितनी आई। इसे बताओ। जो आँखों के सामने जीवित मिले, उसकी करनी कहकर कहनी चाहिए॥ जिसको भूख है, उसे खाना चाहिए (और उस खाने का अनुभव उसे बताना चाहिए) तुम झूठे अनुभव को मुझे क्यों समझा रहे हो।

जो सही ढंग से ईश्वर के अनुभव के नशे में डूब जाता है, वही तुलसी की जिज्ञासा भरी प्यास बुझा सकता है। तुम तो अनेक युगों के पूर्व के ज्ञान की वाणी कहते हो–जो अभी अभी आँख से देखते हो और कान से सुनते हो, उस ज्ञान के विषय में क्यों नहीं बताते।

जिसे अभी देख लोगे, उस पर मन विश्वास करने लगेगा और तत्त्व की ऐसी ही बातें मन को अच्छी लगती हैं॥

जो तुमने सारी बातें कही है, उसे हमने भी सुन रखी है–तुम मुझसे उस मुक्ति की बात करते हो जो मर चुकी है॥ हे भाई! मरने के बाद कोई आता नहीं और जीवन में जीवित रहते कोई मृत्यु तक नहीं पहुँच सकता॥

उस पूर्वमृत की खबर तुम्हारे पास कैसे आ गई, हे धर्मा! इसे सच-सच सुनाकर बताओ॥ यह तुम्हारा प्रश्न अंधे के द्वारा अंध को ले जाने जैसा है, मन तो उस पर विश्वास करता है, जिसे उसने अपने नेत्रों से देखा है।

॥ सोरठा ॥

तुलसी तुरत बताइ जो निज नैननि लखि परै।
सरै जीव को काज परै पार गति देखिये॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे धर्मा, उसके विषय में बताओ जो अपनी आँखों से दिखाई पड़े, उससे जीव का कार्य सिद्ध होगा और उस पार जाकर कह उस विशुद्ध मुक्ति को प्राप्त करेगा और उसे देखेगा॥

॥ चौपाई॥

सो साँची भानैं हम भाई। ऐसी धर्मा कहौ सुनाई॥

अर्थ–हे धर्मा, ऐसी बातें कहकर सुनाओ, जिसे हे भाई! हम भी अनुभव करें॥

॥ उत्तर धर्मा॥

कहै धर्मा तुलसी सुनौ, कहौं भे बिस्वास।
बिन संजम पावै नहीं, तप जप बिना उपास॥

अर्थ–धर्मा ने कहा कि, हे तुलसी साहब! सुनें, किसी के बताने से यह विश्वास हुआ कि बिना संयम एवं जप, तप एवं उपवास के कुछ प्राप्त नहीं होता॥

॥ प्रश्न तुलसी साहिब॥

॥ सोरठा॥

सुनु धर्मा बिधि बात। संजम तप मुक्ती नहीं॥
पद पावै निरबान। चढ़ि अकास मुक्ती मिलै॥ १॥
निज निरबान बिधान। कहौं भेद भिन भिन सुनौ॥
पद निर्बान निज पार। संत सार आगे चखै॥ २॥

अर्थ–हे धर्मा! मेरी बात सुनो, संयम एवं तपस्या मुक्ति नहीं है, जो निर्वाण पद को प्राप्त कर लेता है, उसे शून्याकाश में मुक्ति मिलती है॥ १॥

अपने निर्वाण विधान के भिन्न-भिन्न भेदों को मैं बतलाता हूँ–निर्वाण का पद अपने (चित्त) के उस पार है–और उसके सारतत्त्व आनन्द का आस्वादन मुक्ति के बाद चखते हैं॥ २॥

॥ रेखता॥

निकट निरबान की सान जग में लखौ।
फटिक बिच सिला पर स्याम माई॥ १॥
काल की जाल दरहाल जा को कहैं।
भये चौबीस भौ मुक्ति पाई॥ २॥
गुन मिलि गोह चौधा गुनठ्ठान हैं।
चौधा जमराय जहँ कसत भाई॥ ३॥
अधर अठबीस लख लोक राचू कहै।
काल निरबान रत रहत गही॥ ४॥
देव मुनि दैत्य गंधर्व और मानवी।
केवली काल मुख सकल जाई॥ ५॥
दास तुलसी निबान पद निरखि कै।
छाँड़ि ये राह घर अधर माई॥ ६॥

अर्थ–अपने ही निकट निवार्ण की गरिमा को देखो–स्फटिक की शिला (चित्त शिला पर) वह श्याममयी है–उसे काल के क्षण-क्षण का समाचार कहा जाता है, चौबीसरूपों (चौबीस तीर्थंकरों) के रूप में इन्होंने मुक्ति प्राप्त की है ॥ १-२ ॥

गुणों से मिलकर चौदह अनुष्ठान हैं–जहाँ चौदह यमराज निवास करते हैं ॥ ३ ॥

अन्तरात्मा में अट्ठाईस दिखाई पड़ने वाले लोक हैं–काल-निर्वाण द्वारा इन्हें सभी ग्रहीत रहते हैं ॥ ४ ॥

देव, मुनि, दैत्य, गंधर्व एवं मानव के बीच क्या ज्ञानी (कवली) मुक्ति का अधिकारी हो गया है ॥ ५ ॥

तुलसीदास कहते हैं कि निर्वाण के पद को देखकर, इस मार्ग को छोड़ दो–और अपनी अन्तरात्मा के घर में निवास करो ॥ ६ ॥

॥ गजल १ ॥

जैनी जो जैन नैन सूझै नाई।
आतम को छाँड़ि पूजैं पाहन जाई ॥ १ ॥
कर कर पूजा बिधान अष्टक गावैं।
भादों बिधि मंदिर सब स्त्रावग आवैं ॥ २ ॥
चावल रँग माँड मँडे मनसैं आप का।
नंदेसुर पूजि दीप करैं बाप का ॥ ३ ॥
और अढ़ाई दीप माँड़ि करते पूजा।
अंदर आतम्म ब्रह्म नाहीं सूझा ॥ ४ ॥
करते कल्यान पाँच कामधेनु की।
पूजैं बेहोस फूटि हिये नैन की ॥ ५ ॥
जिन ने तन साज किया जानौ भाई।
वा की विधि भूलि भाव पाहन लाई ॥ ६ ॥
तुलसी ये फंद कीन्ह काल पसारा।
धरमन की टेक बाँधि बूड़े सारा ॥ ७ ॥

अर्थ–जैनी को ज्ञान के नेत्रों से कुछ भी नहीं सूझता और वे आत्मा को छोड़कर पत्थर की पूजा करने जाते हैं ॥ १ ॥

पूजाविधान कर करके अष्टक गाते हैं और भादों के महीने में सभी मन्दिर में (पूजा) के निमित्त आते हैं ॥ २ ॥

चावल को रँगकर माँड़ को रजाकर स्वयं अपनी स्वेच्छा से नंदेसुर की पूजा करके अपने मृत पिता के लिए दीपदान करते है ॥ ३ ॥

उन्हें अपनी अन्तरात्मा में स्थित ब्रह्म नहीं सूझता और उधर ढाई दीपक सजा कर पूजन करते हैं ॥ ४ ॥

वे पांच कामधेनु जैसी गायों को खिलाते-पिलाते हैं तथा हृदय के नेत्रों से वंचित (फूटि) अज्ञानी जैसे पूजा करते हैं ॥ ५ ॥

हे भाई! समझो, जिसने तुम्हारे इस शरीर की रचना जैसी साज सज्जा की है, उसको भूल करके अपने भावचित्त में पत्थर ला रहे हो ॥ ६ ॥

तुलसी साहब कहते है कि काल ने फंदा बनाकर चारों ओर फैला रखा है और इन धर्मों के टेक के अन्तर्गत बँधे हुए तुम सारे के सारे लोग डूब जावोगे॥ ७॥

॥ गजल २॥

ढूँढ़त गिरिनार सिखर आबू जाते।
सतगुरु बिन मेहर नहीं काबू पाते॥ १॥
बूझै सतसंग संग संतन माई।
अंदर पट खोल बोल देत दिखाई॥ २॥
जिनके बड़े भाग सोई निरखि निहारा।
रहते जग बीच बीच जग से न्यारा॥ ३॥
उनकी वोहि चाल हाल घट में देखै।
पूछै कोइ चीन्हैं नहिं बात बिसेखै॥ ४॥
खोजत पहाड़ सिखर मूरति माई।
तुलसी नौकार जपैं सूझै नाई॥ ५॥

अर्थ–आबू पर्वत या गिरनार के शिखर पर जिसे खोजने जाते हो, किन्तु सतगुरु की कृपा बिना पूजा करने वाले अपने पर नियंत्रण नहीं कर पाते॥ १॥

हे भाई! संतों के साथ होने वाले सत्संग को समझो जो अन्तरात्मा के पर्दे को खोल कर उस परमात्मा को दिखा देते हैं॥ २॥

वे लोग, जिनके बड़े भाग्य हैं, वही उसे निरखते और निहारते हैं और संसार में रहते हुए भी संसार से असंसक्त हैं॥ ३॥

उनकी उस चाल तथा हाल कि वे घट के भीतर ही तत्त्व का दर्शन कर लेते हैं, वे पूँछने पर भी किसी को पहचानते नहीं, यह विशेष बात है अर्थात् निरन्तर आत्मरत रहते हैं॥

हे धर्मा! पर्वत शिखरों पर उनकी मूर्ति को खोजते हुए नौकार जाप करते हैं किन्तु यह सूझ नहीं पड़ता-यह कौन-सी साधना है॥ ५॥

॥ चौपाई॥

पद निरबान भूमि बतलाई। केवलि ज्ञान तिथंकर गाई॥
तप संजम पूजा बिधि बानी। ये गति चारि माहिं भौ खानी॥

अर्थ–मैंने निर्वाण पद की मूलभूमि का वर्णन किया है और केवल तीर्थंकरों के विषय में बताया है। तप, संयम, पूजाविधि, और कीर्तन ये चारों गतियाँ इस सांसारिक बन्धन की खानि हैं॥

॥ दोहा॥

जब नौकार निकाम सब, आदि सार नहिं जान।
पद निरबान के पार की, तुलसी करत बखान॥

अर्थ–जब नौ प्रकार की सभी पूजाएँ व्यर्थ हैं–और कोई मूल स्तर सार तत्त्व नही समझता, (तो निर्वाण पद को क्या समझेंगे) तुलसीदास जी कहते हैं कि इसलिए मैं निर्वाण पद के उस पार की स्थिति का वर्णन करता हूँ॥

॥ शब्द ॥

अद्भुत आज अलेखा री, सखि सइयाँ कौ भेषा ॥ टेक ॥
उदित मुदित दोइ सहर सुहावन, स्याम सेत नित देखा।
अजर खेत्र नभ फटिक, सिला पर, पद निरबान बिसेखा ॥ १ ॥
सिलि पिलि बिजै खेत्र बिंदाचल, लील सिखर पर ठेका।
समुँदर सात पार जल खण्डा, अंडा अब ले पेखा ॥ २ ॥
निरखत चारि खानि गति चारी, बिधि बिधि जीव बिसेखा।
केवलि ज्ञान होत गुंकारा, देखे केवली अनेका ॥ ३ ॥
ये निरबान भूमि मत मारग, आगे जान न लेखा।
स्रावग जैन धर्म मत माहीं, इनके वोही टेका ॥ ४ ॥
आतम ज्ञान ध्यान बतलावैं, आगे भेद न पावैं।
सास्तर साखि भाखि बिधि देखैं, खोजत मुए अनेका ॥ ५ ॥
या के परे भिन्न गति न्यारी, सूनि बाइस बिधि देखा।
ता के परे पार सत साहिब, सो पद संतन लेखा ॥ ६ ॥
सुन्न सुन्न प्रति प्रति पद माहीं, जहँ निरबान न पेखा।
केवलि ज्ञान आतमा नाहीं, धरम करम नहिं एका ॥ ७ ॥
सूर चंद नहिं धरनि अकासा, तेज पवन जल छेका ॥
ता के परे पार निर्खि न्यारा, तुलसी हिये दृग देखा ॥ ८ ॥

अर्थ–हे सखी! आज स्वामी (ब्रह्म) की वेषरचना अद्भुत एवं अलेख्य है। उदित तथा मुदित नाम के दो सुहावने नगर हैं और वहीं मैंने उनको, श्याम तथा श्वेत इन दो रूपों में देखा है॥ वह क्षेत्र अजर है, शून्याकाश में एक स्फटिक शिला है–उनका विशेष निर्वाण पद वही है ॥ १ ॥

वह जल खंड सात समुद्रों के उस पार है और वहीं ब्रह्मांड रूप इस विश्व को देखा है ॥ २१ ॥

यहाँ चारों प्रकार के ज्ञान विभव के स्रोत तथा चारों प्रकार की मुक्ति की गतियाँ और नाना प्रकार के जीव हैं। यहाँ केवल गुंकार (ध्वनि रूप) ज्ञान सुनाई पड़ता है– इसे केवल वे ही देखते हैं जो 'केवल ज्ञानी हैं ॥ ३ ॥

यही निर्वाणभूमि ही धर्म का मार्ग है, आगे कोई न ज्ञान है और न उसे लेखा-जोखा (विवरण) है। श्रावग, जैनधर्म मत के अन्तर्गत इनकी यही अन्तिम मान्यता है ॥ ४ ॥

ध्यान ही आत्म ज्ञान बतलाता है, उसके आगे क्या है, वे उसका भेदभाव नहीं प्राप्त कर पाते। शास्त्र की साक्षी अनेक प्रकार से कह देते हैं किन्तु इसी को खोजते-खोजते वे मर जाते हैं ॥ ५ ॥

इस शास्त्र से परे एक विलक्षण ज्ञान की भिन्न गति है, सुनो! उसे बाईस प्रकार से मैंने देखा है (देखा जाता है)। उसके उस पार सत्य ब्रह्म जैसा स्वामी है–उस स्थान को केवल संतों ने देखा है ॥ ६ ॥

प्रति पद-पद में शून्य-ही शून्य है–वहाँ निर्वाण नहीं दिखता-वहाँ न ज्ञान है, न आत्मा है, न धर्म है, न कर्म है–अर्थात् एक भी नहीं है ॥ ७ ॥

वहाँ न सूर्य हैं, न चन्द्रमा हैं, न पृथ्वी है, न आकाश है–और सभी कुछ तीक्ष्ण वायु एवं जल से घिरा हुआ है। उसके पार उस प्रिय विलक्षण ब्रह्म को देखो, और तुलसीदास ने भी हृदय की आँखों से उसे देखा है ॥ ८ ॥

॥ दोहा ॥

तुलसी भूमि निरबान की, धर्मा सुनौ बयान।
केवलि ज्ञान गोंकार का, तुलसी करत बखान॥ १॥
फटिक सिला नभ ऊपरै, केवलि करत बखान।
तुलसी चढ़ि असमान पर, निरखा भिनि भिनि छान॥ २॥
निरबान निरखि आगे चली, सुनि अँड बाइस पार।
नहिं निरबान गति वहँ चलै, तुलसी देखा झार॥ ३॥
जीव अचर चर अंड के, जो ब्रह्मंड के माइँ।
सूरति चढ़ि असमान पर, तुलसी देखा जाइ॥ ४॥

अर्थ–हे धर्मा! मेरी बात सुनो, निर्वाण की भूमि, वह केवल 'गोंकार' ज्ञानी भूमि है, ऐसा, तुलसीदास कहते है॥ १॥

शून्याकाश के ऊपर स्फटिक शिला कैवतम ज्ञान युक्त सन्तजन उसका वर्णन करते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने भी शून्याकाश पर चढ़कर उन भिन्न-भिन्न केन्द्रों को देखा॥ २॥

निर्वाण पद को देखकर आत्मा के आगे चलने पर उसे बाइस ब्रह्मांड दिखाई पड़ते हैं। उन बाईस अंडों के आगे निर्वाण की गति नहीं चलती–तुलसी ने इस साफ-साफ देखा है॥ ३॥

इस अंड के चराचर जीव जो ब्रह्मांड के मध्य हैं–तुलसी साहब कहते हैं कि शून्याकाश पर चढ़कर मैंने उन्हें भी देखा है॥ ४॥

॥ चौपाई ॥

तुलसी धर्म बिलोके सारी। तुरक जैन बाम्हन मत झारी॥
जग थापन जैनी बतलावैं। ऋषभ देव कीन्हा बिधि गावैं॥
तीथंकर चौबीसों बानी। तुरक पीर चौबीस बखानी॥
मुहम्मद थापन कीन्ह जहाना। बाम्हन ब्रह्मा बेद बखाना॥
मुहम्मद तुरक बाम्हन बतलावैं। तीसर जैनी अस अस गावैं॥
अस अस तीनौं कहत बखाना। झूठ साँच कहौ केहि को माना॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि तुर्क, जैन एवं ब्राह्मण धर्म से सम्बद्ध सारे मतों को मैंने देखा है, जैसा कि जैन मतावलम्बी बतलाते है–''ऋषभदेव'' ने इस संसार की स्थापना की है॥

चौबीस तीर्थंकरों की ये कहते हैं और तुर्क, पीर भी चौबीस की ही बातें करते हैं। मुसलमान कहते हैं कि मुहम्मद साहब ने इस संसार की स्थापना की है और ब्राह्मण ब्रह्मा तथा वेद को बतलाते हैं॥

मुहम्मद साहब को तुर्क एवं ब्राह्मण ब्रह्मा को तथा तीसरे जैनी इस प्रकार की बातें करते हैं। इस प्रकार से तीनों कहते हैं और बताइए–इनकों किस तर्क से झूठ या सच माना जाए॥

॥ दोहा ॥

गुनष्टान चौधा कहे, जैन मते में जान।
तुरक तबक चौधा कहे, बाम्हन भुवन बखान॥ १॥

चौधा भुवन बाम्हन कहैं, तीनौ मत इक सार।
आदि पार कोइ ना कहै, लखा न रचनेहार॥ २॥

अर्थ–जैन मत के अनुसार यह समझो कि गुणगान चौदह कहे जाते हैं। मुसलमान भी चौदह तबक (योनियाँ) बताते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणों के भी चौदह भुवन हैं।। १॥

ब्राह्मण भी चौदह भुवन कहते हैं–ये तीनों मत एक जैसे हैं, लेकिन इसके उस पार क्या है? इसके विषय में कोई नहीं बताता। इस रचने वाले ईश्वर को किसी ने भी नहीं देखा है॥

॥ रेखता॥

चौधा तबक किताब कुरान में।
पीर चौबीस पुनि वोहू गावा॥ १॥
अल्ला रचि खेल सब जहान आलम किया।
आब और ताब पट अबर आवा॥ २॥
सरा का खेल मुहम्मद से करि कहैं।
येही बिधि तुरक तकरीर लावा॥ ३॥
जैन मत माहिं गुनष्टान चौधा कहैं।
बिधी भगवान चौबीस गावा॥ ४॥
ऋषभजी रचन संसार की थापना॥
आपने मते की वोहू लावा॥ ५॥
बेद पुरान संसार बाम्हन कहै॥
विधी भगवान चौबीस गावा॥ ६॥
चतुरदस लोक लीला बरनन करैं।
रचना बैराट जग बिधि बनावा॥ ७॥
झूठ और साँच कहौं कौन को कीजिये।
हिन्दू और तुरक पढ़ भूल पावा॥ ८॥
जैन सोइ जिंद बुन्द आदि को ना लखा।
तीनि में किनहुँ नहिं चीन्ह पावा॥ ९॥
दास तुलसी कहै अगम घर अधर है।
संत बिन भेद नहिं हाथ आवा॥ १०॥

अर्थ–पुस्तकों में चौदह तवकों (योनियों) का वर्णन है, और पीर उन्हीं चौबीसों का गान करते रहते हैं॥ १॥

अल्ला मियाँ ने खेल खेल में रचकर सम्पूर्ण सृष्टि को सुशोभित कर दिया और उस पर जल तथा चेतना अलग से भर दी॥ २॥

अपनी इस रचना के खेल को बनाकर मुहम्मद साहब से बताया और जो कुछ बताया है, उसको मुसलमान तर्क और बहस के रूप में पेश कहते हैं॥ ३॥

जैन धर्मी भी उसी को चौदह गुनष्ठान कहते हैं और भगवान की विधि की गणना चौबीस बताई है॥ १४॥

संसार की स्थापना तथा रचना ऋषभ देव ने की और उन्होंने भी अपने मत के अनुसार उसे स्थापित किया॥ ५॥

वेद, पुराण, संसार एवं ब्राह्मण सभी कहते हैं कि ब्रह्मा ने चौबीस रूपों का वर्णन किया है॥ ६॥

चौदह लोकों की ये सभी लीला वर्णन करते हैं और कहते हैं कि विधाता ने इस ब्रह्माण्ड को बनाकर उसकी रचना की है॥ १७॥

सच और झूँठ कहो किसको कहा जाए, हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ने पढ़कर असत्य प्राप्त किया॥ ८॥

किसी जैन ने आज तक न जिंद को देखा न बुंद को और तुर्क, जैन एवं ब्राह्मण तीनों में से किसी ने भी उसे नहीं पहचान पाया है॥ ९॥

तुलसी साहब कहते हैं कि उस अगम्य का निवास अन्तरात्मा में है, और संतों की मदद के बिना यह रहस्य समझ में नहीं आता (हाथ में नहीं आता) ॥ १०॥

॥ चौपाई॥

बाम्हन तुरुक जैन मत माई। करता की गति केहु न पाई॥
मत अपने अपने की गावैं। तीनौं करता तीनि बतावैं॥
थापा जग रुचि एक बनाई। ये तीनौं मिलि तीनि बताई॥

अर्थ–हे सखे! ब्राह्मण, तुर्क एवं जैन ये तीनों मत कर्त्ता परमात्मा की गति किसी ने भी नहीं प्राप्त की॥ सभी अपने-अपने मत का गान करते हैं–और तीनों तीन सृष्टि कर्त्ता बताते हैं। उस ईश्वर ने एक ही संसार बनाकर उसकी स्थापना की है– और ये तीनों मिलकर तीन बताते हैं।

॥ सोरठा॥

धर्मा धर्म पसार, जैन बिधी कस कस कही।
भिनि भिनि कहौ बिचार, तब संजम उपवास बिधि॥

अर्थ–हे धर्मा! जैन विधि से धर्म के प्रसार को किस-किस प्रकार कहा गया है, तुम भिन्न-भिन्न ढंग से तप, संयम, उपवास की विधियों पर विचार करते हो (यह ठीक नहीं है)॥

॥ चौपाई॥

व्रत संजम जप तप बतलावौ। कहै तुलसी भिनि बिधि दरसावौ॥
कस कस चलन बात बिधि कहिये। स्त्रावग बिधि पुनि धर्म सुनइये॥
स्त्रावग कौन बात बिधि पालैं। सोई कहौ कौन बिधि चालैं॥
धर्मा अष्टक बाँचि सुनाई। तुलसी सुनियौ चित्त लगाई॥

अर्थ–तुम, ब्रत, संयम, जप, तप आदि को बतलाते हो और तुलसी साहब कहते हैं, उन्हें भिन्न-भिन्न ढंग से निरुपित करते हो। किस-किस प्रचलन की विधियों की बातें कहें–फिर उसके बाद स्त्रावणों की विधि से धर्म को सुनाते हो॥

स्त्रावक किस विधि से अपनी बातें सिद्ध करते हैं, वही बताओ, कि वे किस प्रकार का आचरण करते हैं। धर्मा ने (इस बात को सुनकर) जैनाष्टक बाँच कर सुनाया और तुलसी साहब ने उसे चित्त लगाकर सुना॥

॥ उत्तर धर्मा। अष्टक १ ॥

जल नीर निरमल मिष्ट। हिमकर बासनं ॥ १ ॥
धार ते भंडार भौ के। चरन श्रीपति चर्चनं ॥ २ ॥
सोइ पूजि पावै सेव सुखदाता। दुरियत कर्म के खंडनं ॥ ३ ॥
श्रीपारसनाथ जप सूरज जैनराई। मूल नायक बंदनं ॥ ४ ॥
तुम चंद्र बदनी। चंदा पूरी परमेसुरा ॥ ५ ॥

अर्थ—चन्द्रमा की किरणों से बासित जल निर्मल एवं मीठा है श्रीपति द्वारा पूजित आपके चरण इस भव सागर के लिए भंडार की धारा हैं। उसकी पूजा तथा सेवा करके सेवक सुख प्राप्त करते हैं और उनके कर्म जनित पाप नष्ट हो जाते हैं। जैन मुनियों के सूर्य की पारसनाथ जी जप सृष्टि रचना कर्त्ता के नायक की वन्दना है। हे आत्मा? तुम चन्द्रबदनी हो—और परमेश्वर की पुरी चन्द्रा पुरी है? श्रेष्ठ ऋषभ देवता कैलास गिरि पर निवास करते हैं और मैं उनके चरण कमलों को हृदय में धारण करता हूँ॥ १ ॥

॥ अष्टक २ ॥

कुमकुम जो मंजन सगर केसर। मलयागिरि घिसि चंदनं॥ १ ॥
अकल दुक्ख निरवार भौ के। चरन श्रीपति चर्चनं॥ २ ॥
सोइ पूजि पावै सेव सुखदाता। दुरियत कर्म के खंडनं॥ ३ ॥
श्रीपारसनाथ जप सूरज जैनराई। मूल नायक बंदनं ॥ ४ ॥

अर्थ—केशर और कुमकुम से पूरी तरह से मंजन करके और मलयगिरि के चंदन को घिस करके इस भवसागर के अकल्पनीय (अकाल) कष्टों को समाप्त करने वाला श्रीपति जी के चरणों का यह चर्चित रूप है। उस सुख देने वाले श्री पारसनाथ जी को पूजा एवं सेवा करके कर्म के पापों का खण्डन होता है। श्री पारसनाथ जी जैनियों में परमश्रेष्ठ हैं और उन श्री पारसनाथ का जाप करो—इन जैनधर्म के मूलनायक का शरीर सूर्य की भाँति (प्रकाश वान) है।

॥ अष्टक ३ ॥

बेल फूल चमेलि चंपा। काम कामोदिनि केतकी॥ १ ॥
तास परमल बास ऊधौ। अगर आगर सेवती॥ २ ॥
सोइ पूजि पावै सेव सुखदाता। दुरियत कर्म के खंडनं॥ ३ ॥
श्रीपारसनाथ जप सूरज जैनराई। मूल नायक बंदनं॥ ४ ॥

अर्थ—वेला, चमेली, चंपा, कुमोदनी, केतकी, इनके सुवास से नितान्त निर्मल परागयुक्त-अगरबत्तियों के ढेर से सुवासित उन्हीं चरणों की सेवा करके सुख मिलता है और दूषित कर्मफल खंडित होते हैं। श्री पारसनाथ जी का जप करो, जैनधर्म के इन मूलनायक का शरीर सूर्य की भाँति चमक रहा है।

॥ अष्टक ४ ॥

खरि खरेला दाख खिरनी। आम स्त्रीफल लाइया॥ १ ॥
नारियल नौरंग केला। प्रभुजी के चरन चढ़ाइया॥ २ ॥
मोरी इतनी बिनती दयाल कौ। प्रभुनाथ के गुन गाइया॥ ३ ॥